महाकवि-भारवि-प्रणीत

# किरातार्जुनीय

महाकाव्य

हिन्दी-गद्य में भावार्थबोधक अनुवाद

—:❀:—

रचयिता
महावीरप्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९२२ [मूल्य २)

# भूमिका।

संस्कृत-भाषा मे यों तो अनेक काव्य और महाकाव्य हैं; पर उनमे से छः बहुत प्रसिद्ध हैं—रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, किरातार्जुनीय, शिशुपाल-वध और नैषधचरित। इनमे से पहले तीन कालिदास-कृत हैं। इन तीनों का गद्यात्मक अनुवाद हम हिन्दी में कर चुके। रघुवंश का अनुवाद तो प्रकाशित भी हो गया; कुमारसम्भव और मेघदूत का शीघ्र ही प्रकाशित होगा। जान पड़ता है, रघुवंश का अनुवाद लोगों को पसन्द आया; क्योंकि उसके पहले संस्करण की अधिकांश कापियाँ थोड़े ही समय में बिक गईं। इसीसे हमें किरातार्जुनीय का भी अनुवाद करने का साहस हुआ।

इस देश के किसी किसी प्रान्त में शिशुपाल-वध की अपेक्षा किरातार्जुनीय का अधिक प्रचार है। इसके कुछ सर्ग तो कहीं कहीं संस्कृत-विद्यार्थियों को नियमपूर्वक पढ़ाये जाते हैं। कलकत्ता-विश्व-विद्यालय ने संस्कृत के कुछ परीक्षार्थियों के लिए इसके पहले पाँच और बीच के चार (ग्यारहवाँ, बारहवाँ, तेरहवाँ और चौदहवाँ) सर्ग पाठ्य विषयों में परिगणित किये हैं। साधारण काव्य-प्रेमियों के लिए भी इसमे मनोरञ्जन की बहुत सामग्री है। इससे बहुत कुछ शिक्षा भी मिल सकती है। परन्तु सिर्फ़ हिन्दी जानने वाले इससे

लाभ नहीं उठा सकते। इसी त्रुटि को दूर करने के लिए इस अनुवाद की रचना हुई है।

## भारवि का समय।

इसके कर्त्ता का नाम भारवि है। वह कब हुआ, कहाँ हुआ, कब उसने इस महाकाव्य की रचना की—इन प्रश्नों का उत्तर देना प्राय' असम्भव सा है। इस सम्बन्ध मे यदि कुछ कहा भी जा सकता है तो केवल अनुमान के बल पर कहा जा सकता है। लिखित और विश्वसनीय प्रमाण प्राप्त नहीं। तथापि, अनुमान से भी बहुत काम निकलता है और कुतूहल की भी थोड़ी बहुत निवृत्ति हो जाती है। अतएव, अनुमान से भारवि के समय के विषय मे जो कुछ जाना गया है उसका संक्षिप्त उल्लेख किया जाता है।

इधर दो चार सौ वर्ष के पुराने ग्रन्थों में तो भारवि के किरातार्जुनीय के श्लोकों के अवतरण मिलते ही हैं; इससे भी पुराने ग्रन्थों और लेखों में भारवि और उनके काव्य का नाम पाया जाता है। इनमे सबसे पुराना एक शिलालेख है। यह शिलालेख दक्षिण मे, बीजापुर ज़िले के आयहोली नामक गाँव के एक जैन-मन्दिर में, मिला है। यह मन्दिर जैन-कवि रविकीर्त्ति का बनवाया हुआ है। रविकीर्त्ति, चालुक्य-नरेश द्वितीय पुलकेशी का आश्रित था। शिलालेख पद्यमय है। उसकी कविता सरस है। वह रविकीर्त्ति की ही रचना है। यह बात उसने स्वयं उस लेख में लिखी है—

प्रशस्तेर्वसतेश्चापि जिनस्य त्रिजगद्गुरोः।
कर्त्ता कारयिता चापि रविकीर्त्तिः कृती स्वयम्॥

अर्थात् शिलालेख की प्रशस्ति का रचनेवाला और त्रिजगद्गुरु जिन के मन्दिर का बनवाने वाला स्वयं रविकीर्त्ति ही है। इस मन्दिर की लम्बी-चौडी प्रशस्ति मे रविकीर्त्ति ने अपने आश्रयदाता पुलकेशी की प्रशंसा और उसके वंश का वर्णन किया है। साथ ही मन्दिर-निर्म्माण का समय भी दिया है। समय-विषयक दो श्लोक उसने दिये हैं, जिनकी नक़ल नीचे दी जाती है—

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु गतेस्वब्देषु पञ्चसु ॥ (३७३५) ॥
पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम् ॥ (५५६) ॥

अर्थात् महाभारत-युद्ध के ३७३५ और शक-संवत् के ५५६ वर्ष बीतने पर, पूर्वोक्त मन्दिर का निर्म्माण हुआ। इससे सिद्ध हुआ कि यह जैन-मन्दिर ६३४–३५ ईसवी मे बना था और उस समय रविकीर्त्ति जीवित था। दूसरे पुलकेशी का राज्य-काल ६४२ ईसवी में समाप्त हुआ, यह बात अन्य शिलालेखों से प्रमाणित हो चुकी है। अतएव, मन्दिर-निर्म्माण के समय वह भी जीता था। रविकीर्त्ति ने भी लिखा है—"सत्याश्रये शासति"। पुलकेशी का ही नामान्तर सत्याश्रय था। जिस समय यह मन्दिर बना उस समय महाभारत हुए ३७३५ वर्ष हो चुके थे। अर्थात् रविकीर्त्ति के कथनानुसार सन् ईसवी के प्रारम्भ के ३१०१ वर्ष पहले महाभारत हुआ था। अतएव, उसे हुए आज से ५०१७ वर्ष हुए। इतने ही वर्ष कलियुग का आरम्भ हुए हो चुके। जो लोग महाभारत का होना ईसा के

तीन हज़ार वर्ष पहले मानते हैं उनके अनुमान की पुष्टि रविकीर्त्ति के लेख से भी होती है ।

इसी रविकीर्त्ति ने अपने पूर्वोक्त शिलालेख मे भारवि का नाम दिया है । यथा—

येनायोजि नवेऽश्मर्स्थिरमर्थविधा विवेकिना जिनवेश्म ।
स विजयतां रविकीर्त्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्त्तिः ॥

जिस शिलालेख से यह श्लोक तथा पहले के दो श्लोक दिये गये हैं उसकी पूरी नकल इंडियन एंटिक्वेरी की पाँचवीं जिल्द में है । प्राचीन-लेखमाला के पहले भाग मे भी उसकी नक़ल छपी है ।

इस ऊपर के लेख से मालूम हुआ कि किरातार्जुनीय के कर्त्ता भारवि रविकीर्त्ति के पहले के हैं । कुमारी मेबिल डफ ने अपनी एक पुस्तक (Chronology of India) मे लिखा है कि रविकीर्त्ति ६१० ईसवी में विद्यमान था । जिन-मन्दिर का निर्म्माण उसने ६३४–३५ ईसवी मे किया । तब तक भारवि के कवित्व की ख्याति दूर दूर तक फैल गई थी । रविकीर्त्ति के सदृश कवि भी भारवि की कविता को आदर्श और कीर्त्तिकारिणी समझने लगा था । रविकीर्त्ति को हुए कुछ कम तेरह सौ वर्ष हो गये । उस समय न रेल थी, न तार था, न डाक थी, न छापाख़ाना था । इस दशा में नामी से भी नामी कवि की कीर्त्ति फैलने और उसके ग्रन्थों का प्रचार होने में सौ डेढ़ सौ वर्ष ज़रूर लगते रहे होंगे । जब ईसा के सातवें शतक के आरम्भ में कालिदास की तरह भारवि की भी प्रसिद्धि हो गई थी तब वे ईसा के छठे शतक के पहले ही विद्यमान रहे होंगे । अतएव, भारवि को हुए कम से कम चौदह सौ वर्ष अवश्य बीते ।

काव्य का चोल, पांड्य और केरल देश मे शीघ्र पहुँच जाना सम्भव न था। अतएव, आश्चर्य्य नही जो भारवि ने वही कहीं दक्षिण में, अथवा मालवे या बरार मे, जन्म ग्रहण करके किरातार्जुनीय की रचना की हो। पर यह अनुमान मात्र है। और, कोरे अनुमान का मूल्य कितना होता है, यह कौन नहीं जानता?

## किरातार्जुनीय के टीकाकार।

बम्बई के निर्णयसागर प्रेस से प्रकाशित किरातार्जुनीय भूमिका मे इस काव्य के सात टीकाकारो के नाम दिये हुए हैं यथा—(१) प्रकाशवर्ष, (२) जोनराज, (३) एकनाथ, (४) धर्म्मविजय, (५) विनयसुन्दर, (६) नरहरि और (७) मल्लिनाथ। मल्लिनाथ के नाम के आगे एक "आदि" भी है। पर उस "आदि" के अन्तर्गत टीकाकारो का नाम सुनने मे नहीं आया। इसी भूमिका मे यह भी लिखा है कि प्रकाशवर्ष और जोनराज काश्मीर के रहनेवाले थे; धर्म्मविजय और विनयसुन्दर जैन थे; एकनाथ, नरहरि और मल्लिनाथ दाक्षिणात्य थे। मल्लिनाथ की टीका को छोड कर और सब टीकाये दुष्प्राप्य हैं। उनका बहुत ही कम प्रचार है। सर्वाधिक प्रचार मल्लिनाथ ही की टीका का है। अब तक अनेक विद्वानों की राय थी कि मल्लिनाथ तैलङ्ग देश के रहनेवाले थे और ईसा की चौदहवीं शताब्दी मे विद्यमान थे। कोई कोई उन्हें पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ मे भी विद्यमान मानते थे। पर अब यह समय-निर्णय संदेह-जनक मालूम होता है। मल्लिनाथ ने शिशुपाल-वध और किरातार्जुनीय की टीकाओं में

केशव-कोश नामक एक ग्रन्थ का उल्लेख किया है। इस कोश के कर्त्ता केशव पंडित ने अपने ग्रन्थ का निर्म्माण-समय ४७६१ गत-कलि-वर्ष, अर्थात् १६६० ईसवी, लिखा है। यदि यह ठीक है तो मल्लिनाथ बहुत ही अर्वाचीन ठहरते हैं। परन्तु हमने केशव-कोश नही देखा। अतएव, नही कह सकते कि उसमें उसका निर्म्माण-काल दिया हुआ है या नहीं और यदि है तो वही है जो निर्णय-सागर से प्रकाशित किरातार्जुनीय की भूमिका में लिखा है अथवा कुछ। मल्लिनाथ की रचना से तो यही मालूम होता है कि इतने अर्वाचीन नही।

मल्लिनाथ संस्कृत के पारगामी पंडित थे। वे अनेक शास्त्रों के ज्ञाता और भिन्न भिन्न विषयों पर लिखे गये संस्कृत के सैकड़ों ग्रन्थों से परिचित थे। उन सबसे प्रमाण उद्धृत करके उन्हें उन्होंने अपनी टीकाओं में दिया है। काव्यों के तो वे बहुत ही अच्छे समझनेवाले थे। कवियों का हृद्गत भाव उनके अक्षरो से निकाल कर जैसा उन्होंने साफ़ साफ़ लिखा है वैसा शायद ही और किसी टीकाकार ने लिखा हो। इस भूमिका के आरम्भ मे निज छः काव्यों के नाम दिये गये हैं उन सब पर मल्लिनाथ ने टीकायें लिखी हैं। उनकी टीकायें लोगों को इतनी पसन्द आईं कि अन्यान्य टीकाओं का लोप सा हो गया। अब सर्वत्र मल्लिनाथ ही की टीकायें प्रकाशित होती और पढ़ी जाती हैं।

मल्लिनाथ कोरे टीकाकार ही न थे, समालोचक भी थे। टीका लिखते समय उन्होंने कवि के आशय को तो स्पष्ट करके बता ही दिया है, उसकी उक्तियों की खुबियाँ भी बताई हैं और

रस, अलङ्कार, ध्वनि इत्यादि का भी उल्लेख किया है। जहाँ कहीं उन्हे कोई त्रुटि देख पड़ी है वहाँ यथाशक्ति उसके समर्थन की चेष्टा की है। व्याकरण के नियमो का परिपालन करने मे कवि कभी कभी निरङ्कुशता कर जाते हैं। जहाँ जहाँ ऐसी निरङ्कुशताये मल्लिनाथ को मिली हैं वहाँ वहाँ न तो उन्होने कवि की दिल्लगी उड़ाई, न जरा भी औद्धत्य प्रकट किया। उलटा उन्होने उस निरङ्कुशता पर धूल डालने की चेष्टा की है। जहाँ तक उनसे हो सका है, उन्होने उसके समर्थन की चेष्टा की है। जब कोई उपाय नही चला तब "चिन्त्य" "विचार्य्य" अथवा ऐसी ही और कोई बात लिख कर वे चुप हो गये हैं। इसी किरातार्जुनीय के सत्रहवे सर्ग के अन्त मे एक श्लोक है—

> उन्मज्जन्मकर इवामरापगाया
>
> वेगेन प्रतिमुखमेत्य बाणनद्याः।
>
> गाण्डीवी कनकशिलानिभं भुजाभ्या—
>
> माजघ्ने विषमविलोचनस्य वक्षः॥

संस्कृत में "हन्" धातु न आत्मनेपदी है और न उभयपदी। वह परस्मैपदी है। अतएव, इस श्लोक मे उसका रूप "आजघान" होना चाहिए, "आजघ्ने" नही। पर मल्लिनाथ ने भारवि की इस निरङ्कुशता पर इतना ही लिखने की ज़रूरत समझी है कि—"अत्रात्मनेपदं विचार्य्यम्।" उन्होने यह नही लिखा कि यह प्रयोग व्याकरण-विरुद्ध है। इनमें एक गुण यह भी था कि अन्याय-सङ्गत पक्षपात से उन्हे घृणा थी। प्राचीन कवियों की ग़लतियों को सही साबित करने के लिए कोई कोई टीकाकार कभी

कभी शब्दों को तोड़ मरोड़ और पदों को उलट पुलट कर कुछ का कुछ अर्थ निकालने की चेष्टा करते हैं। ऐसी चेष्टा मल्लिनाथ को पसन्द न थी। ऊपर दिये गये श्लोक के "आजघ्ने" को भी शुद्ध साबित करने के लिए कुछ लोगों ने ऐसा ही प्रयत्न किया है। उनके कथन का अवतरण देकर मल्लिनाथ ने उन्हें फटकार बताई है और लिखा है कि प्रसङ्ग भी देखते हो या मनमानी हाँकते हो। तुम्हे इस प्रयोग को सही साबित ही करना है तो पाणिनि-व्याकरण के पीछे न पड़ कर और व्याकरण देखो। शायद किसीमे समाधान मिल जाय। पदों को तोड़ मरोड़ कर कवि के असली आशय को क्यों नष्टभ्रष्ट करते हो।

टीकाकार चाहिए भी ऐसा ही। मल्लिनाथ तो कवि भी थे। अपनी टीकाओं के आरम्भ मे उन्होंने अपने रचे हुए जो पद्य दिये हैं उनसे उनके कवि होने का प्रमाण मिलता है। उनका रचा हुआ एक आध काव्य भी सुनने मे आया है।

मल्लिनाथ ने किरातार्जुनीय की टीका का नाम रक्खा है—घण्टापथ। शाह-राह या नगर के मुख्य मार्ग का नाम घण्टापथ है। जिस मार्ग पर घण्टा बजता हो, अतएव जिस पर चलने वालों को मार्ग-भ्रष्ट होने का भय न हो, उसका नाम घण्टापथ है। इस नाम से मल्लिनाथ का यह अभिप्राय है कि जो लोग मेरी टीका के सहारे भारवि की कविता का मर्म्म समझने की चेष्टा करेंगे वे कभी कवि के उद्दिष्ट-अर्थ-ज्ञान से भ्रष्ट न होंगे—उनकी समझ में कवि का आशय अवश्य ही आ जायगा। इसमें सन्देह नहीं कि मल्लिनाथ की यह टीका ऐसी ही है। यदि यह न होती तो भारवि की

भाव समझने मे बड़ी कठिनता उपस्थित होती और हम तो किराता-र्जुनीय का यह हिन्दी-अनुवाद लिख ही न सकते। मल्लिनाथ की टीका ही के सहारे ही हम इस काव्य का कुछ आशय समझ सके हैं। अतएव, हम मल्लिनाथ महाराज के सबसे अधिक ऋणी हैं।

## भारवि के अन्य ग्रन्थ।

किरातार्जुनीय के सिवा भारवि का लिखा हुआ और भी कोई ग्रन्थ है या नही, इसका पता आज तक नही चला। उनके और कोई पद्य कही उद्धृत किये गये भी नहीं देखे गये। इस कवि की सारी कीर्त्ति इस एक ही महाकाव्य के कारण है। यदि इसने और भी कोई पुस्तक लिखी तो वह प्राप्य नहीं।

## शिशुपालवध में किरातार्जुनीय की शैली का अनुकरण।

शिशुपालवध के कर्त्ता माघ-पण्डित भारवि के बाद हुए हैं। जान पड़ता है, माघ ने किरातार्जुनीय को बड़े ध्यान से पढ़कर अपने काव्य की रचना की है। क्योकि, दोनों में कथावतरण-सम्बन्धिनी अनेक समतायें हैं। भारवि ने पाण्डवो के पास वेद-व्यास को भेज कर कर्तव्य-निर्देश किया है; माघ ने भी नारद को कृष्ण के पास भेज कर शिशुपाल को मारने की प्रार्थना की है। भारवि ने द्रौपदी, युधिष्ठिर और भीम के मुख से राजनीति का वर्णन किया है; माघ ने भी कृष्ण, बलराम और उद्धव के मुख से राज-नीति कही है। भारवि ने यमकपूर्ण पद्यो में हिमालय का वर्णन

किया है; माघ ने भी वैसे ही पद्यों मे रैवतक का वर्णन किया है। भारवि ने सभी ऋतुओं का एक ही साथ प्रादुर्भाव दिखाया है, माघ ने भी—"अथ रिरंसुममु युगपद्दिरो"—आदि श्लोको मे वही किया है। भारवि ने अर्जुन के पास किरात-वेशधारी शिव का दूत, सन्देश सुनाने के लिए, भेजा है; माघ ने भी कृष्ण के पास शिशुपाल का दूत उसी निमित्त भेजा है। भारवि ने अपने ग्रन्थ के पन्द्रहवे सर्ग मे चित्र-काव्य की रचना की है; माघ ने भी शिशुपाल-वध के उन्नीसवे सर्ग मे इस विशेषता का अनुकरण किया है। भारवि ने ग्रन्थारम्भ मे—"श्रिय कुरूणामधिपस्य पालनीम्"—लिखा है, माघ ने भी—"श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगत्"—लिख कर भारवि के "श्रीः" शब्द की अवतारणा की है। यहाँ तक कि भारवि की तरह माघ ने भी हर सर्ग के अन्तिम श्लोक मे लक्ष्मी-वाचक श्री-शब्द का प्रयोग किया है। अतएव यह स्पष्ट है कि माघ ने भारवि का काव्य देखकर ही अपने काव्य का निर्माण किया है।

## भारवि के विषय में एक किंवदन्ती।

भारवि के विषय में एक किम्वदन्ती है। उसे हमने कई जगह पढ़ा है। सब कहीं वह एक सी नहीं। किसी मे कुछ बाते अधिक हैं, किसी में कुछ कम। पर मुख्य बात सब मे सदृश है। किम्वदन्तियों में भी कभी कभी सत्य का कुछ अंश रहता है—"नह्यमूला जनश्रुतिः।" अतएव, हम उसे यहाँ पर लिखे देते हैं। इससे और कुछ नहीं तो मनोरञ्जन अवश्य ही हो सकता है। वह इस प्रकार है—

भारवि धारा-नगरी (वर्तमान धार) के निवासी थे। उनके पिता का नाम श्रीधर और माता का सुशीला था। उनका विवाह भृगुकच्छ (वर्तमान भड़ोच) के चन्द्रकीर्त्ति नामक एक गृहस्थ की कन्या रसिका के साथ हुआ था। भारवि के पिता बड़े विद्वान् थे। भारवि अपने पिता से भी बढ कर विद्वान् हुए। शास्त्रार्थ में उन्होने सैकड़ों पण्डितों को परास्त किया। इस कारण उनको अपनी विद्वत्ता का बहुत घमण्ड हो गया। यह बात श्रीधर पण्डित को नागवार हुई। उन्होने भारवि के गर्व्वांङ्कुर का उच्छेद करना चाहा। उन्होने कहा, गर्व पाण्डित्य का बहुत बड़ा शत्रु है। जिसे यह अहङ्कार हो जाता है कि मैं भी कुछ हूँ उसकी उन्नति रुक जाती है। अतएव, वे समय असमय का विचार किये बिना ही भारवि की निन्दा करने लगे। "तू कुछ नहीं जानता; तू महा मूर्ख है, तू अभी निरा बच्चा है"—पिता के ऐसे भर्त्सना-वाक्य सुनते सुनते भारवि ऊब उठे। जब उन्होने देखा कि औरों के सामने भी पिता मेरा अपमान करता है तब वे अत्यन्त कुपित हुए। उनके क्रोध की मात्रा दिन पर दिन बढ़ती ही गई। फल यह हुआ कि एक बार क्रोधान्ध होकर भारवि ने रात के समय पिता को मार डालने का निश्चय किया। उस दिन वे बहुत ही मलिन-मुख और उदास रहे। कुछ खाया भी नहीं।

उस दिन रात को भारवि घर के भीतर इस इरादे से कहीं छिप रहे कि, माता-पिता के सो जाने पर, मौका मिलते ही, पिता को मार डालूँगा। वे मौके की ताक में थे ही कि उन्होंने अपने माता-पिता को इस प्रकार परस्पर बातें करते सुना—

माता—आज भारवि ने कुछ खाया नहीं। सारा दिन वह बहुत ही उदास रहा।

पिता—इसका कारण क्या ?

माता—कारण इसका आप ही मालूम होते हैं।

पिता—कैसे ?

माता—आप भारवि की सदा निन्दा किया करते हैं; उसे सबके सामने मूर्ख और विकल-बुद्धि बताया करते हैं। इसीसे उसे दुःख पहुँचा होगा। आप ऐसा करना छोड़ दीजिए। आप का यह बर्ताव अच्छा नहीं। लड़का मूर्ख नहीं, पण्डित है।

पिता—इसमें सन्देह नहीं कि भारवि पण्डित ही नहीं, महा-पण्डित है। मैं उसका पाण्डित्य देख कर बहुत प्रसन्न हूँ। पर मैं जो उसकी निर्भर्त्सना करता हूँ, इसका कारण है। मैं चाहता हूँ कि भारवि इससे भी अधिक विद्वान् और यशस्वी हो। पर अहङ्कार इन बातों मे बड़ा बाधक है। जिसे अपनी विज्ञता का घमण्ड हो जाता है वह अधिक उन्नति नहीं कर सकता। मैं नहीं चाहता कि प्राणोपम पुत्र भारवि की उन्नति रुक जाय।

यह वार्तालाप सुनते ही भारवि पर वज्रपात सा हुआ। उन का क्रोध हवा हो गया। पिता की पुत्र-वत्सलता देख कर उनकी आँखों से प्रेमाश्रु की धारा बह निकली। साथ ही उन्हें पितृ-हत्या करने का विचार मन में लाने के कारण घोर पश्चात्ताप भी हुआ। जैसे तैसे रात बीती। प्रातःकाल होते ही भारवि पिता के सामने उपस्थित हुए। पूछा, पिता! मानसिक पितृहत्या का प्रायश्चित्त

क्या है ? पिता ने उत्तर दिया, छः महीने ससुराल मे रहना। तब भारवि ने पिता से अपना सारा हाल कह सुनाया। पिता ने कहा—वैसा प्रायश्चित्त अपढ़ो और अल्पज्ञों के लिए है। तू तो पण्डित है। तेरे लिए पश्चात्ताप ही प्रायश्चित्त है, ससुराल जाने की ज़रूरत नहीं। पर भारवि ने न माना। वे छः महीने के लिए ससुराल चले गये। भारवि की पत्नी उस समय अपने पिता ही क घर थी।

ससुराल मे दामाद का आदर थोड़ेही दिन होता है। भारवि गये थे छः महीने रहने। दस पाँच दिन तो वे ठाट से रक्खे गये। इसके बाद उन्हे गोचारण का काम मिला। इस काम को भारवि ने शायद ख़ुद ही पसन्द किया हो। क्योकि जङ्गलो और मैदानों के प्राकृतिक दृश्य कवियों को स्वभाव ही से अच्छे लगते हैं। ख़ैर, भारवि रोज़ अपने ससुर की गाये खोल कर सुबह चराने ले जाते और शाम को लौटते। दिन भर वे वहाँ जङ्गल मे किसी पेड के नीचे बैठ कर किरातार्जुनीय की रचना करते। जो श्लोक बन जाता उसे वे किसी काँटे से छेद कर पत्ते पर अङ्कित कर लेते। इस तरह सैकडों श्लोकाङ्कित पत्ते उनके पास जमा हो गये। पत्तों का यही समुदाय इस महाकाव्य का आदिम रूप हुआ।

एक दिन की बात है कि भारवि की पत्नी को ख़र्च के लिए कुछ रुपया दरकार हुआ। पत्नी की दौड़ पति तक। पर भारवि के पास रुपया कहाँ। इस पर भारवि की पत्नी बहुत खिन्न हुई। यह देख कर भारवि ने कहा—अच्छा जो तुम्हारा काम बिना रुपये के किसी तरह चलही नहीं सकता तो लो यह श्लोकार्द्ध किसीके

यहाँ गिरवी रख कर ख़र्च के लिए रुपया ले आवो। उस समय भारवि किरातार्जुनीय के दूसरे सर्ग के तीसवे श्लोक की रचना कर रहे थे। तब तक आधा ही श्लोक बना था। पत्ते पर लिखा हुआ उतना ही श्लोक उनके हाथ मे था। वही उन्होने रसिका के हवाले कर दिया। श्लोकार्द्ध यह था—

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदापदम्

अर्थात् कोई काम बिना विचार किये सहसा न कर डालना चाहिए। क्योकि अविवेक अनेक उत्कट आपदाओ का घर है। जो लोग बिना सोचे समझे कोई काम कर डालते हैं उन्हे पीछे पछताना पड़ता है।

रसिका इस पत्ते को लेकर वर्धमान नामक एक धनी वैश्य की स्त्री के पास गई और उसे गिरवी रख कर अपने मतलब भर को रुपया ले आई। वर्धमान की पत्नी ने उस पत्ते को अपने पलँग के सिरहाने, दीवार मे गडी हुई एक खूँटी से, धागे के सहारे लटका दिया। वर्धमान को विदेश गये दस पन्द्रह वर्ष हो चुके थे। वह व्यापार के लिए किसी दूरवर्ती द्वीप को गया था। जिस समय वह घर से गया था उसकी पत्नी गर्भवती थी। उसकी अनुपस्थिति में उसकी पत्नी के पुत्र हुआ। जिस समय की यह बात है उस समय वह लड़का किशोरावस्था को पहुँच गया था। तथापि रात को वह अपनी माता के साथ एकही पलँग पर सोता था।

जिस दिन सायङ्काल वर्धमान की पत्नी ने वह श्लोकार्द्ध गिरवी रक्खा उसी रात को उसका पति लौट आया। जहाज़ से उतर कर उसने सोचा कि मुझे घर से गये बहुत समय हुआ। चुपचाप

जाकर देखूँ तो मेरी पत्नी का क्या हाल है। यह निश्चय करके उसने चोर की तरह अपने घर मे प्रवेश किया। वहाँ उसने देखा कि उसकी पत्नी सो रही है और उसी की बग़ल मे एक पुरुष भी पड़ा है। दोनों एकही चादर ओढे हुए हैं। इस पर वर्धमान को अपनी पत्नी के सतीत्व मे सन्देह हुआ। उसे इतना क्रोध आया कि तलवार उसने मीयान से बाहर निकाल ली। ज्योंही उसने उन दोनो को एकही वार से मार डालने के लिए तलवार ऊपर उठाई त्योंही वह दीवार मे गड़ी हुई खूँटी से टकरा गई और वह श्लोकार्द्ध-अङ्कित पत्ता खड़ खड़ा कर नीचे गिर गया। वर्धमान ने यह देखने के लिए कि क्या चीज़ गिरी, उस पत्ते को उठा लिया। कमरे मे चिराग़ ज़लही रहा था। उसके प्रकाश मे वर्धमान ने जो उस श्लोकार्द्ध को पढ़ा तो उसका विचार बदल गया। उसने कहा—अच्छा तो इन्हे सोते मे नही, जगा कर मारूँगा। यह निश्चय कर के उसने तलवार की थपकी मार कर अपनी पत्नी को जगाया। स्त्री ने उठ कर अपने स्वामी को पहचाना। तब तत्काल ही उसने अपने सोये हुए पुत्र को हाथ से हिला कर यह कहते हुए जगाया कि—बेटा, उठो; तुम्हारे पिता आगये। पुत्र उठ बैठा और पिता वर्धमान को उसने सादर प्रणाम किया।

पूछने पर वर्धमान की पत्नी ने पुत्रजन्म का हाल कह सुनाया। तब वर्धमान को बड़ा रञ्ज हुआ। उसने कहा—ईश्वर ने आज बड़ी कृपा की, नहीं तो मैं अनर्थ कर बैठा था। यदि यह पत्ता ज़मीन पर न गिर जाता और इस पर अङ्कित श्लोकार्द्ध के अर्थ पर विचार करके यदि मैं न रुक जाता तो आज तुम दोनों की जान गई थी।

किनसे किस प्रकार वह पत्ता प्राप्त हुआ, यह मालूम होने पर प्रातःकाल वर्धमान ने भारवि को बुलाया और उस श्लोक का उत्तरार्द्ध माँगा। भारवि ने इस प्रकार अगले दो चरण सुना कर उसकी पूर्त्ति की—

वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः।

अर्थात् सोच समझ कर काम करनेवालों के गुण पर मुग्ध हुई सम्पदायें स्वयं ही उसके पास चली जाती हैं। वर्धमान ने भारवि को ही अपनी पत्नी और पुत्र की जान बचाने का निमित्त कारण समझ कर उन्हें बहुत सा धन दिया। इस प्रकार उसने श्लोक के उत्तरार्द्ध में कही गई उक्ति को भी सही साबित कर दिया।

इस आख्यायिका की यहीं समाप्ति होती है। इसके कारण पण्डितों की दृष्टि में भारवि के उक्त श्लोक की महिमा बहुत बढ़ गई है।

## किरातार्जुनीय में वर्णन की गई कथा।

इस महाकाव्य में किन किन बातों का वर्णन है, यह एक प्राचीन श्लोक में, बहुत थोड़े में, बता दिया गया है। इस श्लोक को मल्लिनाथ ने अपनी टीका में उद्धृत किया है। श्लोक यह है—

नेता मध्यमपाण्डवो भगवतो नारायणस्यांशज—<br>
स्तस्योत्कर्षकृतेऽनुवर्ण्यचरितो दिव्यः किरातः पुनः।<br>
शृङ्गारादिरसोऽयमत्र विजयी वीरप्रधानो रसः<br>
शैलाद्यानि च वर्णितानि बहुशो दिव्यास्त्रलाभः फलम्॥

अर्थात् इस महाकाव्य के नायक, भगवान् नारायण के अंश से उत्पन्न, मध्यम पाण्डव अर्जुन हैं। उन्ही के बल-वीर्य्य आदि का उत्कर्ष दिखाने के लिए दिव्य-किरात-रूपधारी शिवजी का भी वर्णन है। उन्हे उपनायक समझना चाहिए। इसमे शृङ्गार, शान्त आदि और रस भी हैं, पर वीर-रस इसमे प्रधान है। पर्वतों, नदियों, उपवनों आदि का भी बहुत कुछ वर्णन इसमे है। अर्जुन के द्वारा पाशुपत नामक दिव्यास्त्र की प्राप्ति, इसका मुख्य फल है।

किरातार्जुनीय मे जिस कथा का वर्णन है उसे भारवि ने महाभारत के वन-पर्व से लिया है। पर उसका ढॉचा मात्र लिया है। उसमे उन्होने मनमाना फेरफार किया है। महाकाव्य के सारे लक्षण लाने के लिए उन्होने उसका विस्तार ख़ूब ही बढ़ाया है। उस पर यथेच्छ पालिश की है और बेहद नमक-मिर्च लगाया है। ऐसा करने के लिए उन्हे पूर्ण अधिकार था। पर उनसे इस अधिकार का थोड़ा सा दुरुपयोग हो गया है। हॉ, एक बात अवश्य है। वह यह कि दुरुपयोग आज कल की दृष्टि से दिखाई देता है, भारवि के समय की दृष्टि से नही। क्योकि उस समय की दृष्टि से आज कल की दृष्टि मे बहुत अन्तर हो गया है।

महाभारत की कथा के आधार पर भारवि ने जो कथा किरातार्जुनीय में लिखी है उसका सारांश नीचे दिया जाता है—

हस्तिनापुर से निकाले जाने पर युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई, द्रौपदी को लेकर, काम्यक-वन में रहने लगे। यही वन शायद

द्वैत-वन भी कहा जाता था। अथवा उस वन के किसी अंश का यह नाम रहा हो। वहाँ युधिष्ठिर के मन मे यह बात आई कि दुर्योधन का काम-काज देख आने के लिए कोई जासूस भेजना चाहिए। इस काम के लिए उन्होंने एक ब्रह्मचारी को चुना। वह वनवासी का रूप धारण करके हस्तिनापुर गया और सब बातें अपनी आँखो देख आया। लौट कर उसने युधिष्ठिर से कहा कि दुर्योधन बड़ी योग्यता से राज्य कर रहा है। वह अच्छा राजनीतिज्ञ है, बड़ा न्यायशील है, उत्कृष्ट प्रजापालक है। बन्धु-बान्धवो और अधीन राजाओं को उसने अनुरक्त बना लिया है, सेना भी उससे प्रसन्न है; प्रजा भी उसके प्रतिकूल नही। यह सब कह कर वह चला गया। युधिष्ठिर ने उसका कथन द्रौपदी को सुनाया। उस समय भीमसेन भी उपस्थित थे। अपने शत्रु दुर्योधन का उत्कर्ष-वर्णन सुन कर द्रौपदी को बहुत दुःख हुआ। उसने युधिष्ठिर की शिथिलता, शान्ति और सहनशीलता की बडी निन्दा की। अपने ऊपर किये गये अत्याचारों और युधिष्ठिर आदि के ऊपर आई हुई विपत्तियों का भी वर्णन उसने किया। युधिष्ठिर की चमाशीलता ही को सारे अनर्थों की जड़ बता कर उन्हें शस्त्र-धारण करने के लिए उसने उकसाया। भीमसेन ने उसका साथ दिया। उन्होंने द्रौपदी की बातों की पुष्टि की, अपनी तरफ़ से भी बहुत कुछ कहा-सुना और युधिष्ठिर को सलाह दी कि लड़ कर दुर्योधन से अपना राज्य छीन लेना चाहिए; विलम्ब न करना चाहिए।

भीमसेन की वक्तृता सुन कर युधिष्ठिर ने पहले तो उनके कथन की प्रशंसा की। फिर राजनीति का रहस्य समझाया। फिर

कहा, तेरह वर्ष बाहर रहने की प्रतिज्ञा तोड़ना अच्छा नहीं। समय आने दो। तब जैसा उचित होगा किया जायगा।

इतने में व्यासजी वहाँ आ गये। पाण्डवों ने उनका ख़ूब आदर-सत्कार किया। व्यासजी ने उनसे सहानुभूति प्रकट की और कहा कि तुम लोगो पर सचमुच ही बड़ा अत्याचार हुआ है। न्याय से तुम्हे तेरह वर्ष बाद राज्य मिल जाना चाहिए, पर लक्षणों से मालूम होता है कि दुर्योधन प्राप्त हुआ राज्य तुम्हे सीधी तरह न लौटावेगा। युद्ध करना ही पड़ेगा। और, यदि युद्ध हुआ तो तुम्हारी जीत मे शङ्का है, क्योकि भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि बड़े बड़े शस्त्रविद्या-विशारद उसी की तरफ़ हैं। अतएव तुम एक बात करो। मैं अर्जुन को इन्द्र-सम्बन्धिनी एक मन्त्र-विद्या की दीक्षा दिये देता हूँ। सशस्त्र होकर वह इन्द्रकील-पर्वत पर उसका अनुष्ठान करे। इन्द्र प्रसन्न होगा और अर्जुन को ऐसे शस्त्रास्त्र देगा कि उनकी बदौलत युद्ध में अर्जुन अवश्य ही अपने शत्रुओं पर विजय-प्राप्ति करेगा। यह कह कर व्यासजी ने अर्जुन को मन्त्रदीक्षा दे दी और एक यक्ष को साथ कर दिया। यक्ष ने अर्जुन को इन्द्रकील-पर्वत पर पहुँचा दिया।

उस पर्वत पर इन्द्र ही का अधिकार था। अर्जुन की घोर तपस्या देख कर पर्वत के रक्षक घबरा गये। उन्होने सोचा, ऐसा न हो जो यह तपस्वी हमारे स्वामी इन्द्र का आसन छीन ले। अतएव वे इन्द्र के पास दौड़े गये और सब हाल कह सुनाया। यथार्थ बात क्या है, यह इन्द्र तत्काल ही ताड़ गया और मन ही मन बहुत प्रसन्न भी हुआ; पर लोकाचार की रक्षा के लिए उसने

अप्सराओं को बुला कर आज्ञा दी कि उस तपस्वी की तपस्या भङ्ग कर आवो।

अमरावती से अप्सराओं के यूथ के यूथ चल पड़े। उनके साथ गन्धर्व भी रवाना हुए। उन्होंने अर्जुन के तपोभङ्ग की ख़ूब ही चेष्टा की। पर उनका परिश्रम और प्रयत्न व्यर्थ गया। अर्जुन का आसन ज़रा भी न डिगा। तब अप्सरायें अपना सा मुँह लेकर लौट गईं।

विफल-प्रयत्न होकर अप्सराओं के लौटने पर इन्द्र ने स्वयं प्रस्थान किया। एक बूढ़े ब्राह्मण का रूप बना कर वह अर्जुन के पास आया। उसने उनके आकार-प्रकार, तेज और तप की बड़ी प्रशंसा की। अन्त में उसने कहा कि तुम्हारे लिए तो मुक्ति तक करतलामल-कवत् हो रही है, ये शस्त्र तुमने क्यों पास रख छोड़े हैं। इनसे तो यही सूचित होता है कि तुम कैवल्य की नहीं, किन्तु किसी तुच्छ लौकिक सुख की प्राप्ति के लिए तपश्चर्य्या कर रहे हो। ऐसी कुत्सित कामना छोड़ दो। शस्त्र फेंक दो। मोक्ष की प्राप्ति की साधना में रत हो। उत्तर में अर्जुन ने शत्रुओं के द्वारा किये गये अपकारों और अत्याचारों का वर्णन किया। उन्हों ने कहा, मैं गृहस्थ हूँ। जिस साधना का उपदेश आप देते हैं उसका मैं अधिकारी नहीं। गृहस्थ-धर्म का पालन करने के लिए शत्रुओं से उनके कृतापकारों का बदला लेना मेरा सबसे बड़ा कर्तव्य है। इस पर इन्द्र ने प्रसन्न होकर अपना असली रूप दिखाया और शिवजी की आराधना करने के लिए अर्जुन को सलाह दी।

इन्द्र की आज्ञा से अर्जुन शिवजी की आराधना करने लगे। उन्होंने बड़ी ही विकट तपस्या आरम्भ की। अर्जुन के तेज से आस पास के सिद्ध और तापस जलने से लगे। वे शिवजी के पास दौड़े और अपने झुलसे हुए शरीर दिखाये। शिवजी ने कहा, वह कोई साधारण तपस्वी नही। वह पाण्डव अर्जुन है। उसे नारायण का अंश समझो। चलो मै तुम्हे उसके बल-पौरुष का तमाशा दिखाऊँ। इस काम के लिए यह मौक़ा भी अच्छा है। मूक नाम के दानव को अर्जुन की तपस्या का पता लग गया है। वह समझ गया है कि अर्जुन की तपस्या सफल होने से शिष्टो को लाभ और दुष्टो की हानि होगी। अतएव, वह मायामय वराह बन कर अर्जुन को मारने के लिए आ रहा है।

यह कह कर शिवजी ने किरातों के राजा का रूप रचा। उनके संख्यातीत गण भी किरात बन बन कर उनके साथ चले। शिवजी की यह सेना गङ्गा के किनारे उतर पड़ी। वहाँ से अर्जुन का आश्रम पास ही था। इतने मे पर्वताकार वराह का वेश धारण किये हुए मूकासुर अर्जुन की तरफ दौड़ा। उस पर उधर से अर्जुन ने भी बाण मारा, इधर से शिवजी ने भी। वराह गिर कर मर गया। शिवजी का बाण उसे छेद कर जमीन मे घुस गया। अर्जुन का बाण शूकर के शरीर से निकल कर वहीं गिर पड़ा। अर्जुन ने उस मृत श्वापद के पास जाकर अपना बाण उठा लिया।

इतने में शिवजी का एक दूत वहाँ आकर उपस्थित हुआ। उसने कहा, यह बाण मेरे स्वामी किरातराज का है। तुम मे इतनी शक्ति कहाँ जो तुम इतने बड़े शूकर को मार सको। यदि मेरे राजा

इसे न मार डालते तो यह तुम्हीं को अपना शिकार बना डालता। जिसने तुम्हारे प्राण बचाये उसी का शर तुम उठा ले जाना चाहते हो ! यह तो अच्छी कृतज्ञता है। इस पर अर्जुन ने भी ख़ूब खरी खरी सुनाई। वे बोले—तू एक असभ्य जङ्गली आदमी है। यही समझ कर मैंने तेरे परुष वचन सह लिये हैं। जा, बड़ा बाणवाला बनता है। नही देते। यह बाण मेरा है, तेरे स्वामी का नही। यदि तेरे स्वामी मे इतना बल है तो आवे और इसे मुझसे छीन ले जायँ। पर याद रख, यदि वे इसे छीनने की चेष्टा करेंगे तो उनकी वही दशा होगी जो दशा साँप के सिर से उसकी मणि छीनने वाले की होती है।

दूत के मुख से अर्जुन की उद्धत बातें सुन कर शिवजी अपनी किरात-सेना लेकर युद्ध के लिए चल पड़े। ख़ूब युद्ध हुआ। अर्जुन ने शिवजी की सेना के छक्के छुड़ा दिये। वह भाग खड़ी हुई। कार्तिकेय के बहुत समझाने, बुझाने और धिक्कारने पर वह लौटी।

यह देख कर शिवजी ने अर्जुन को जर्जर करना आरम्भ किया। तब हार कर अर्जुन ने प्रस्वापनास्त्र छोड़ा। शिवजी ने तेजस्क अस्त्र से उसका निवारण कर दिया। अर्जुन ने नागास्त्र छोड़ा। शिवजी ने गारुडास्त्र छोड़ कर उसके प्रभाव को दूर कर दियाँ। अर्जुन ने आग्नेयास्त्र चलाया। शिवजी ने वारुणास्त्र से उसकी ज्वाला शान्त कर दी। इस प्रकार बहुत ही भयङ्कर युद्ध होता रहा। अर्जुन ने भी शिवजी की नाकों दम कर दिया। होते होते शिवजी ने अर्जुन के सब बाण खर्च करा दिये; उनका कवच

ज़मीन पर गिरा दिया, उनका धनुष काट दिया, और उनकी बचीखुची तलवार भी खण्ड खण्ड कर डाली। तब अर्जुन शिवजी पर पत्थर बरसाने लगे। फिर उन्होने पेड उखाड़ उखाड़ कर फेके। अन्त मे वे शिवजी से भिड़ गये और मल्ल युद्ध करने लगे। लड़ते लडते शिवजी की टॉग पकड़ कर अर्जुन ने उन्हे ज़मीन पर पटक देना चाहा।

बात यहाँ तक पहुँचने पर शिवजी अर्जुन का बल-पराक्रम देख कर बहुत प्रसन्न हुए। किरात का वेश छोड कर उन्हो ने अपना प्रकृत रूप धारण किया। तब अर्जुन ने उनकी स्तुति की, अपराध क्षमा कराया और अभीष्ट वरदान माँगा। शिवजी ने उन्हे पाशुपतास्त्र प्रदान किया। शिवजी की आज्ञा से इन्द्र आदि दिक्पालों ने भी अर्जुन को अनेक शस्त्रास्त्र दिये। इस प्रकार कृतार्थ होकर अर्जुन अपने भाई युधिष्ठिर के पास लौट आये और उन्हे सादर प्रणाम किया—

धृतगुरु जय लक्ष्मीर्धर्म्मसूनुं ननाम

बस इतनी ही कथा का वर्णन किरातार्जुनीय मे है।

## किरातार्जुनीय के कतिपय दोष।

भारवि को लिखना था महाकाव्य। पर कथानक उन्होंने ऐसा चुना जिसके विस्तार के लिए यथेष्ट सुभीता न था। महाकाव्य मे सर्ग भी बहुत से होने चाहिए और दिन-रात, सूर्य-चन्द्रमा, जङ्गल-पहाड़, नदी-तड़ाग, जल-विहार, वन-विहार, सुरापान आदि का वर्णन भी आना चाहिए। अलङ्कारशास्त्र के आचार्य्यों की इसी

आज्ञा का परिपालन करने के लिए भारवि को मतलब से अधिक बातें लिखनी पड़ी हैं और विस्तार भी इतना बढ़ाना पड़ा है कि किसी किसी विषय की कविता पढते पढ़ते जी ऊब जाता है। अप्सरायें कहाँ तो अर्जुन को लुभाने गई थीं कहाँ शराब के नशे मे चूर होकर वहाँ जङ्गल मे मङ्गल करने लगीं। एक सर्ग का सर्ग अप्सराओं के मार्ग क्रमण के वर्णन मे खर्च कर दिया। एक शरदृतु के वर्णन मे और एक हिमालय के वर्णन मे। चौदहवें सर्ग मे जो युद्ध का आरम्भ हुआ तो अठारहवे मे जाकर वह समाप्त हुआ। पूरे पाँच सर्ग मे युद्ध वर्णन ! एक सर्ग का सर्ग तो भारवि को केवल चित्र-काव्य-रचना-विषयक अपना चातुर्य दिखाने ही के लिए लिखना पड़ा। पन्द्रहवें सर्ग मे उन्होने विलक्षण विलक्षण श्लोक लिख डाले हैं। कहीं गोमूत्रिका-बन्ध, कहीं अर्धभ्रमक, कही सर्वतोभद्र, कहीं एकाक्षर पाद, कहीं एकाक्षर श्लोक, कहीं द्व्यक्षर श्लोक, कहीं निरौष्ठ्य, कहीं पादान्तादि यमक, कहीं पादादि यमक, कहीं कहीं प्रतिलोमानुलोम-पाद, कही प्रतिलोमानुलोमार्द्ध। एक श्लोक तो आपने ऐसा लिख दिया है जिसके भिन्न भिन्न तीन अर्थ होते हैं। एक में केवल नकार ही का खर्च आपने किया है।

यथा—

न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत् ॥

हल् तकार को आप अक्षर न समझिए। ऐसे काव्य में अन्य हल् अक्षर आ जाने से एकाक्षरता के लक्षण में व्याघात नहीं आता।

भारवि का सर्वतोभद्र देखिए।

| दे | वा | का | नि | नि | का | वा | दे |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| वा | हि | का | स्व | स्व | का | हि | वा |
| का | का | रे | भ | भ | रे | का | का |
| नि | स्व | भ | व्य | व्य | भ | स्व | नि |

यह चार चरणो का एक अनुष्टुप् है। यथा—

देवाकानिनि कावादे वाहिकास्वस्वकाहि वा।

काकारेभभरे काका निस्वभव्यव्यभस्वनि॥

जैसे ऊपर लिखा गया है वैसे ही इसे आठ कोठे के चतुष्टय मे लिख कर क्रमपूर्वक चारो तरफ़ से घूम घूम कर पढ़िए तो भी पाठ की पूर्ति हो जायगी।

एक श्लोक तो आपने ऐसा लिखा है जिसके चारों चरणों का पाठ एक ही सा है। देखिए—

विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा

विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणाः।

विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा

विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा॥

इसके शब्दों मे ही सादृश्य है, अर्थ मे नहीं। अर्थ तो प्रायः हर चरण का कुछ न कुछ भिन्नता रखता है। मालूम नहीं, इस तरह के चित्रकाव्य की रचना मे भारवि को कितना प्रयास पड़ा होगा। ऐसे श्लोको ने भावार्थ लिखने में हमारा तो नाकों दम कर दिया।

आलङ्कारिकों की आज्ञा के पाश मे फँसने के कारण ही भारवि को कथा का अस्वाभाविक विस्तार करना पड़ा और ऐसी ऐसी विशेषताय ं रखनी पड़ीं जिनसे काव्यानन्द की प्राप्ति मे कमी आ जाती है। कालिदास के काव्यों मे ये दोप नहीं। उनमे अप्रासङ्गिक विस्तार होने ही नहीं पाया। भारवि के ज़माने मे इन बातों की गणना शायद दोष में न होती हो। सब प्रकार के वर्णन करना और कठिन मे कठिन शब्द-चित्र लिख डालना, अब भी पुराने ढँग के कितने ही पण्डितों की दृष्टि मे दोष नहीं, प्रश ंसा ही की बात है।

अलङ्कारशास्त्र-सम्बन्धी काव्यप्रकाश आदि ग्रन्थों के दोष-प्रकरण मे जैसे और महाकवियों की कविता के दोष दिखाये गये हैं वैसे ही भारवि की कविता के भी दिखाये गये हैं। तथापि वे उतने नहीं खटकते जितने क्लिष्ट से क्लिष्ट शब्दचित्र और कथा के अनावश्यक विस्तार खटकते हैं।

किसी किसी समालोचक की राय है कि भारवि की कविता प्रसादगुणपूर्ण है। पर हम इससे सहमत नहीं। हम यह नहीं कहते कि किरातार्जुनीय में प्रसादगुण है ही नहीं। कहीं कहीं वह है अवश्य। पर भारवि की अधिकतर उक्तियों का आशय बिना थोड़ा सा विचार किये ध्यान में नहीं आता। इसीसे टीका-कार मल्लिनाथ ने भारवि के काव्य की उपमा नारिकेल फल, अर्थात् नारियल, से दी है। उन्होंने लिखा है—

नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः सपदि यद् विभज्यते।
स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम्॥

नारियल जब तक तोड़ा नही जाता तब तक उसका रस पीने को नहीं मिलता। इसी तरह भारवि की कविता का भाव जब तक खूब विचार-पूर्वक हृद्गत नहीं किया जाता तब तक उससे रसानन्द की प्राप्ति नहीं होती। यदि भारवि की कविता प्रसादगुण-पूर्ण, अतएव द्राक्षापाक सदृश, होती तो मल्लिनाथ उसे कभी नारियल के फल-सदृश न बताते। भारवि की कविता सरस अवश्य है, पर उसका रस बहुधा गूढ़ श्रौर कठोर पदों के भीतर छिपा हुआ है। इसीसे उसकी प्राप्ति मे देर लगती है। श्रौर, इसीसे समष्टि-रूप मे वह प्रसादगुण-पूर्ण नही कही जा सकती।

## किरातार्जुनीय के गुण।

कालिदास, भारवि, माघ श्रौर दण्डी के विषय मे पुराने पण्डितों की राय है—

> उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
> दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

अर्थात् उपमा मे कालिदास श्रेष्ठ हैं, अर्थ-गौरव मे भारवि श्रेष्ठ हैं श्रौर पदलालित्य में दण्डी श्रेष्ठ हैं। रहे माघ, सो उनके काव्य मे ये तीनों ही गुण हैं। अर्थात् उनकी कविता मे उपमायें भी बड़ी सुन्दर हैं, अर्थ-गौरव भी खूब है श्रौर पदलालित्य भी यथेष्ट है। पर हम इस पिछली बात को मानने में असमर्थ हैं। माघ के शिशुपाल-वध में कालिदास की ऐसी उपमायें श्रौर भारवि का ऐसा अर्थ-गौरव नहीं। तथापि इस अप्रासङ्गिक चर्चा की यहाँ आवश्यकता नहीं। यहाँ हमे केवल इतना ही कहना है कि पूर्वोक्त

उक्ति में भारवि के अर्थ-गौरव का जो उल्लेख है वह हमें यथार्थ मालूम होता है। किरातार्जुनीय को ध्यान से पढ़ने पर हमारी भी यही धारणा हुई है। इस काव्य की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि इसके थोड़े शब्दों से बहुत अर्थ निकलता है और वह अर्थ भी कभी कभी बड़े मारके का होता है। अनुवाद करते समय इस बात का अनुभव हमे जगह जगह पर हुआ है।

भारवि आदि के विषय मे एक श्लोक और भी प्रसिद्ध है। वह यह है—

तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः॥

अर्थात् जब तक माघ का उदय न हुआ था तभी तक भारवि की कविता की आभा चमकती थी। माघ का उदय होते ही वह जाती रही। और, नैषध-चरित के निकलने पर तो माघ की भी आभा अस्त हो गई। इस पर हमारा निवेदन यह है कि न कभी भारवि की कविता की चमक धूमिल हुई और न कभी उसके धूमिल होने की आशा ही है। जिसने इस श्लोक की रचना की है उसकी रुचि कुछ विलक्षण रही होगी। किसी चीज़ का पसन्द आना या न आना बहुत कुछ रुचि पर ही अवलम्बित है। अतएव, सम्भव है, पूर्वोक्त श्लोक के कर्त्ता को नैषध-चरित के सामने किरातार्जुनीय और शिशुपाल-वध दोनों तुच्छ जँचे हों। पर हम ऐसा नहीं समझते। किरातार्जुनीय में कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो शिशुपाल-वध में नहीं और शिशुपाल-वध में कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो किरातार्जुनीय में नहीं। इसी तरह नैषधचरित में भी कुछ

विशेषतायें हैं जो इन दोनो मे से किसी मे भी नही। इस दशा मे यह कहना कि एक के कारण दूसरा निष्प्रभ हो गया, न्यायसङ्गत नही जान पड़ता।

किरातार्जुनीय पढ़ने से एक बात जो सबसे पहले ध्यान मे आती है यह है कि भारवि बहुत बड़े नीति-वेत्ता थे। उनके काव्य में दार्शनिक विचार बहुत कम, पर नैतिक विचार बहुत अधिक हैं। वे नीति-शास्त्र के बहुत बड़े पण्डित थे। सम्भव है, वे किसी राजा के सभा-पण्डित, धर्म्माध्यक्ष, न्यायाधीश या और कोई उच्चपदस्थ कर्म्मचारी रहे हो।

नीति तो उनकी रग रग मे घुसी थी। जहाँ कही मौक़ा मिला है वहाँ वे नीति की बात कहे बिना नही रहे। शृङ्गार, वीर, शान्त आदि रसों की कविता तक मे उन्होंने बीच बीच नीति के वचन कह दिये हैं। उनकी कुछ उक्तियाँ तो पण्डितों की जिह्वा पर सदा ही नृत्य सा किया करती हैं—

( १ ) हितं मनोहारि च दुर्लभं वच:

( २ ) सुदुर्लभा. सर्वमनोरमा गिर:

( ३ ) वरं विरोधोऽपि समं महात्मभि·

( ४ ) सतां हि वाणी गुणमेव भाषते

( ५ ) सहसा विदधीत न क्रियाम्

( ६ ) न दूषित: शक्तिमतां स्वयङ्ग्रह:

( ७ ) भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिन:

( ८ ) न तितिक्षासममस्ति साधनम्

( ९ ) सुदुर्महान्त:करणा हि साधव:

( १० ) दुर्लंध्यचिह्ना महतां हि वृत्तिः

भारवि का काव्य इस तरह के नीति-प्रतिपादक वचनों से साद्यन्त भरा पड़ा है।

भारवि को साधारण नीति ही का नहीं, राजनीति और कूट-नीति का भी अच्छा ज्ञान था। इसके साथ ही वे अच्छे नैयायिक भी थे। वक्तृत्व-शक्ति भी उनमे खूब थी। जो अच्छा कवि या वक्ता है उसे अपने विषय की विवेचना के लिए बहुत सामग्री मिल जाती है।

राजनीतिज्ञ, नैयायिक और सुकवि होने ही के कारण भारवि ने अपनी वक्तृताओं मे अपूर्व योग्यता प्रकट की है। द्रौपदी और भीमसेन का भाषण पढ़ने से यही मालूम होता है कि इससे अधिक और कोई क्या कहेगा। जो कुछ कहा जा सकता था, इन्होंने कह दिया। यह सारा अपराध युधिष्ठिर ही का है। पर जब युधिष्ठिर अपने पक्ष का समर्थन करने लगते हैं, तब उन्हीं की बात ठीक मालूम होती है। उस समय यही जान पड़ता है कि द्रौपदी और भीमसेन का कहना युक्ति-सङ्गत नही, युधिष्ठिर ही का कहना न्यायानुकूल है। जब इन्द्र का प्रस्ताव पढ़ते हैं तब यही जी में आता है कि तपस्वियों को हिंसावृत्ति की वासना छोड़ ही देनी चाहिए। पर जब अर्जुन का उत्तर पढ़ते हैं तब वह सब भूल जाता है। तब तो यही मालूम होता है कि—नहीं, दुराचारियों को उनके दुराचार का बदला देना ही चाहिए। जब किरात अपने पक्ष का समर्थन करने लगता है तब जी यही कहता है कि अर्जुन से इसकी बातों का उत्तर न बने

पड़ेगा। पर अर्जुन का अखण्डनीय कथन सुनते ही उन्ही का पक्ष प्रबल मालूम होने लगता है। इससे सिद्ध है कि भारवि बड़े ही अच्छे वक्ता थे। जिस वस्तु के गुणो या दोषो का वे विवेचन करने लगते होगे उसमे कमाल कर देते होगे। उनकी वाणी में कुछ ऐसी शक्ति है कि वह पाठक को अपने वशीभूत कर लेती है। जो बात वे कहते हैं वही ठीक मालूम होने लगती है। ग्रीक भाषा के महाकाव्य इलियड के वीरो की वक्तृताओं से भारवि के अर्जुन, इन्द्र और किरात आदि की वक्तृताये किसी अंश मे कम नहीं, प्रत्युत उनसे बढ़ कर चाहे भले ही हो। अतएव, इसमें सन्देह नही कि भारवि बड़े अच्छे राजनीति-वेत्ता, बडे अच्छे नैयायिक, बड़े अच्छे कवि और बडे अच्छे वक्ता थे। वाद-प्रतिवाद करने की शक्ति तो उनमें बहुत ही बढ़ी चढ़ी थी।

वक्ता कैसा होना चाहिए और बात कैसी कहनी चाहिए, यह कोई भारवि से पूछे। इसका निरूपण पहले तो उन्होंने किराता-र्जुनीय के दूसरे सर्ग में युधिष्ठिर के मुख से, फिर चौदहवे सर्ग में अर्जुन के मुख से, कराया है—

स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्॥

अर्थात् बात ऐसी कहनी चाहिए कि वह स्पष्ट हो; उसका आशय झट समझ मे आजाय। उसमे अर्थ-गौरव भी हो और पदों या शब्दों मे अन्योन्य-सम्बन्ध भी हो। पुनरुक्ति न आने पावे।

अच्छी वक्तृता—सुन्दर बात कह सकने की शक्ति—को वे बहुत बड़ा गुण समझते थे। इसीसे उन्होंने कहा है—

प्रवर्त्तते नाकृत पुण्यकर्म्मणा प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती

अर्थात् सुन्दर और गम्भीर अर्थ वाली वाणी पुण्यवान् पुरुषों ही को प्राप्त होती है।

इसीसे हमारा अनुमान है कि भारवि अच्छे वक्ता थे।

भारवि की कविता का यह हाल है कि जिस विषय का वे वर्णन करने लगते हैं बराबर करते ही जाते हैं, रुकते ही नहीं। शरद् का वर्णन करने लगे तो सर्ग का सर्ग लिख डाला। पहाड़ का वर्णन करने लगे तो सर्ग का सर्ग भर दिया। आकाश-मार्ग से अप्सराओं की यात्रा का वर्णन करने लगे तो घण्टो करते ही चले गये। घोड़ो और हाथियों का वर्णन करने लगे तो ऐसा स्वाभाविक वर्णन किया जैसे उम्र भर घोड़ो और हाथियों ही के बीच रहे हों। शान्त-रस की कविता लिखने लगे तो उसी के पीछे पड़ गये। शृङ्गार रस पर क़लम उठाई तो कई सर्ग लिख डाले। यही हाल उनके और विषयों का भी समझिए। युद्ध-वर्णन के अन्तर्गत वीर और रौद्र-रस की कविता को तो उन्होंने बहुत ही बढ़ा दिया। उसे पढ़ने से किसी का जी भले ही ऊब उठे, पर यह अवश्य ही मानना पड़ेगा कि किसी भी विषय का यथेच्छ वर्णन करने की शक्ति भारवि में अद्‌भुत थी।

दूत का क्या धर्म्म है, राजमन्त्री का क्या धर्म्म है, राजा का क्या धर्म्म है, प्रजा का क्या धर्म्म है— यह तो वे जानते ही थे। विपक्षी राजा पर किस समय और कैसे आक्रमण करना चाहिए, साम-दान-दण्ड और भेद का किस प्रकार प्रयोग करना चाहिए, शत्रु की किन किन बातों पर सदा ध्यान रखना चाहिए, किसी

किले या नगर को घेर कर शत्रु और शत्रु की प्रजा के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए—यह सब भी वे अच्छी तरह जानते थे। अखाड़े मे पहलवान कैसे कैसे दाँव-पेच खेलते हैं, इस बात तक का उन्हे यथेष्ट ज्ञान था। वे व्यवहार-चतुर थे, शास्त्रज्ञ थे, प्राकृतिक नियमों के ज्ञाता थे। वे आस्तिक भी थे, धर्म्म पर उनकी पूरी पूरी श्रद्धा थी।

जिन व्यक्तियों का वर्णन किरातार्जुनीय मे है उनकी चरित्र-रक्षा भी भारवि ने ख़ूब की है। पति के कारण पत्नी को यदि क्लेश पहुँचाता है तो वह पति का उपालम्भ कड़े शब्दों में करती है। स्वभाव के अनुसार इस कड़ाई की मात्रा न्यूनाधिक होती है। इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को भारवि ने द्रौपदी के भाषण मे ख़ूब दिखाया है। युधिष्ठिर की अपेक्षा भीमसेन मे विवेकशीलता कम थी। वे उद्धत भी थे। उनके स्वभाव की यह विशेषता दूसरे सर्ग मे, उनके भाषण से, अच्छी तरह झलकती है। युधिष्ठिर धर्म्मभीरु, शान्त, न्यायशील, सत्यप्रिय और छल-कपट से दूर रहने वाले थे। भीम-सेन की बातो के उत्तर मे उन्होंने जो कुछ कहा है उससे उनके इन गुणों की अच्छी परख मिलती है। अर्जुन क्षात्र धर्म्म के अभिमानी, मनस्वी, तेजस्वी, धीर वीर और जितेन्द्रिय थे। उनके कार्य्य-कलाप और वचन इन गुणो का यथेष्ट साक्ष्य देते हैं।

किरातार्जुनीय मे भ्रातृ-प्रेम, पति-प्रेम, सेव्य-सेवक-धर्म्म के भी अच्छे नमूने देखने को मिलते हैं।

## किरातार्जुनीय के अनुवाद।

अपने देश की भाषाओं में किरातार्जुनीय के इतने अनुवाद आज तक हमारे देखने मे आये हैं—

( १ ) श्रीनारायण चितले एंड कम्पनी का मराठी-अनुवाद

( २ ) बाबू नवीनचन्द्रदास, एम० ए०, बी० एल० का बँगला-अनुवाद

( ३ ) श्रीगुरुनाथ विद्यानिधि भट्टाचार्य्य का बँगला-हिन्दी-अनुवाद

( ५ ) मेहता हरिलाल नरसिंहराम व्यास का गुजराती-अनुवाद

परलोक-वासी मिस्टर रमेशचन्द्र दत्त ने भी किरातार्जुनीय के कुछ सर्गों का अनुवाद किया था। उसका कुछ अंश आक्सफ़र्ड के अध्यापक मुग्धानलाचार्य्य ने अपने संस्कृत-भाषा के इतिहास में उद्धृत किया है। पर यह अनुवाद अलग पुस्तकाकार हमें देखने को नहीं मिला।

इसके सिवा मराठी की एक मासिक पुस्तक में भी किरातार्जुनीय के पहले के कई सर्गों का पद्यात्मक अनुवाद हमने देखा है। उस पुस्तक का नाम इस समय हमें विस्मृत हो गया। इस अनुवाद का मिलान जो हमने मूल से किया तो इसे बहुत ही विकृत पाया। अतएव, अपने पास रखना अनावश्यक समझ कर उसे हमने जहाँ का तहाँ पहुँचा दिया।

ऊपर जिन चार अनुवादों के नाम दिये गये हैं उनमें से पहला

अनुवाद केवल आठ सर्गों का है। कोई पचीस तीस वर्ष हुए, बम्बई की श्रीनारायण चितले एंड कम्पनी काव्यार्थप्रकाश नामक एक मासिक पुस्तक निकालती थी। यह पुस्तक चार पाँच वर्ष चल कर बन्द हो गई। इसमें संस्कृत काव्यों के, बडी योग्यता से किये गय, मराठी भाषान्तर प्रकाशित होते थे। किरातार्जुनीय का अनुवाद भी उसी मे निकला था। इस अनुवाद मे पहले तो सस्कृत-मूल, फिर उसका पदच्छेद, फिर अन्वय, फिर स्पष्टीकरण, फिर मराठी मे भावार्थ है। नीचे महत्वपूर्ण अनेक टिप्पणियाँ भी हैं। व्याकरण-विषयक बातें और अलङ्कार आदि के लक्षण भी दिये गये हैं। यह अनुवाद काव्य के किसी अच्छे ज्ञाता और मराठी के अच्छे लेखक का किया हुआ है। उसने अपने अनुवाद में कवि का असली आशय बड़ी ख़ूबी से समझाया है। खेद है, यह अनुवाद पूरी पुस्तक का नही। यह कालेजों मे पढ़ने वाले छात्रों के सुभीते के लिए किया गया है।

दूसरा अनुवाद बँगला-पद्य मे है और पहले के केवल दस सर्गों का है। इसमें संस्कृत के हर श्लोक का अनुवाद चार चरण वाले छोटे से एक ही बँगला-पद्य मे किया गया है। इस कारण मूल का भाव ख़ूब स्पष्टतापूर्वक व्यक्त नही हो सका। अनुवाद मे मूल का शब्दार्थ मात्र आ सका है, अधिक नहीं। और, उतने से सन्तोष नही होता। तथापि, हम इतना अवश्य कहेंगे कि अनुवादक ने इसमे बड़ा परिश्रम किया है। छोटे से छन्द मे मूल का शब्दार्थ भी गर्भित कर देना बड़ी योग्यता का प्रदर्शक है। ऐसा कर सकना सब का काम नहीं। क्योंकि भारवि के थोड़े ही शब्दों से बहुत अर्थ निकलता है।

तीसरा अनुवाद संस्कृत पढ़ने और गवर्नमेंट की निर्दिष्ट संस्कृत-परीक्षायें देने वाले छात्रों के लिए है। यह अनुवाद एक से पाँच और ग्यारह से चौदह सर्गों तक का है। मूल के नीचे पहले अन्वय, फिर वाच्य-परिवर्तन, फिर मल्लिनाथ की टीका, फिर बँगला-अनुवाद है। पुस्तकान्त मे हिन्दी-अनुवाद अलग दिया गया है। छात्रों के सुभीते के लिए किये जाने के कारण इस अनुवाद मे भी मूल का शब्दार्थ मात्र दिया गया है। कहीं कहीं तो उसकी रचना अन्वय के ही क्रम से की गई है। अनुवाद शुद्ध है, पर मूल का आशय अधिक शब्दो द्वारा व्यक्त न किये जाने के कारण, इससे भी साधारण पाठकों को यथेष्ट सन्तोष नहीं हो सकता। इस अनुवाद का हिन्दी-अंश बँगला-अनुवाद का अनुसरण करता है। उसे संस्कृत-मूल का नहीं, किन्तु बँगला-अनुवाद का अनुवाद कहना चाहिए। उसका महत्व बँगला-अनुवाद की अपेक्षा बहुत ही कम है, क्योंकि उसकी हिन्दी बेहद दोष-पूर्ण है। उदाहरण लीजिए—

गोगण शेषरात्रि के विचरण स्थान से प्रत्यावर्त्तन करने जा वेग से भू-पथ में दौड़ नहीं सकती थीं × × × × × सर्ग ४, श्लोक १०

यह गामी सकल जगत् की कारण, एवं एक मात्र पावक हैं × × × × सर्ग ४, श्लोक ३२

इसकी हिन्दी का यह हाल है! अतएव, इससे हिन्दी के प्रेमियों की तृप्ति नहीं हो सकती।

चौथा, अर्थात् गुजराती भाषा मे किया गया, अनुवाद पूरी पुस्तक का है। इसे अहमदाबाद की गुजरात-वर्नाक्युलर सोसायटी

ने प्रकाशित किया है। इसमे ऊपर सस्कृत-मूल और नीचे भावार्थ है। जो लोग बहुत थोड़ी संस्कृत जानते हैं, अतएव बिना किसी संस्कृतज्ञ की सहायता के किरातार्जुनीय का अर्थ नहीं समझ सकते, उनके लिए इसकी रचना हुई है। इसी से मूल श्लोकों के पदो मे अन्वय के क्रम से संख्यावाचक अङ्क भी लिख दिये गये हैं। अङ्कों के अनुसार सब पदो को पास पास रख देने से पद्य का गद्य हो जाता है। उसे विचारपूर्वक देख कर शिक्षार्थी, गुजराती-अनुवाद की सहायता से, संस्कृत-पदो और उनके अर्थों से परिचय प्राप्त कर सकता है। अनुवादक ने यह अनुवाद सरल गुजराती भाषा मे किया है। कवि का आशय भी उन्होंने कही कही अपनी तरफ़ से समझाया है। मल्लिनाथ ने अपनी टीका मे बाहर की जो बातें लिखी हैं उनका मतलब भी उन्होंने अनेक स्थलों में लिख दिया है। अलङ्कारो का भी विवेचन उन्होने किया है और वृत्तों के नाम तथा लक्षण भी लिखे हैं। अतएव, इस अनुवाद के अच्छे होने में सन्देह नही।

## किरातार्जुनीय का प्रकृत अनुवाद।

किरातार्जुनीय का यह अनुवाद हिन्दी मे लिखने मे हमने, आवश्यकता पड़ने पर, पूर्वनिर्दिष्ट चारों अनुवादों को देखा है। अतएव, हम उनकी रचना करने वालों के बहुत कृतज्ञ हैं। तथापि हमने नकल किसी की भी नहीं की। हमने जो कुछ लिखा है मल्लिनाथ की टीका को अच्छी तरह समझ कर उसी के आधार पर लिखा है। मुक़ाबला करते समय हमें पूर्वोक्त अनुवादो मे कितने

ही स्थल ऐसे भी मिले हैं जो मल्लिनाथ के किये हुए अर्थ से नहीं मिलते। प्रसङ्ग तथा और बातों के लिहाज़ से हमे तो कई जगह मल्लिनाथ का किया हुआ अर्थ भी अच्छा नहीं लगा। ऐसे मौक़ों पर हमने अपनी ही तुच्छ बुद्धि के अनुसार भारवि की उक्तियों का भावार्थ लिखा है।

हमारा यह अनुवाद न तो परीक्षार्थी छात्रो के लिए है और न सस्कृत सीखने की इच्छा रखने वाले और लोगों ही के लिए। संस्कृत के पारदर्शी पण्डितो के लिए तो यह होही नहीं सकता। इस बेचारी गँवारू "भाषा" में किये गये अनुवाद से उनका क्या सम्पर्क! यह तो केवल उन लोगों के लिए है जो हिन्दी-पुस्तकें पढ़ने के प्रेमी हैं और जिनके लिए किरातार्जुनीय की कथा से परिचय प्राप्त करने का और कोई साधन ही नहीं। ऐसे महाशय जब उपन्यास तक पढ़ने की कृपा करते हैं तब वे और कुछ नहीं तो इसे, कथा-कहानी की पुस्तक ही समझकर एक बार पढ़ जाने की उदारता दिखा सकते हैं। सम्भव है, यह भी दो घड़ी उनका मनोरञ्जन कर सके।

भारवि अर्थ-गौरव को वाणी का बहुत बड़ा गुण समझते थे। इसीसे उन्होंने वाणी की प्रशंसा में—"न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्" लिखा है। जिसका यह दूसरा चरण है वह श्लोक, पूरा, ऊपर एक जगह दिया जा चुका है। इसीसे उन्होंने किरातार्जुनीय में यह गुण लाने का बहुत प्रयत्न किया है। इसमें वे यथेष्ट सफल-मनोरथ भी हुए हैं। उनके छोटे छोटे अनुष्टुप् छन्दों में भी विपुल अर्थ भरा हुआ है। किरातार्जुनीय की इस विशेषता के कारण हमें बहुत तङ्ग होना पड़ा

है। पहले तो भारवि का आशय समझने ही में बहुधा बहुत सिर-खपी करनी पड़ी है। उसे हिन्दी मे स्पष्टतापूर्वक लिखने मे तो जो श्रम पड़ा है उसे हमीं जानते हैं। अर्थ-विवेचना मे हमने भारवि के शब्दों का तद्वत् भावार्थ लिखने की आवश्यकता नही समझी। उनके आशय को हमने अपनी भाषा—अपने शब्दो—मे लिखा है। ऐसा करने मे हमे प्राय. अर्थ-विस्तार भी करना पड़ा है। पर इसकी परवा न करके, मूल का मतलब अच्छी तरह समझाने के लिए, हमने अधिक वाक्यो के व्यय मे कमी नहीं की। प्रसङ्ग का मेल मिलाने के लिए कही कही तो हमने अपनी तरफ़ से भी कुछ लिख दिया है। मूल पुस्तक के आठवे, और विशेष करके नवे, सर्ग मे कुछ शृङ्गारिक वर्णन बहुत ही खुले शब्दों मे है। वहाँ हमने कुछ कमी भी कर दी है। मूल के आशय को या तो हमने घुमा फिरा कर और ही तरह लिख दिया है या उसका कुछ अंश छोड ही दिया है। पर ऐसे स्थल दो चार से अधिक नही। इस परिवर्त्तन के कारण, अब इस अनुवाद को पढ़ते समय किसी को सङ्कोच होने का डर नहीं।

किरातार्जुनीय के जिस पन्द्रहवें सर्ग में भारवि ने शब्द-चित्र लिखे हैं उसके अनुवाद मे हमे सबसे अधिक कठिनता का सामना करना पड़ा है। इस सर्ग की रचना मे भारवि ने कहीं कहीं बड़ी विकट क्लिष्ट कल्पनाये की हैं। अतएव, यदि हम उनके शब्दो का ही अर्थ लिखते तो शायद उस अर्थ की सूचक हिन्दी कोई समझ ही न सकता। इस कारण हमने मूल के केवल मोटे आशय को लेकर उसे अपने शब्दों में बढ़ा कर प्रकट किया है। इसे हम अपनी

अयोग्यता ही समझते हैं। पर करें क्या, उसे दूर करने का और कोई उपाय ही हमें न सूझा। प्रार्थना है, यह तथा हमारी अन्य त्रुटियाँ, यदि क्षमा की जाने योग्य हों तो, क्षमा की जायँ।

दौलतपुर ( रायबरेली )<br>
५ अगस्त १९१६

महावीरप्रसाद द्विवेदी

# विषय-सूची ।

| सर्ग | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|

# किरातार्जुनीय।

## पहला सर्ग।

युधिष्ठिर ने दुर्योधन के साथ जुआ खेला। दुर्योधन का मामा शकुनि बड़ा दुष्ट और धूर्त था। उसने दुर्योधन का पक्ष लिया। शकुनि की कपट-पूर्ण चालों के कारण पाण्डव बराबर हारते ही गये। युधिष्ठिर ने अपनी सारी सम्पत्ति गवाँ दी। राज्य भी वे हार बैठे। अन्त को यह दाँव लगाया गया कि जो हारे वह बारह वर्ष तक वनवास और एक वर्ष तक अज्ञात वास करे। युधिष्ठिर थे सच्चे और दुर्योधन था छली। उधर धूर्तराज शकुनि की सहायता से दुर्योधन की छल-कपट वाली प्रवृत्ति और भी उत्तेजित हो उठी थी। फल यह हुआ कि इस पिछले दाँव में भी युधिष्ठिर ही की हार हुई। उन्हें अपना राज-पाट छोड़ना पड़ा। वे और उनके भाई—भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव—तथा पत्नी द्रौपदी बारह वर्ष तक वन वन मारे मारे फिरे। एक वर्ष तक उन्हें अज्ञात वास भी करना पड़ा।

जिस समय युधिष्ठिर आदि पाण्डव, सरस्वती नदी के तीर-

वर्ती द्वैत-वन में थे, उस समय उनके मन में यह बात आई कि किसी युक्ति से दुर्योधन का वृत्तान्त जानना चाहिए। उसकी धन-सम्पत्ति का क्या हाल है? अपनी प्रजा के साथ उसका बर्त्ताव कैसा है? प्रजा उसे कहाँ तक चाहती है? इन्हीं सब बातों को युधिष्ठिर ने जानना चाहा। इस निमित्त उन्होंने एक चतुर वनवासी को हस्तिनापुर भेजा।

वनवासी ने मन मे सोचा कि अपने प्रकृत-वेश मे जाने से यथेष्ट सफलता होने की विशेष सम्भावना नहीं। अतएव ब्रह्मचारी बन कर जाना चाहिए। ब्रह्मचारी के वेश मे मैं वहाँ सब कहीं पहुँच सकूँगा और सब बाते अच्छी तरह जान सकूँगा। मन में यह निश्चय करके उसने अपना वेश वैसा ही बनाया और हस्तिनापुर पहुँच कर दुर्योधन का सारा हाल जान लिया। इस प्रकार अपनी अभीष्ट-सिद्धि करके वह द्वैत-वन मे युधिष्ठिर के पास लौट गया और बड़े भक्ति-भाव से युधिष्ठिर को प्रणाम किया।

वैरी दुर्योधन के द्वारा हरण की गई युधिष्ठिर की राज्य-लक्ष्मी के विषय में उस वनवासी को अनेक बातें कहनी थीं। ऐसी बातें युधिष्ठिर के लिए निस्सन्देह ही अप्रिय थीं। उन्हें सुन कर युधिष्ठिर को अवश्य ही मानसिक क्लेश होगा, यह बात वह वनवासी जानता था। अतएव, यदि वह चाहता तो उनके सामने कोई अप्रिय और क्लेशकारक बात न कहता। अन्य अनेक लोगों की तरह वह भी मीठी मीठी ठकुरसुहाती बातें कहता। परन्तु वह सच्चा स्वामि-भक्त था। अतएव उसने ऐसा करना उचित न समझा। उसने कहा, जो बात मैंने जैसी देखी है वैसी ही कहूँगा।" सच्च

कहने मे सङ्कोच कैसा ? व्यथित होने की कौन बात ? और, उसका यह विचार सच भी था। जो सेवक स्वामी के सच्चे हितचिन्तक होते हैं वे उसे प्रसन्न रखने के लिए कभी उसके सामने मीठी मीठी झूठ बाते नही कहते। कहना तो दूर रहा, कहने की इच्छा तक वे अपने मन मे नही आने देते।

धर्मराज युधिष्ठिर एकान्त मे उस वनवासी से मिले। उसे देखते ही अपने शत्रु दुर्योधन के नाश की इच्छा उनके हृदय मे प्रबल हो उठी। उन्होंने कहा, जो कुछ तुम देख आये हो, ठीक ठीक कह दो। युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर वनवासी ने हस्तिनापुर मे देखी गईं बाते कहना आरम्भ किया। वह वनवासी बड़ा अच्छा वक्ता था। जो कुछ उसने कहा, निश्चय-पूर्वक कहा। उसने अपने भाषण मे एक भी अनिश्चित और सन्देह-जनक बात न आने दी। भाषण मे उसने शब्दों की योजना भी बड़ी सुन्दर की। गम्भीरता को भी उसने हाथ से न जाने दिया। उसने सब बातें साफ़ साफ़ कह सुनाईं। वह बोला—

महाराज, नीति में जो यह लिखा है कि राजा लोग अपने जासूसों ही की आँखों से देखते हैं वह बहुत ठीक है। सब विषयो, सब बातो और सब लोगों का रहस्य अपनी ही आँखों देखना उनके लिए सम्भव नही। इस कारण उन्हे जासूसों पर विश्वास करना ही पड़ता है। परन्तु जासूसों का भी यह धर्म है कि जिस काम के लिए उनकी नियुक्ति की जाय उसे वे अच्छी तरह करें। जो बात जैसी देखे वैसी ही राजा से कह सुनावे। अपने स्वामी की वञ्चना करना उनके लिए महा अधर्म है। इस

कारण, महाराज, जो कुछ भला या बुरा मैं आपके सामने निवेदन करूँ उसे आप शान्ति-पूर्वक सुन लीजिएगा और मेरी कठोर बातों के लिए मुझे क्षमा कीजिएगा। ऐसे वचन संसार में आप दुर्लभ समझिए जो सुनने मे मनोहर भी हो और, साथ ही, हितकारक भी हों। आप, शायद, यह कहें कि कठोर वचन कहने की अपेक्षा तो चुप रहना ही अच्छा है। परन्तु मेरी क्षुद्र बुद्धि मे यह बात ठीक नहीं। मेरा तो यह मत है कि जो आश्रित जन अपने आश्रयदाता राजा को हितोपदेश नहीं करता वह मित्र नहीं। वह तो उसका पूरा शत्रु है। इसी प्रकार जो राजा अपने हितोपदेष्टाओं की बात नही सुनता वह भी अच्छा राजा नहीं। जिस राज्य मे राजा और राज-मन्त्री, ये दोनों ही, परस्पर अनुकूल होते हैं—जहाँ ये दोनों एक मत होकर सब बातों का विचार करते हैं—आपस में विरोध-भाव नहीं पैदा होने देते—वहीं सारी सम्पदायें वास करती हैं। अतएव मेरा मत है कि मन्त्री को निर्भय होकर हित की बात कहना और राजा को उसे सुनना चाहिए।

महाराज, मैं महा मूर्ख वनवासी हूँ। कहाँ राजाओं के गूढ़ चरित और कहाँ मेरे समान अबोध मूढ़! राजाओं के कार्य्य-कलाप के गूढ़ तत्त्व और उनकी राजनीति के गूढ़ रहस्य तीव्र बुद्धि वाले पण्डित भी अच्छी तरह नहीं जान सकते। मैं बेचारा किस गिनती में हूँ! इसे आप अत्युक्ति न समझिए। यह मैं सच कह रहा हूँ। तथापि जिस काम के लिए आपने मेरी योजना की थी उसे मैं कर आया हूँ। आपके शत्रुओं की राजनीति से सम्बन्ध रखने वाले गुप्त तत्त्व मैंने जान लिये हैं। परन्तु यह मेरे बुद्धि-वैभव

का प्रभाव नहीं। यह तो एक मात्र आपके चरणों की कृपा का फल है। आपके पैरों के प्रताप से ही मैं यह काम करने मे समर्थ हुआ हूँ। अब आप मतलब की बातें सुनिए—

महाराज, इस समय आपका शत्रु दुर्योधन तो हस्तिनापुर के राजासन पर अधिष्ठित है और आप दुर्दैव-वश इस अखण्ड वन मे वास कर रहे हैं। आप वनवासी हैं और वह सिंहासनासीन। तथापि, सब साधनो से रहित होने पर भी, आपसे वह भयभीत हो रहा है। उसे दिन रात डर लगा रहता है कि कहीं ऐसा न हो कि जो आगे मुझे युधिष्ठिर से हार खानी पड़े। यही सोचकर वह छल-कपट के द्वारा जुये मे जीती गई पृथ्वी को अब नीति से जीतने और उसे अपने वश मे रखने की चेष्टा कर रहा है। वह मन मे कहता है कि कपट करके मैंने युधिष्ठिर से पृथिवी छीन ली तो क्या हुआ। अब मैं उसका इतनी अच्छी तरह भोग करूँगा और अपनी प्रजा का इतनी अच्छी तरह पालन करूँगा जिससे वह कभी आपके पास जाने की इच्छा ही न करे।

दुर्योधन बडा वञ्चक है; वह बड़ा धूर्त भी है। आपने पृथिवी को अपने अनेक गुणों से वश मे किया था, केवल नीति-पूर्वक सब काम करके ही नहीं। इस बात को दुर्योधन समझता है। वह जानता है कि एक मात्र सुनीति का अवलम्बन करने से ही काम न चलेगा। प्रजा को अनुरक्त करने के लिए और भी कुछ गुणों की आवश्यकता है। इसीसे वह दया-दाक्षिण्य आदि गुणों का विस्तार करके अपनी उज्वल कीर्त्ति सर्वत्र फैला रहा है। वह अपने उत्तमोत्तम गुणों से भी आपको जीतने की इच्छा रखता है। उसका

ऐसा व्यवहार ठीक भी है। दुर्जनों से मित्रता सम्पादन करने की अपेक्षा सज्जनों से विरोध करना भी अच्छा ही होता है। सज्जनों के साथ विरोध करने से और कुछ नहीं तो उनकी देखा-देखी उनके गुणों की प्राप्ति के लिए चेष्टा करने का तो अवसर मिलता है।

ऋषियों ने जिस पद्धति का उपदेश किया है उसके अनुसार प्रजापालन करना बड़ा कठिन काम है। परन्तु दुर्योधन इस महा कठिन पद्धति के अनुसार ही अपनी प्रजा का पालन करने की इच्छा रखता है। वह चाहता है कि स्वायम्भुव मनु के समय से प्रजापालन की जो सदाचार-विशिष्ट प्रणाली चली आई है उससे मैं अंगुल भर भी इधर उधर न भटकूँ। इसी लिए उसने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—इन छहों शत्रुओं को जीत लिया है। इनमें से एक भी उसके पास नहीं फटकने पाता। काम-क्रोधादि से रहित होकर उसने आलस्य को भी छोड़ दिया है। सब कामों के लिए उसने समय नियत कर दिया है। दिन में किस समय कौन और रात में किस समय कौन काम करना चाहिए, यह उसने निर्दिष्ट कर रक्खा है। सब काम वह समय पर ही करता है। नीति-पूर्वक अपना पौरुष प्रकट करने में वह कोई बात उठा नहीं रखता।

दुर्योधन ने अहङ्कार का भी सर्वथा त्याग कर दिया है। सबके साथ वह अब निष्कपट व्यवहार करता है। उसके जितने सेवक हैं सब पर उसकी अकृत्रिम प्रीति है। यहाँ तक कि वह अपने नौकरों को मित्रवत् मानता है और मित्रों को अपने भाई के सदृश समझता है। रहे उसके बन्धु-जन, सो उन्हें तो वह अपने ही

सदृश मानता है। बन्धुओं के साथ दुर्योधन जैसा व्यवहार करता है उससे यही सूचित होता है कि ये इसके बन्धु नहीं; ये सभी राजा हैं। उसका यह व्यवहार आठ पहर चौंसठ घड़ी बराबर एक सा रहता है। इस प्रकार के व्यवहार से वह लोगों को यह दिखाना चाहता है कि मुझ मे अहङ्कार का लेश भी नहीं; मेरे बराबर उदार-हृदय आज तक कोई राजा हुआ ही नहीं।

दुर्योधन ने धर्म, अर्थ और काम का ठीक ठीक विभाग कर दिया है। इन तीनो मे से किसी पर भी उसकी विशेष आसक्ति नहीं। इनमे से किसी के विषय मे उसे रत्ती भर भी पक्षपात नहीं। धर्म, अर्थ और काम से सम्बन्ध रखनेवाली कौन बात योग्य और कौन अयोग्य है, इसका वह पहले ही ठीक ठीक विचार कर लेता है, तब उसका अनुष्ठान करता है। इन तीनो मे से चाहे जिसकी बात हो, यदि वह उचित है तो उसे वह निःसङ्कोच कर डालता है। उसकी इस उदारता और विवेक-बुद्धि पर ये तीनों गुण लुब्ध हो रहे हैं। इस कारण यद्यपि ये तीनो परस्पर-विरोधी हैं तथापि दुर्योधन के सम्बन्ध मे उन्होंने अपना पारस्परिक विरोध-भाव बिलकुल ही छोड़ दिया है। ये तीनो ही परस्पर स्नेह-पूर्वक दुर्योधन के हृदय मे वास करते हैं। न तो धर्म काम को किसी तरह पीड़ा पहुँचाता है और न काम धर्म को। यही हाल औरो का भी है। यह बहुत बड़ी बात है। तीन विरोधियों को परस्पर अनुरक्त कर देना सबका काम नहीं।

दुर्योधन की सभी बातें अद्भुत हैं। वह अपने से अधिक-बलवान् शत्रुओं को अपने वशीभूत करने के लिए अजीब चालें

चलता है। साम आदि उपायों की योजना करने मे वह बड़ा चतुर है। परन्तु इस तरह के सूखे उपाय करके ही वह चुप नही बैठता। जिसके लिए वह इन उपायों की योजना करता है उसे धन भी ख़ूब देता है। देता भी किस तरह है? किसी का अपमान करके या किसी के साथ सख़्ती का व्यवहार करके नहीं। उसे ख़ुश करके—उसका ख़ूब सन्मान करके—वह उसे धन और मान देता है। ऐसा करने मे भी वह एक बात का विचार रखता है। वह धन और मान देता तो है, पर अपात्र को नहीं। जो उसका पात्र है—जो सद्गुणी है—उसी को वह धन और मान देता है. सभी को नहीं। देखिए, यह कितनी बडो बात है।

यह उसके साम का हाल हुआ। अब उसके दंड की भी बात सुनिए। दंड देने में वह किसी पर अणु-रेणु भर भी दया नहीं दिखाता। न तो वह द्रव्य-प्राप्ति की इच्छा से किसी को दंड देता है और न क्रोध के वशीभूत होकर ही देता है। ऐसे कारणों को वह सदा दूर ही रखता है। जिसे वह दंड देता है, अपना धर्म समझ कर देता है। मनु आदि महर्षियों ने जिन अपराधों के लिए जैसे दंड का विधान किया है उनके लिए वह, दया-मया छोड़ कर, वही दंड देता है। दंडनीय मनुष्य चाहे उसका शत्रु हो, चाहे उसका पुत्र, इसकी वह ज़रा भी परवा नहीं करता। नीति-शास्त्र के आचार्य्यों ने जिन दंडों का विधान कर दिया है उनका प्रयोग वह केवल इस निमित्त करता है जिससे उसके राज्य में अधर्म का कहीं लेश भी न रह जाय।

अब ज़रा दुर्योधन के भेद-भाव की भी बातें सुन लीजिए।

उसने कितने ही विश्वसनीय भेदिये नियत कर रक्खे हैं। उन्हे वह सर्वत्र भेज कर सब की गुप्त बातें जानने की चेष्टा किया करता है। उनके साथ वह ऐसा व्यवहार करता है जिससे उन लोगो को दुर्योधन के विषय मे शङ्का या सन्देह करने का कभी अवसर ही नही मिलता। परन्तु दुर्योधन स्वयं उन पर विश्वास नहीं रखता। वह उनसे सदा ही शङ्कित रहता है। उसके भेदिये तो उससे निश्शङ्क रहते हैं, पर वह उनसे सशङ्क। देखिए, कैसी विकट भेद-नीति है? आरम्भ किया गया कोई भी काम जब सिद्ध हो जाता है तब दुर्योंधन उसके कर्त्ता कर्म्मचारियो को राशि राशि धन पारितोषिक मे दे डालता है। धन की वही राशियॉ--वही सम्पदायें —इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण देती हैं कि दुर्योधन कितना कृतज्ञ है।

जिस वस्तु की योजना जहॉ होनी चाहिए वही करने वाले पुरुष संसार मे दुर्लभ हैं। मैं समझता हूँ कि दुर्योधन ऐसे ही दुर्लभ पुरुषो मे से है। साम, दान, दण्ड, भेद—ये चारों उपाय कहाँ किस मौक़े पर प्रयुक्त होने चाहिए, यह दुर्योंधन अच्छी तरह जानता है। जहॉ जिसकी आवश्यकता होती है वहीं वह उसकी योजना करता है। इस कारण ये उपाय अपने को धन्य समझते हैं। वे मन ही मन कहते हैं कि हमारा ठीक प्रयोग करने वाला एक मात्र दुर्योधन है। इस उचित योजना को ही वे अपना सबसे बड़ा सत्कार समझते हैं। इसी से वे साम आदि उपाय परस्पर स्पर्द्धा सी करते हुए दुर्योधन को अपने सुप्रयोग का अधिकाधिक फल देते हैं और सब प्रकार की सम्पदाओं की निरन्तर वृद्धि किया करते हैं।

दुर्योधन के सभा-मण्डप का आँगन हज़ारो राजाओं के रथों, घोड़ों और हाथियो आदि से सदा ही परिपूर्ण रहता है। उसके अधीन जितने माण्डलिक राजे हैं सभी, तरह तरह की भेटे लेकर, उसके यहाँ, समय समय पर, उपस्थित हुआ करते हैं। उनकी उपस्थिति से तो उसका सभा-मण्डप भरा रहता है और उनके वाहनादि से उस सभा-मडप का आँगन। भेट मे सैकड़ो अनमोल वस्तुओ के सिवा मदोन्मत्त हाथियों के झुण्ड के झुण्ड भी रहते हैं। उनके मदस्रावी गंडस्थलों से सप्तपर्ण नामक वृक्षो के फूलों की सी सुगन्धि आया करती है। इस सुगन्धिपूर्ण मद के प्रवाह से उसके सभामण्डप का विस्तीर्ण आँगन कीचमय हो जाता है।

दुर्योधन अपनी प्रजा का पुत्रवत् पालन करता है। चिरकाल से उसकी प्रजा सभी तरह के सुख भोग रही है। किसी को किसी वस्तु की कमी नही। सारे कुरु-देश मे दुर्योधन ने नदियो से काट काट कर नहरें निकाल दी हैं। अतएव वहाँ के किसानों को खेती के लिए वर्षा ही पर अवलम्ब नही करना पड़ता। फल यह हुआ है कि सारा का सारा कुरु-देश शस्य-सम्पन्न हो रहा है। उसकी शोभा—उसकी शस्य-सम्पन्नता—देख कर ऐसा मालूम होता है जैसे बिना जोते बोये ही वहाँ की भूमि कृषकों को मनमाना धान्य देती है। उसके राज्य मे न धन की कमी है, न धान्य की।

दुर्योधन की किस किस बात की मैं प्रशंसा करूँ? वह बड़ा ही दयालु है। इस कारण उसकी कीर्त्ति दूर दूर तक फैल गई है। वह अपनी प्रजा का पालन और अपने देश का शासन इतनी अच्छी तरह करता है कि उसके राज्य में सभी सुखी हैं। उसकी

प्रजा का दिन पर दिन अभ्युदय होता जा रहा है। दुर्योधन के धन-वैभव की सीमा नही। वह कुवेर के सदृश धनशाली है। उसके दया-दाक्षिण्य आदि गुणों ने पृथ्वी को द्रवीभूत सा कर दिया है। फल यह हुआ है कि कुरु-देश की पृथ्वी द्रवित होकर स्वयं ही दुर्योधन को अनन्त-धनरूपी दूध दे रही है।

प्रजा-जन और बन्धु-बान्धव ही दुर्योधन पर अनुरक्त नही। उसकी सेना भी उससे बहुत प्रसन्न है। हज़ारो धनुर्धारी वीर अपने प्राण तक देकर दुर्योधन का मनोवाञ्छित कार्य करने के लिए सदा तैयार रहते हैं। जान से अधिक प्यारी वस्तु संसारमे और कोई नहीं। पर वे लोग उसे भी देकर दुर्योधन की इच्छापूर्त्ति करने मे कुछ भी आगा पीछा नहीं सोचते। मैं साधारण धनुर्धारी वीरों की बात नहीं कहता, महा-तेजस्वी, महा आत्माभिमानी और युद्ध में महती वीरता दिखाने वाले वीरों की बात कहता हूँ। इन क्षत्रिय वीरों ने स्वार्थनिष्ठा को तिलाञ्जलि दे दी है। इन्होंने स्वामिकार्य-सम्पादन से पराङ्मुख न होने की शपथ सी खाली है। स्वामि-कार्य उपस्थित होने पर अपने पारस्परिक हित अथवा वैर-भाव की रत्ती भर भी परवा न करके ये लोग अपने स्वामी दुर्योधन की कार्य-सिद्धि के लिए सदा प्रस्तुत रहते हैं। दुर्योधन भी उनका अत्यन्त आदर-सत्कार करता है। उन्हे किसी बात की कमी नहीं होने देता। धन और मान से वह उन्हे सदा ही सत्कृत और प्रसन्न रखता है।

दुर्योधन अपने करने के सारे काम न मालूम कब कर डालता है; किसी को इसकी ख़बर तक नही होती। अपने काम का तो

पता भी वह किसी को नहीं लगने देता; पर और लोगों ने—और राजाओं ने—किसी काम का आरम्भ कब किया, यह वह तत्काल जान लेता है। उसने प्रबन्ध ही कुछ ऐसा कर रक्खा है कि अपना हाल किसी को न मालूम हो; पर दूसरे का हाल उसे मालूम हो जाय। उसके कामकाज तो ब्रह्मदेव के जैसे हैं। ब्रह्मा क्या करना चाहता है, यह तब मालूम होता है जब वह काम हो जाता है। दुर्योधन का भी कोई काम जब सिद्ध हो जाता है और उसका फल प्रत्यक्ष दिखाई देने लगता है तभी लोगो को मालूम होता है कि इस काम का आरम्भ भी कभी हुआ था। इसके पहले किसी को उसके आरम्भ किये जाने तक का पता नहीं चलता।

दुर्योधन को प्रत्यञ्चा चढ़ा कर धनुष उठाने की कभी ज़रूरत ही नहीं पड़ती। कभी किसी के साथ युद्ध करने का प्रसङ्ग आवे तब न धनुष उठाना पड़े? यही नहीं, उसे क्रोध से अपना मुँह भी कभी लाल नहीं करना पड़ता—उसे कभी भौंहें नहीं टेढ़ी करनी पड़तीं। कारण यह कि उसकी इच्छा के विरुद्ध कभी कोई काम ही नहीं होता। इसीसे उसे कभी क्रोध प्रकट करने का अवसर ही नहीं आता। उसके शासन को—उसकी आज्ञा को—उसके अधीन राजा प्रसन्नतापूर्वक उसी तरह शिरसा-वन्द्य समझते हैं जिस तरह लोग सुगन्धित फूलों की माला शिरसा धारण करते हैं। यह दुर्योधन के उदार और स्तुत्य गुणों का प्रभाव है। उसके गुणों पर ही लुब्ध होकर सारा राजन्य-वर्ग उसका भावुक भक्त हो रहा है। दुर्योधन की आज्ञा का कहीं भी कोई विरोध नहीं करता। सारे देश में उसकी धाक जमी हुई है। उसका शासन सर्वत्र अप्रतिहत है। अतएव

उसके करने योग्य अब कोई काम ही शेष नहीं। इसी से उसने अपने पूर्ण युवा भाई दु:शासन को युवराज बना दिया है। वही सारा राज-कार्य चलाता है। अब दुर्योधन राज्य का कोई काम नहीं करता। वह तो अपने पुरोहित की सलाह से यज्ञद्वारा अग्नि-देवता को निरन्तर तृप्त किया करता है। अब उसे यही काम रह गया है। परन्तु एक बात है। यद्यपि दुर्योधन का कोई शत्रु नहीं और यद्यपि वह सार्वभौम राजा बन कर चिरकाल से पयोधि-पर्यन्त भू-मण्डल का शासन कर रहा है, तथापि उसे आपका डर लगा हुआ है। उसे सदा यह शङ्का रहती है कि भविष्यत् में कहीं आप से हार न खानी पड़े। उसका यह डर अकारण भी नहीं। महात्माओं का कथन है कि बलवान् वैरी से विरोध करने का फल मृत्यु के सिवा और कुछ नहीं। यह सर्वथा सच है। बली जनों से शत्रुता करनेवालों का अन्त कभी अच्छा नहीं होता।

महाराज, दुर्योधन के भय का कुछ हाल न पूछिए। आपका नाम सुनते ही वह भय से अभिभूत हो जाता है। वार्तालाप में भी यदि कभी कोई आपका नाम ले लेता है तो नाम सुनते ही दुर्योधन को आपके परम-पराक्रमी भाई अर्जुन की वीरता और बल का तत्काल ही स्मरण हो आता है। उस समय वह घबरा कर अपना सिर नीचा कर लेता है। साँप पकड़ने वाले मान्त्रिक लोगों के मुँह से गारुड़ीय मन्त्रों का उच्चारण होते ही, गरुड़ के पादप्रहार का स्मरण करके, साँप जिस तरह गलितगर्व होकर व्यथित होता है उसी तरह आपका नाम सुन कर और अर्जुन की विकट वीरता का स्मरण करके दुर्योधन को भी दु:सह व्यथा होती है। इतने ही से आप

दुर्योधन की आन्तरिक अवस्था का अनुमान अच्छी तरह कर सकेंगे ।

दुर्योधन अपनी प्रजा का पालन अवश्य अच्छी तरह कर रहा है । उसके अन्य सारे व्यवहार भी नीतिशास्त्र के अनुकूल हैं । परन्तु उसमें एक बहुत बड़ा दोष अब तक वर्तमान है। उसका यह दोष स्वाभाविक है । वह यह कि आप के साथ कुटिलता और कपट करना उसने अब तक नहीं छोड़ा । उसकी सारी सुनीति और उसके सारे समाचार की जड़ मे छल-कपट घुसा हुआ है । वह चाहता है कि अपनी प्रजा और सेना आदि को सन्तुष्ट रख कर आपको वनवास के अनन्तर हस्तिनापुर में पैर न रखने दूँ । ऐसे कपटी के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए, यह आपको बताने की आवश्यकता नहीं । आप स्वयं ही उसके प्रतीकार के लिए उचित उपाय करेंगे । यदि आप कहें कि तू सब बातें वहाँ की देख आया है; तू ही बता, हमें क्या करना चाहिए? तो मैं ऐसे उपाय बताने में समर्थ नहीं । मैं तो निपट गँवार वनवासी हूँ । मेरा काम तो अपनी देखी और जानी हुई बातें कह देना भर है । सो मैं कर चुका । उपाय बताने की बुद्धि मुझ मे कहाँ ?

इस प्रकार दुर्योधन-सम्बन्धिनी बातें कह कर वह वनवासी चुप हो गया । युधिष्ठिर ने उसका अच्छा सत्कार किया। उन्होंने उसे बहुत कुछ इनाम देकर बिदा कर दिया । उसके चले जाने पर युधिष्ठिर द्रौपदी के कमरे में आये । वहाँ उनके भाई भीमसेन भी बैठे थे । उन दोनों को युधिष्ठिर ने वनवासी की कही हुई सारी बातें ज्यों की त्यों सुना दीं । सुन कर भीमसेन तो कुछ न बोले, पर

द्रौपदी से न रहा गया। अपने शत्रु दुर्योधन की धन-सम्पदा आदि की बातें सुन कर उसका जी जल उठा। दुर्योधन और दुःशासन आदि के द्वारा उसकी जो दुर्दशा हुई थी वह सब उसे याद आ गई। इस कारण उस समय उसे जो आन्तरिक क्षोभ और रोष हुआ उसे वह रोक न सकी। उसने मन ही मन कहा—कठोर उपालम्भ द्वारा राजा युधिष्ठिर को उत्तेजित करने के लिए यह मौका बहुत अच्छा है। उसने सोचा कि ऐसे उपालम्भ को सुन कर युधिष्ठिर को अवश्य ही क्रोध आजायगा और वे दुर्योधन आदि शत्रुओं से उनके द्वारा किये गये अपकारो का बदला लेने के लिए अवश्य ही तैयार होजायँगे। वह बोली—

महाराज, आप राजा हैं। आप नीतिज्ञ हैं। आप विद्वान् हैं। आप समझदार हैं। मैं एक तो अज्ञ, दूसरे स्त्री हूँ। यदि मैं आपके सामने कोई हित की भी बात कहूँ तो मेरा ऐसा कहना भी अनुचित ही समझा जायगा। सम्भव है, उससे आप अपनी निन्दा या तिरस्कार समझें। अतएव ऐसे विषय मे मुझे कुछ भी न बोलना चाहिए था। परन्तु क्या करूँ, बिना बोले मुझ से रहा ही नही जाता। शत्रुओ ने वस्त्रहरण और केशाकर्षण आदि के रूप मे मेरी जो विडम्बना की है उसकी याद आते ही मुझे दुःसह दुःख होता है। वही दुःख मुझे इस समय बोलने के लिए प्रेरणा कर रहा है। अतएव मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे इस उपालम्भ के लिए क्षमा करे।

महाराज, आप के वंश मे जो राजा हो गये हैं वे ऐसे वैसे न थे। वे इन्द्र के सदृश तेजस्वी और इन्द्र ही के सदृश पराक्रमी

थे। आपही के वंशज ये परम-प्रतापी राजा चिरकाल से इस पृथ्वी का पालन करते आये हैं। परन्तु उसी वंश मे आप ऐसे निकले कि इस चिरकाल से धारण की हुई पृथ्वी को अपने ही हाथ से इस तरह निकाल फेका जिस तरह कि मतवाला हाथी फूलो की माला तोड़ कर अपने मस्तक से फेक देता है। आप तो सभी के साथ साधुता का व्यवहार करने को तुले बैठे रहते हैं। सभी के साथ इस तरह का व्यवहार करना उचित नही। जो लोग हमारे साथ छल-कपट करे—जो लोग हम को माया-जाल मे फँसाने की युक्तियाँ निकालते रहे—उनके साथ साधुता का व्यवहार करना अविवेक के सिवा और कुछ नही। मायावियों के साथ मायावी होना ही चाहिए। जो ऐसों के साथ भी सचाई का बर्त्ताव करते हैं उनका पराभव हुए बिना नही रहता। बिना कवच के शरीर को छेद कर तीखे बाण जैसे मनुष्य के प्राण ले लेते हैं वैसे ही भोले भाले साधु-स्वभाव वाले मनुष्यो के हृदय में घुस कर शठ मनुष्य उनका नाश किये बिना नहीं रहते।

मैं आपकी बुद्धि की कहाँ तक प्रशंसा करूँ। आप अपने को क्षत्रिय-कुल मे उत्पन्न समझते हैं या नही? आपको अपने क्षत्रियत्व का कुछ भी अभिमान है या नहीं? आपको बन्धु-बान्धव और सेना-समूह आदि किसी भी साधन की कभी कमी नहीं रही। पृथिवी भी आप पर सब तरह अनुरक्त थी। प्रजा भी आपको जी से चाहती थी। फिर भी आपने इस अनुरागिणी वसुमती का परित्याग कर दिया। कुलीन, सुशील और मनोहारिणी पत्नी के सदृश अपनी राज्य-लक्ष्मी का हरण अपने शत्रुओं के द्वारा करा कर ही आपने

कल की । आपके सिवा संसार मे ऐसा कौन मनुष्य होगा जो परम्परा से प्राप्त हुई विवाहिता भार्या के सदृश अपनी राज्य-लक्ष्मी को इस तरह निकाल बाहर करे ? क्या आपको यही चाहिए था ? यह तो बड़ा ही निन्द्य काम आपने कर डाला । ऐसे गर्हित मार्ग मे पैर रखना आपके सदृश सत्कुलोत्पन्न क्षत्रिय राजा को शोभा नहीं देता ! हाय हाय ! इस विगर्हणा का कही ठिकाना है ! भला कही मनस्वी महीप ऐसे पथ मे भूल कर भी पैर रखते हैं ! ऐसा निन्द्य काम आपने कर डाला; फिर भी आप चुपचाप बैठे हुए हैं ! सूखे हुए शमी के पेड़ को दवाग्नि जला कर जिस तरह ख़ाक कर देता है उसी तरह अपने शत्रुओ के विषय मे उत्पन्न हुआ क्रोधाग्नि आपको क्यो नही जला कर खाक कर देता ? दुष्टो के अत्याचारों और दुष्कृत्यों का स्मरण करके भी यदि आपको क्रोध न आवेगा तो फिर आवेगा कब ?

याद रखिए, जो मनुष्य क्रुद्ध होकर दण्ड और प्रसन्न होकर अनुग्रह करने मे समर्थ होता है उसकी अनुकूलता सब लोग, आप ही आप, बिना किसी प्रेरणा के, करने लगते हैं। बुरे आदमी दण्ड पाने के डर से और भले आदमी अनुग्रह की आशा से सदा ही उसके मन के अनुकूल काम करने के लिए तैयार रहते हैं । परन्तु जिसे कभी क्रोध आता ही नहीं उसके स्नेह और सत्कार की कोई परवा नही करता । यदि ऐसे क्रोधहीन मनुष्य ने किसी का द्वेष किया अथवा किसी पर अप्रसन्नता प्रकट की तो उससे कोई डरता भी नहीं ।

ज़रा अपने छोटे भाई महारथी भीम की तरफ़ तो आँख उठा कर

देखिए। यह वही भीमसेन है जिसके शरीर पर लाल चन्दन का लेप किया जाता था और जो बहुमूल्य रथ पर ही सवार होकर बाहर निकलता था। परन्तु, देखिए, इस समय इस की कैसी दुर्दशा हो रही है। यही अब काँटे बिछे हुए पहाड़ी पथो पर पैदल घूमता फिरता है और झाड़ियो के नीचे जमीन पर धूल मे पडे लोटा करता है। आप अच्छे सत्यधन निकले! आपके सत्यव्रत की मैं कहाँ तक प्रशसा करूँ! क्या अपने इस प्यारे भाई की यह दुर्दशा देख कर भी आपका अन्त करण दुःख से द्रवीभूत नही हो जाता? अभी और कब तक आप सत्य की रक्षा करते रहेगे? बताइए तो?

देखिए, महापराक्रमी धनञ्जय की भी दुर्गति हो रही है। वह भी आप ही के कारण। यह वही धनञ्जय है जो सारे उत्तर-कुरु-देश को जीत कर हीरे, पन्ने, लाल आदि अकृत्रिम रत्नों की राशियाँ वहाँ से ले आया था। लेकर उसने उन रत्नों को आप ही नहीं रख लिया; उन्हें उसने आप ही को दे डाला। परन्तु इसका बदला आप ने बहुत ही अच्छा दिया! उस इन्द्रतुल्य पराक्रमी अर्जुन से आप अपने पहनने के लिए पेड़ों की छाल मँगाया करते हैं! अच्छा काम उसे आपने सौंपा! कहाँ उसका वह पराक्रम, कहाँ वल्कल लाने का यह काम! महाराज, अर्जुन की यह दैन्यावस्था देख कर भी क्या आपको दुःख नहीं होता?

नकुल और सहदेव की दुर्दशा की भी सीमा नहीं। जङ्गल की इस कँकरीली भूमि पर लेटने के कारण, देखिए, उनके शरीर की कितनी दुर्गति हुई है! उनके शरीर कठोर हो गये हैं। उन पर सर्वत्र घट्टे पड़ गये हैं! धोये न जाने और तेल-फुलेल न लगने के कारण

उनके बाल बेतरह रूखे हो रहे हैं। उनकी जटायें बन गई हैं। ये जटायें उन दोनो के मुँह पर बिखरी हुई रहती हैं। वे अब आदमी थोड़े ही मालूम होते हैं। वे तो मनुष्य होकर भी जङ्गली हाथी से जान पड़ते हैं! परन्तु इन लोगों की ऐसी दुर्दशा देख कर भी आपको दया नही आती! इतने पर भी आप अपनी सन्तोषवृत्ति का पीछा नही छोड़ते! प्रतिज्ञा-पालन पर आप अब तक पूर्ववत् ही दृढ़ हैं! अरे अब तो उसे छोड़ देते।

आपका जी न मालूम किस तरह का है। मुझे तो उसका कुछ हाल ही नही मालूम होता। आप तो निरन्तर दु.ख उठाने ही को सुख समझ रहे हैं। यह बड़े ही आश्चर्य्य की बात है। ठीक है, ससार मे अनेक प्रकार के मनुष्य हैं। उनकी चित्त-वृत्तियाँ भी अलग अलग हैं। सम्भव है, आपकी बुद्धि दुःख को ही सुख समझती हो। परन्तु मैं तो इस प्रकार की चित्त-वृत्ति को महा अनर्थकारिणी समझती हूँ। आप तो दुःख को ही सुख समझ कर उसी में मग्न हो रहे हैं। परन्तु आपकी आपदाओं का स्मरण होते ही मुझे असह्य मनोवेदना होती है। आपकी जिन विपत्तियों का स्मरण मात्र करने से मुझे मर्म्मकृन्तक व्यथा होती है उन्ही का आप प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं। तिस पर भी आप को कुछ भी दु:ख, कष्ट या सन्ताप नही होता! इससे अधिक आश्चर्य्य की बात और क्या हो सकती है?

महाराज, आप ज़रा अपने पहले सुख-चैन का तो कभी कभी स्मरण कर लिया कीजिए। याद है? पहले आप बहुमूल्य शय्या पर शयन करते थे। प्रातःकाल होने पर चारण और बन्दीजन बडे ही

मधुर गीतों द्वारा आपकी स्तुति कर कर के आपको जगाते थे। तब कहीं आप उस मङ्गल-गान को सुन कर जागृत होते थे और शय्या परित्याग करते थे। परन्तु, अब, इस समय, आप जङ्गल की ऊँची नीची भूमि पर, मोटे मोटे कुशों का कुशासन बिछा कर, उसी पर रात काटते हैं। और, जागते किस तरह हैं? सियारों, लोमड़ियों और भेडियों की महा कर्कश और महा अमङ्गल चिल्लाहट सुनकर! बड़ेही परिताप की बात है, ऐसी दुर्दशा का भी आपके हृदय पर कुछ भी असर नहीं पड़ता! जिस समय आप हस्तिनापुर में थे उस समय आपके लिए बड़े ही सुस्वादु षट्रस भोजन तैयार किये जाते थे। उस समय आप अपने लिए तैयार किये गये सुस्वादु पदार्थ ब्राह्मणों और अतिथियों को खिला कर पीछे से उन्हे आप खाते थे। इसीसे आपका यह शरीर पहले अत्यन्त पुष्ट और सुन्दर दिखाई देता था। परन्तु वे सब बातें अब स्वप्न हो गई हैं। अब तो आप यहाँ इस घोर अरण्य में अकेले ही पड़े हुए अपने दिन बिता रहे हैं और स्वादिष्ट तथा पुष्टिकारक भोजनों के बदले जङ्गली फलों, फूलों और मूलों से अपने सुन्दर शरीर को कृश कर रहे हैं। शरीर ही को कृश क्यों, आपने तो यहाँ तक गज़ब ढाहा है कि शरीर के साथ आप अपने यश को भी कृश कर रहे हैं!

जिस समय आप राजसी ठाठ से रहते थे उस समय आपके ये दोनों चरण रत्नों से जड़े हुए सोने के महामूल्य सिंहासन की शोभा बढ़ाते थे। बड़े बड़े माण्डलिक राजे आपके सामने उपस्थित होकर अपने मस्तक इन्हीं चरणों पर रखते थे। ऐसा करते समय उनके मस्तकों पर धारण की गई फूल मालाओं के सुगन्धित फूलों

के रजःकण आपके चरणों पर गिर गिर कर उनको रङ्गीन बना देते थे। हाय! आज आपके उन्हीं चरणों की दुर्दशा हो रही है। उन्हीं से आज आप इस घास उगी हुई पहाड़ी भूमि पर सर्वत्र आया जाया करते हैं। घास ही उगी हुई भूमि पर क्यों, कँटीले कुश उगी हुई भूमि पर भी। कहीं कहीं तो हिरनो के द्वारा चरे और तपस्वी ब्राह्मणो के द्वारा तोडे गये कुशो के डण्ठल सूई की नोक के सदृश खड़े रहते हैं। तीक्ष्ण नोक वाले ऐसे कुशो से परिपूर्ण पृथ्वी पर भी आपको कभी कभी अपने कोमल चरण रखने पडते हैं। शिव शिव, इस अध पात और इस शरीर-क्लेश का कहीं ठिकाना है! यदि आपकी यह दशा दैवगति से प्राप्त होती तो मैं इस दु ख को भी सुख ही समझती। यदि मनस्वी और आत्माभिमानी पुरुषो की पराक्रम-रूपिणी सम्पत्ति शत्रुओ के कारण नहीं, किन्तु दुर्दैव-वश हाथ से जाती रही—यदि भाग्य से ही विपत्ति प्राप्त हुई—तो दुखी होने की कौन बात? इस तरह दैवयोग से प्राप्त हुए दुःख को तो दुःख ही न समझना चाहिए; क्योंकि उससे तो एक प्रकार का आनन्द ही प्राप्त होता है। परन्तु आपने तो अपनी यह दुर्दशा अपने शत्रुओं से कराई है, आपकी इस विपत्ति का कारण आप के शत्रु हैं। शत्रुओं ही ने आप की धन-सम्पत्ति आदि छीन कर आपको इस विपन्न अवस्था को पहुँचाया है। इसीसे इन बातों का स्मरण होते ही मेरे कलेजे के टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं।

महाराज, अब तो आप अपनी शान्ति को—अपनी क्षमा को—छोड दीजिए। इस सारे अनर्थ का कारण एक मात्र आपकी यह

क्षमा है। उसका अब तत्काल ही परित्याग करके शत्रुओं के नाश के लिए तैयार हो जाइए। अपने क्षत्रिय-तेज का फिर से स्वीकार कीजिए। प्रसन्न हो जाइए। बहुत भोग भोग चुके। अब बस। आप शायद यह कहे कि क्षमा से ही यदि काम बनता हो तो क्रोध करने की क्या आवश्यकता? परन्तु, सरकार, काम-क्रोध आदि षड् रिपुओं को जीत कर क्षमा से किसे सिद्धि प्राप्त होती है, यह भी आप जानते हैं? इस तरह की सिद्धि ऋषियों और मुनियों ही को प्राप्त होती है, क्षत्रियों को नहो। सो भी कौन सी सिद्धि? मोक्ष सिद्धि; राज्य-सिद्धि नहीं। समझे। आपको मैं कहाँ तक समझाऊँ।

आप तो तेजस्वी पुरुष हैं। मैं तो आपको तेजस्वियों में सब से श्रेष्ठ समझती हूँ। कीर्ति भी आप की कम नहीं। आप तो कीर्ति को ही अपना सर्वोत्तम धन समझते आये हैं। बल-पौरुष भी आप मे कम नहीं। इन सब बातों के होते हुए भी यदि आप शत्रुओं के द्वारा किये गये अति दुःसह पराभव को प्राप्त होकर भी क्षमा ही करते चले जायँगे—यदि आप सन्तोष ही का स्वीकार करते चले जायँगे—तो मैं यही समझूँगी कि आत्माभिमानी पुरुषों का अभिमान, आश्रयहीन हो जाने के कारण, आज ही रसातल को चला गया! इस तरह का अभिमान तेजस्वी पुरुषों ही के हृदय मे आश्रय पाता है। वही यदि उसका बहिष्कार कर देंगे तो फिर वह बेचारा रहेगा कहाँ? उसका नाश अवश्य ही हो जायगा।

यदि शत्रुओं के नाश का प्रतीकार करना आपको फिर भी अभीष्ट न हो तो मेरी अन्तिम प्रार्थना सुन लीजिए। यदि आपका यही विश्वास हो कि कुछ भी पराक्रम न करके चुप चाप बैठे रहना

ही अच्छा है—क्षमा से ही सारे सुख-साधन प्राप्त हो जायँगे—तो एक बात कीजिए। आप अपने इस धनुर्बाण की तरफ़ आँख उठाइए। जानते हैं, यह किसके धारण करने योग्य है? यह क्षमाशीलो के हाथ मे रहने के लिए नही। राज्यलक्ष्मी के स्वामी राजा ही के हाथ मे धारण करने के लिए है। इसे आप अभी फेंक दीजिए। आज से आप सच्चे क्षमाशील तपस्वी बन कर और जटाजूट बढ़ा कर इस जङ्गल मे निरन्तर अग्निहोत्र किया कीजिए। इस धनुष की अब क्या आवश्यकता? छोड़िए इसे। तपस्वियों को इससे क्या काम?

हाँ, मुझे एक बात और कहनी है। मेरे इस निर्भर्त्सना-पूर्ण उपालम्भ को सुन कर शायद मुझे आप अविवेकिनी समझें। शायद आप यह कहे कि बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञात वास करने की प्रतिज्ञा तो अभी पूरी ही नहीं हुई। उसके पूर्ण हुए बिना पराक्रम करने और शत्रुओं से उनके दुष्कृत्यों का बदला लेने का तो अभी अवसर ही नहीं आया। फिर मैं इतना अकाण्ड-ताण्डव क्यों कर रही हूँ? तो इस पर भी आप मेरी प्रार्थना सुन लीजिए। मेरा वक्तव्य यह है कि प्रतिज्ञा-पालन किया किसके साथ जाता है? जो स्वयं प्रतिज्ञा-पालन करता हो—जो स्वयं सच्चा हो—उसके साथ न? शत्रु तो प्रतिज्ञा-पालन नहीं कर रहे। वे तो बराबर छल-कपट करते ही जा रहे हैं। इस दशा में आपके सदृश पराक्रमी पुरुष को प्रतिज्ञा-पालन की आन पर डटे रहना सर्वथा अनुचित है। जो क्षत्रिय अपने शत्रुओं पर विजय पाने की इच्छा रखते हैं वे उनके साथ की गई सन्धि मे जान बूझ कर कुछ

न कुछ दोष निकाल लेते हैं। इस प्रकार वे पूर्वकृत सन्धि को तोड़ डालते हैं। आप भी क्यों नहीं ऐसा ही करते? शत्रु तो कपट करें और आप सन्धि के नियमों का पालन! यह कहाँ की नीति है!

प्रारब्ध और समय की बात टाली नहीं टलती। वह सर्वथा अनुल्लङ्घनीय है। देखिए, प्रारब्ध और समय के नियमानुसार ही भगवान् भास्कर रात के समय अगाध सागर मे डूब जाते हैं; उनका सारा तेज नष्ट हो जाता है, उनकी सारी रश्मि राशि विलय को प्राप्त हो जाती है। परन्तु, प्रात.काल होने पर, तिमिर-समूह का उच्छेद करके जब वे उदित होते हैं तब दिनश्री आकर फिर भी उनका आलिङ्गन करती है। इस समय आपकी भी दशा रात के सूर्य्य ही के सदृश है, क्योंकि आप भी घोर-विपत्ति-सागर मे डूबे हुए हैं। अतएव आप भी निस्तेज और निर्धन हो रहे हैं। भगवान् करे, रिपुरूप अन्धकार का नाश करके सूर्य्य ही के सदृश आप भी धन-वैभव से सम्पन्न होकर अभ्युदय को प्राप्त हों और आपकी खोई हुई राज्य-लक्ष्मी फिर भी आपके आश्रय मे आ जाय!

# दूसरा सर्ग ।

द्रौपदी की बातें सुन कर भीमसेन बहुत प्रसन्न हुए । उनको उसकी बातें बहुत ही गौरवपूर्ण और हितकारिणी मालूम हुई । अतएव द्रौपदी के भाषण का अनुमोदन करना उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझा । उन्होने युक्ति-पूर्ण और प्रौढ वचनो मे अपना कथन आरम्भ किया । वे धर्म्मराज युधिष्ठिर से बोले—

महाराज ! प्रियतमा द्रौपदी ने बहुत अच्छा कहा । उसे सचमुच ही क्षत्रिय-कुल का बडा अभिमान है । अतएव उसे ऐसा कहना ही चाहिए था । जो कुछ उसने कहा, बिना विचार किये ही नहीं कहा । ख़ूब सोच विचार कर और ख़ूब समझ-बूझ कर स्नेह-दृष्टि से कहा । जैसी युक्तियुक्त, जैसी सुन्दर और जैसी हितोपदेश-पूर्ण बातें उसने कहीं वैसी वाचस्पति बृहस्पति से भी न कहते बनती । अतएव उसके इस भाषण से सभी को आश्चर्य होगा, इसमे सन्देह नही । मैं तो यही कहूँगा कि उसका कथन सर्वथा ग्राह्य है ।

पानी से परिपूर्ण गहरे कुण्ड मे प्रवेश करना सहज-नही, कठिन काम है । परन्तु यदि उसके किनारे सीढ़ियाँ बना दी गई

हो तो स्नान करने वालों के लिए बड़ा सुभीता हो जाता है। वे लोग उन सीढ़ियों से उतर कर आराम के साथ पानी तक पहुँच सकते हैं। नीति-शास्त्र का भी यही हाल है। उसका मर्म्म जानना दुर्घट है। हाँ, अभ्यास से उसमे भी गति प्राप्त हो सकती है। सीढ़ियों की सहायता से स्नानार्थी जैसे गहरे कुण्ड मे प्रवेश कर सकता है वैसे ही अभ्यास के योग से मनुष्य भी नीति-शास्त्र के गहन रहस्यों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अभ्यास से नीति-शास्त्र का ज्ञान तो अवश्य हो सकता है; परन्तु एक साधन की फिर भी अपेक्षा रह जाती है। स्नान के लिए जल के कुण्ड मे प्रवेश करने वालों को यह नहीं मालूम रहता कि कहाँ जल कम है, कहाँ अधिक; कहाँ कङ्कड़-पत्थर हैं, कहाँ चट्टान; कहाँ मगर हैं, कहाँ घड़ियाल। यदि उस कुण्ड का सारा हाल जानने वाला कोई वहाँ पर उपस्थित हो और वह सब भेद बता दे तो मनुष्य आराम के साथ, निडर होकर, उसमे स्नान कर सकता है। पर इस तरह का आदमी मिलना दुर्लभ ही समझिए। न्याय शास्त्र का भी यही हाल है। अभ्यास से यद्यपि उसके भीतर प्रवेश हो जाता है, तथापि इस बात का ज्ञान ठीक ठीक नहीं होता कि शत्रु से किस तरह का व्यवहार करना चाहिए, कब उस पर आक्रमण करना चाहिए और कब उसके साथ सन्धि करनी चाहिए। इन बातों का बताने वाला यदि मिल जाय तो यह कठिनाई हल हो जाय। परन्तु ऐसा मनुष्य संसार में दुर्लभ ही समझिए। खुशी की बात है, हम लोगों के सौभाग्य से हमे ऐसा मनुष्य मिल गया है। यह मनुष्य प्रियतमा द्रौपदी ही है। द्रौपदी यद्यपि स्त्री है तथापि उसके

बोलने वाले की बातों की योग्यता ही को देखते हैं। वक्ता की बात यदि मानने योग्य है तो वे तुरन्त उसे मान लेते हैं और उसके अनुसार काम करने के लिए तैयार हो जाते हैं। इस दशा मे आप इस बात का ज़रा भी विचार न कीजिए कि द्रौपदी स्त्री है; उसके कथन पर कैसे विश्वास किया जाय? आप सिर्फ़ यही देखिए कि उसका उपदेश हितकारक है या नहीं।

महाराज! आप तो आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्ड-नीति, इन चारों विद्याओ में पारङ्गत हैं। अतएव, आप यह अवश्य ही जान सकते हैं कि कौन बात सत् और कौन बात असत् है। आप जैसे विद्वानों की बुद्धि सदसद्विचारशालिनी होनी ही चाहिए। फिर भी, मैं नहीं जानता, क्यो वह कीचड़ मे फँसी हुई हथिनी के सदृश अविवेक में डूब कर नष्ट सी हो रही है?

आप शायद यह कहेंगे कि मैं ऐसी बाते कह क्यो रहा हूँ? शत्रुओं ने हमारी हानि ही कौन सी की है? इस पर मेरी प्रार्थना है कि उन्होने हमारी बहुत बड़ी हानि की है। आप वही हैं जिनके पुरुषार्थ और पराक्रम की प्रशंसा इन्द्रादि बड़े बड़े देवता तक करते थे। देखिए, आपके उसी लोकातिशायी बल-पौरुष को आपके शत्रुओं ने नष्ट सा कर डाला है और आपको इस निन्द्य दशा को पहुँचा दिया है। आप तो सत्यव्रत हैं। आप ही बताइए, इससे भी अधिक हानि हमारी और क्या हो सकती है?

महाराज! जिसकी यह इच्छा होती है कि मेरा अभ्युदय हो वह यदि बुद्धिमान् है तो और ही तरह की नीति का अव-लम्बन करेगा। यदि उसे यह मालूम हो जायगा कि शत्रु का

उत्कर्ष, फिर चाहे वह कितना ही अधिक क्यों न हो, अन्त मे अनर्थकारक ही होगा तो वह उसका कुछ भी प्रतीकार न करके चुपचाप बैठा रहेगा। वह सोचेगा, इस उत्कर्ष के बाद जब शत्रु का आप ही आप अपकर्ष होने वाला है तो व्यर्थ परिश्रम करके उसे जीतने की क्या आवश्यकता ? परन्तु यदि बुद्धिमान् मनुष्य को यह मालूम हो जायगा कि इस समय शत्रु की सम्पत्ति का नाश तो बड़े वेग से हो रहा है, परन्तु, कुछ दिनों बाद, उसके उत्कर्ष की सम्भावना है तो वह पल भर भी चुप न बैठेगा। वह तत्काल ही पराक्रमपूर्वक अपने शत्रु पर आक्रमण करके उसे अपदस्थ कर देगा। अतएव, महाराज ! शत्रु के वर्तमान उत्कर्ष अथवा अपकर्ष को आप न देखिए। इस समय उसके प्रतीकार अथवा उपेक्षा की आवश्यकता है या नहीं, इसका जरा भी विचार न कीजिए। आप शत्रु की भावी स्थिति पर विचार करके जो कुछ उचित हो कीजिए।

शत्रु के उत्कर्ष और अपकर्ष के सम्बन्ध मे एक बात और भी विचारणीय है। वह यह कि यदि शत्रु की सम्पत्ति का नाश शीघ्र और बहुत अधिक हो रहा हो और अपनी सम्पत्ति का धीरे धीरे और बहुत कम, तो व्यवहार-कुशल मनुष्य ऐसी दशा मे शत्रु की उपेक्षा करता है। परन्तु, यदि बात इसकी उलटी हुई—अर्थात् यदि शत्रु की सम्पत्ति का नाश बहुत दिनो मे होता देख पड़े और सो भी बहुत थोडा, परन्तु अपनी सम्पत्ति का नाश शीघ्र और अधिक होता जान पड़े, तो बुद्धिमान् मनुष्य उसके प्रतीकार के लिए एक क्षण भर भी विलम्ब नहीं करता। मेरी समझ मे तो

हम लोगों की दशा, इस समय, पिछले प्रकार की है। अतएव हमें अपने शत्रुओं के नाश के लिए बिना विलम्ब यत्न करना चाहिए। इसमें एक कारण और भी है। जो राजा अपने शत्रु के वर्द्धमान बल-पौरुष और प्रभुत्व आदि की उपेक्षा करके आलसी बना बैठा रहता है—उसका कुछ भी प्रतीकार नहीं करता—उसे त्याज्य समझ कर सम्पत्ति उसे अवश्य ही छोड़ जाती है। ऐसा राजा लोकापवाद से भी नहीं बचता। जन-समुदाय भी ऐसे उदासीन राजा की अवश्य ही निन्दा करता है। इस लोकापवाद से डर कर ही मानो सम्पत्ति उसके पास से चली जाती है। अतएव पराक्रमपूर्वक शत्रु के नाश की चेष्टा करना ही नीतिनिपुण और विवेकशील राजा का कर्त्तव्य है।

आप शायद यह सोचते होंगे कि हम लोग बलहीन हैं और हमारा शत्रु बहुत बलवान् है। इस दशा में हम उसका सामना कैसे कर सकेंगे? परन्तु, भाई! आपकी यह शङ्का निर्मूल है। बात यह है कि उत्साह से ही सारे काम होते हैं। जिसमें उत्साह नहीं उसे कार्यसिद्धि की आशा ही छोड़ देनी चाहिए। द्वितीया के चन्द्रमा को देखिए। वह क्षय को प्राप्त होकर, फिर भी, जब सारे संसार को सुख देने वाली अपनी स्वाभाविक कला को धारण करता हुआ उदित होता है और उत्तरोत्तर बढ़ने की इच्छा रखता है तब, सभी लोग उसे नमस्कार करते हैं। इसी तरह क्षीण-शक्ति राजा भी जब अपना स्वाभाविक क्षत्रिय-तेज धारण करके अपनी समृद्धि-प्राप्ति के लिए उत्साह दिखाता है तब प्रजा उसके सामने अपना मस्तक झुकाये बिना नहीं रहती। सम्भव है, आप इस पर

भी कुछ आक्षेप करे। आप शायद कह बैठें कि हम लोगों में प्रभुता-सम्बन्धिनी शक्ति का तो सर्वथा अभाव है, फिर उत्साहित होकर कोई काम करने से क्या लाभ ? इस दशा मे विजय की आशा रखना अविवेक के सिवा और कुछ नहीं। इस पर भी मुझे कुछ निवेदन करना है। यह सच है कि सब बातों का विचार करके ही जब नीति की योजना की जाती है तभी वह फलवती होती है। यदि पहले इस बात का विचार कर लिया जाता है कि कार्य का आरम्भ किस तरह करना चाहिए, अपने पास धन और सैन्य कितना है, शत्रु के साथ युद्ध करने के लिए कौन सी जगह और कौन सा समय उपयुक्त है, विघ्न-बाधायें आने पर वे दूर की जा सकती हैं या नहीं, और अन्त मे फल-सिद्धि की आशा भी है या नहीं—तभी नीति की योजना राजा के कोश, यश और सैन्य की बढ़ाने वाली होती है। इसे मैं मानता हूँ। परन्तु जैसे कृषि और वाणिज्य आदि करने वालों के लिए प्रारब्ध की अपेक्षा रहती है वैसे ही राजा के लिए भी आलस्य-त्याग और उत्साह-धारण की अपेक्षा रहती है। बिना उत्साह के नीति-शास्त्र के पन्ने उलटने और उन पर विचार करते रहने से ही सिद्धि नहीं प्राप्त हो जाती। आप इस बात को स्मरण रखिए कि उत्साह ही सारे सुखों का मूल है। अतएव आपको उत्साह का अवश्य ही आश्रय लेना चाहिए।

आप यह कह सकते हैं कि उत्साह दिखाने से ही अनर्थ नहीं टाला जा सकता। यथेष्ट साधन न होने से उत्साह क्या करेगा ? इसके उत्तर मे मेरा निवेदन है कि क्षत्रियों के लिए राजत्व का

पद सबसे अधिक प्यारा है। ऐसे श्रेष्ठ पद की प्राप्ति के लिए अवश्य ही प्रयत्न करना चाहिए। उसकी प्राप्ति के लिए धैर्य्यवान् और अभिमानी पुरुषों को चाहिए कि वे अनर्थ टालने के लिए अपने ही पराक्रम पर भरोसा रक्खें, साधनों की परवा न करें। शूर-वीर क्षत्रिय कोश और सैन्य आदि की सहायता की अपेक्षा नहीं करते। राज्य प्राप्ति के लिए उन्हें जो कुछ करना होता है, एक मात्र अपने बल-पौरुष के भरोसे करते हैं। मेरी सम्मति में तो पराक्रम ही सबसे बड़ा साधन है। पराक्रमी पुरुषों को ही सारी सम्पदायें प्राप्त होती हैं। जो पराक्रमहीन है—जिसे अपने बल का भरोसा नहीं—उसे बार बार विपत्तियों के दलदल में फँसना पड़ता है। विपत्ति आ जाने पर आगे भी उसका भला नहीं होता। उत्तरोत्तर उसे अनिष्टों ही का सामना करना पड़ता है। बार बार अनिष्ट होने से सब लोग उसका निरादर करने लगते हैं और जिसका संसार में आदर नहीं उसकी ओर राज्य-लक्ष्मी भूल कर भी अपनी आँख नहीं उठाती। वह उससे सदा दूर ही रहती है। इसी से मैं कहता हूँ कि पराक्रम ही सारे सुखों का आधार है। राजा को कभी आलसी बन कर न बैठना चाहिए। सतत पराक्रम करना ही उसका सबसे बड़ा कर्त्तव्य है।

महाराज! आप बहुत दिन तक चुपचाप बैठ चुके। अब और अधिक दिन तक उदासीन रहना अच्छा नहीं। आपकी यह उदासी-नता ही हम लोगों के अभ्युदय की सबसे बड़ी बाधक है। जहाँ आलस्य और औदासीन्य वास करता है वहाँ उत्कर्ष और अभ्युदय का क्या काम? अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। उत्साह धारण करके

आप उद्योग का आरम्भ कर दीजिए। सारी समृद्धियाँ पराक्रमी पुरुष को ही प्राप्त होती हैं। अनुद्योगी, अनुत्साही और उदासीन की तरफ़ तो वे दृष्टिपात तक नहीं करतीं। उनके आश्रय मे रहना तो बहुत दूर की बात है।

आप शायद यह समझते होगे कि व्यर्थ पराक्रम करने की क्या आवश्यकता? प्रतिज्ञा की अवधि पूर्ण होने पर हमारा राज्य हमे मिल ही जायगा। यदि आपके विचार ऐसे ही हो तो आप इस प्रकार आकाश मे किले बाँधना छोड़ दीजिए। आपकी यह आशा कभी सफल होने की नहीं। आप क्या अपनी आँखों नहीं देख रहे कि धृतराष्ट्र का बेटा दुर्योधन किस प्रकार सारे संसार के सामने ही हमारे साथ कपट का व्यवहार कर रहा है? ऐसा कपटी आदमी तेरह वर्ष तक राजसी सुख भोग कर भला क्यो हमे हमारा राज्य लौटा देगा? इस अन्धसुत दुर्योधन ने कपट करके ही हम लोगों से हमारा राज्य छीन लिया। यह जो कुछ हुआ सो हुआ; अब भी तो वह खुल्लमखुल्ला हमारे साथ छल-कपट कर रहा है। ऐसे आदमी से अपने राज्य को फिर पाने की आशा तक करना हमारी बहुत बड़ी भूल है। इस दशा मे, यदि आप अपना राज्य फिर भी प्राप्त करने की इच्छा रखते हो तो दुष्ट दुर्योधन के साथ युद्ध की घोषणा करही दीजिए। इसके लिए यही समय उप-युक्त है। अच्छा, मान लीजिए कि तेरह वर्ष बीत जाने पर दुर्योधन ने कपट-पूर्वक छीना गया हमारा राज्य हमे लौटा दिया, तो क्या उससे हम लोगों की अपकीर्ति के सिवा और भी कुछ होगा? यदि आप इस तरह बिना युद्ध के लौटा दिये गये राज्य का स्वीकार करलें

तो आपके हम चारों भाइयों की भुजाओं को धिक्कार है ! यदि उनका कुछ भी उपयोग न हुआ तो हम यही समझेंगे कि उनका होना और न होना दोनों ही हमारे लिए तुल्य है । उनकी शोभा तो तभी है जब आप हम चारों को दुर्योधन के साथ युद्ध करने के लिए आज्ञा देकर हमारी आजानुलम्बी बाहुओं को सफल कर दें ।

हाय हाय ! क्या हम लोगों मे पशुओं की जैसी भी मनस्विता नहीं ? देखिए, हरिण आदि जङ्गली पशुओं का राजा सिंह भी मदोन्मत्त हाथियों को स्वयं मारकर अपनी उपजीविका करता है। दूसरे के मारे हुए शिकार को वह कभी छूता तक नहीं । चाहिए भी यही । अपने तेज से और सब लोगों को तेजोहीन करनेवाला तेजस्वी पुरुष इस बात की कभी स्वप्न मे भी इच्छा नहीं रखता कि दूसरे की कृपा से उसे सुख और ऐश्वर्य मिले । वह उनकी प्राप्ति अपने ही भुजबल और अपने ही पराक्रम से करता है । अतएव, महाराज, साम आदि उपायों की बात अपने हृदय से एकदम दूर कर दीजिए । धनुर्बाण उठाइए और दुष्ट दुर्योधन से अपना राज्य छीन लेने के लिए तैयार हो जाइए ।

मैं इस बात को मानता हूँ कि साम आदि उपायों से राज्य-लक्ष्मी की प्राप्ति जितनी सम्भवनीय है उतनी युद्ध की योजना से नहीं । परन्तु क्षत्रिय-कुल में उत्पन्न होने का अभिमान रखने वाले पुरुष के लिए युद्ध से डरना पाप है । क्षत्रिय तो अपने नश्वर शरीर के नाश से चिरकाल तक रहने वाली कीर्त्ति प्राप्त करना ही अपना मुख्य कर्तव्य समझते हैं । शरीर तो थोड़े ही दिन रहता है । कीर्त्ति

चिरकाल तक बनी रहती है। उसकी प्राप्ति के लिए युद्ध करने से यदि शरीर नष्ट भी हो जाय तो क्या चिन्ता? सम्पत्ति तो बिजली की चमक के समान चञ्चल है। वह कभी स्थिर रहने वाली नहीं। वह तो आती ही जाती रहती है। कीर्त्ति-सम्पादन की इच्छा रखने वालों को लक्ष्मी की प्राप्ति तो उनके प्रयत्न का अनुषङ्गिक फल है। मुख्य फल तो यश ही की प्राप्ति है। यश प्राप्त करना चाहिए। लक्ष्मी की प्राप्ति अथवा अप्राप्ति को कभी न देखना चाहिए। यशस्वी पुरुष को, काम मे सिद्धि प्राप्त होने से, लक्ष्मी तो अनायास ही प्राप्त हो जाती है। इस पर आप शायद अपने मन मे कहें कि क्षत्रिय कुल का अभिमान प्रकट करने ही के लिए युद्ध मे प्राण त्याग करना कहाँ की बुद्धिमानी है? शरीर रहने से तो कालान्तर में भी कीर्त्ति आदि सुखों की प्राप्ति हो सकती है। शरीर ही न रहेगा तो कीर्त्ति लेकर करेंगे क्या? मर कर क्या अपनी कीर्त्ति-कथा सुनने के लिए आवेगे?—इस पर मेरी प्रार्थना है कि राख का ढेर चाहे जितना बड़ा हो उसे लोग निडर होकर अपने पैरों से कुचलते चले जाते हैं। परन्तु जलती हुई आग की एक छोटी सी चिनगारी तक को छूने में कोई भी समर्थ नहीं होता। यही उदाहरण मनुष्यों पर भी अच्छी तरह घटित होता है। पराक्रमहीन पुरुषों को लोग सहज ही जीत लेते हैं। परन्तु शूर-वीर और पराक्रमी पुरुष की तरफ़ कोई आँख उठा कर भी नहीं देख सकता। इसीसे अभिमानी पुरुष निःसङ्कोच होकर प्राण तो छोड़ने के लिए तैयार रहते हैं, पर पराक्रम करना छोड़ने के लिए नहीं। वे जानते हैं कि प्राणों के लोभ से पराक्रम का त्याग करने पर शत्रु

अवश्य ही हमे जीत लेगे। और, इस प्रकार शत्रुओ के द्वारा जीते जाने से प्राप्त हुई अपकीर्त्ति मरने से भी अधिक दुःख-दायिनी है।

क्यों पराक्रम करना चाहिए, इसका कारण मैंने, अपनी समझ के अनुसार, आप से निवेदन किया। सम्भव है, मुझसे भूल हुई हो—मेरे बताये हुए कारण ठीक न हो। तथापि मैं तो यही कहूँगा कि पराक्रम प्रकट करने के कारण उपस्थित हो या न हो, निरुद्योगी कभी न बैठना चाहिए। पराक्रम अवश्य ही करना चाहिए। देखिए, मेघों की गड़गड़ाहट सुनते ही सिंह जो एकाएक गम्भीर गर्जना करने लगता है, उससे उसे क्या फल मिलता है? कुछ भी नहीं। बात यह है कि पराक्रमी पुरुषों का यह स्वभाव ही होता है कि वे दूसरे के उत्कर्ष को नहीं सह सकते। जब सिंह आदि पशु तक अकारण भी पराक्रम प्रकट करते हैं तब क्या हम लोग उनसे भी गये बीते हैं जो मनुष्य होकर भी शत्रुओं का उत्कर्ष अपनी आँखों देखें और फिर भी चुपचाप बैठे रहें?

महाराज, आपकी बुद्धि पर प्रमाद-जन्य अन्धकार का परदा सा पड़ गया है। उदासीनता ने आपकी बुद्धि को कुण्ठित सा कर दिया है। आप अपनी बुद्धि के इस मोहरूपी आवरण को तत्काल हटा दीजिए। अपना बल-विक्रम दिखाने के लिए शीघ्र ही तैयार हो जाइए। शत्रु जो आनन्द से राज्य-सुख का उपभोग कर रहे हैं—उनके सङ्कटों का जो एक दम नाश सा हो गया है—इसका एक मात्र कारण आपका अनुद्योग और आपका अनुत्साह है। इसे आप ध्रुव सत्य समझिए। यदि आप कुछ भी उद्योग करते तो शत्रु सब

तरफ़ से विपत्तियों के फन्दे मे फँसे बिना न रहते। न मालूम कब उनका नाश हो गया होता।

महाराज, आप इस शङ्का को अपने हृदय मे एक क्षण के लिए भी स्थान न दीजिए कि युद्ध करने से आपको शत्रुओं से हार खानी पडेगी। मतवाले चार दिग्गजो और विस्तीर्ण चार समुद्रों के सदृश, पृथ्वी के कोने कोने मे विख्यात, इन्द्र के सदृश महा पराक्रमी, आपके हम चारो छोटे भाई आपके लिए प्राण देने को तैयार हैं। आपही बताइए, शत्रुओ के पक्ष मे क्या एक भी वीर ऐसा है जो समर-भूमि मे हमारा सामना कर सके? अतएव आप दुबिधा को दूर करके अब निःशङ्क युद्ध की तैयारी कर दीजिए। मुझे विश्वास है कि इसका फल अच्छा ही होगा। महाराज, शत्रुओ ने हमारे साथ सचमुच ही बड़ा अन्याय किया है। उनके उस अन्याय और कपट के कारण आपके अन्त.करण मे चिरकाल से क्रोधरूपी अग्नि जल रही है। युद्धहोने पर शत्रुओं की स्त्रियों को अवश्य ही वैधव्य प्राप्त होगा। तब उनके नेत्रों से आँसुओ की अमङ्गल धारायें अवश्य ही बहेंगी। भगवान् करे उन्ही अश्रुधाराओं से आपकी वह क्रोधाग्नि बुझ जाय! ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि आपके इस कोपानल की शान्ति का समय शीघ्र ही आवे!

हाथी जब मतवाला हो जाता है तब उसे अपने वश मे करने के लिए अनेक प्रयत्न करने पड़ते हैं। यदि वह किसी तरह मार दिया जाय तो उसे वशीभूत करने के लिए सैकड़ों झंझट न करने पड़ें। परन्तु उसका मारना इष्ट नहीं समझा जाता। क्योंकि उसका उन्माद दूर हो जाने पर उससे सैकड़ो काम निकल सकते

हैं। राजनीति में लिखा है कि शूर-वीर पुरुष यदि किसी कारण से कुपित हो उठे तो उसका तिरस्कार न करके उसे भी, उन्मत्त हाथी ही के सदृश, युक्तिपूर्वक शान्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। उसे शान्त कर देने से भविष्यत् मे उससे अनेक उपकार-साधन हो सकते हैं। अतएव उसका त्याग उचित नहीं। युधिष्ठिर तो बहुत बड़े राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने देखा कि शत्रुओ के किये हुए अपकार का स्मरण करके भीमसेन के हृदय मे विकार उत्पन्न हो गया है। अतएव वे क्रोध से उन्मत्त हो उठे हैं। यह सोच कर उन्होने मतवाले हाथी के सदृश ही उन्हे धीरे धीरे शान्त करना आरम्भ किया। उन्होंने मन में कहा कि युक्ति से भीमसेन की सान्त्वना करनी चाहिए। उन्हें फटकारने से काम न चलेगा। वे बोले—

विशुद्ध, निर्मल और मङ्गल-जनक दर्पण में देखने वालों को अपना प्रतिबिम्ब जैसे साफ़ दिखाई देता है वैसे ही तुम्हारे मनोहारी, कल्याणकारी और शुद्ध भाषण में तुम्हारी विमल मति का प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा है। वाह, खूब बोले! दर्पण में धूलि का स्पर्श न होने से जैसे वह विमल दिखाई देता है वैसे ही सन्देह और संशय-हीन होने के कारण तुम्हारे वचनों का समुदाय भी विमल है। काँच का होने के कारण दर्पण जैसे शुद्ध होता है वैसे ही तुम्हारा भाषण भी विशुद्ध शब्दों से परिपूर्ण है। दर्पण में जैसे अपने भीतर मनुष्य का प्रतिबिम्ब खींच लेने की शक्ति होती है वैसे ही तुम्हारे भाषण में भी सुनने वाले का मन हरण करने की शक्ति है। दर्पण जैसे माङ्गलिक वस्तु मानी जाती है वैसे ही तुम्हारा भाषण भी मङ्गलजनक है। स्वच्छ दर्पण के सदृश तुम्हारी वाणी

के इस विस्तार में तुम्हारी बुद्धि की निर्मलता ख़ूब झलक रही है।

तुम्हारे भाषण-चातुर्य्य की मैं कहाँ तक प्रशंसा करूँ। भाई, वाह! नीति-शास्त्र का बहुत ही अच्छा प्रतिपादन तुमने किया। तुमने इस इतने बड़े भाषण मे ऐसे एक भी शब्द या पद का प्रयोग नही किया जिसका अर्थ स्पष्ट न हो। इतना होने पर भी तुमने अर्थ-गौरव को हाथ से नही जाने दिया। जितनी बाते तुमने कहीं सभी अर्थगौरव से परिपूर्ण हैं। इसके सिवा अपने भाषण मे तुमने पूर्वा-पर-सम्बन्ध का निर्वाह भी ख़ूब ही किया। एक शब्द भी अप्रा-सङ्गिक नही आने दिया। तुमने यद्यपि एक ही विषय पर अपने विचार प्रकट किये तथापि विषय एक होने पर भी कहीं भी पुन-रुक्ति नही आने दी। तुम धन्य हो! मैं तो जैसे जैसे तुम्हारे भाषण की योग्यता पर विचार करता हूँ वैसे ही वैसे मुझे उसमें नये नये गुण दिखाई देते हैं। तुम्हारा भाषण साकाङ्क्ष, अर्थ-गौरव-युक्त और स्पष्ट ही नही, तुमने उसमे अपने बुद्धिबल से जिन युक्तियों का प्रतिपादन किया वे भी उत्तम हैं। एक बात और भी है। वक्ता लोग जिन युक्तियों का प्रयोग करते हैं वे सदा शास्त्र का अनुसरण करने वाली नही होती। कभी कभी वे शास्त्र की विरोधिनी भी होती हैं। परन्तु तुमने तो ऐसी युक्तियों से काम लिया जो शास्त्र की सीमा के रत्ती भर भी बाहर नहीं। तुम्हारा यह भाषण तुम्हारे क्षात्र-धर्म के सर्वथा ही योग्य है। जो लोग क्षात्र-धर्म्म के ऐसे कट्टर पक्षपाती नहीं वे इस प्रकार का युक्तिपूर्ण और नीतिशास्त्र-सङ्गत भाषण करने के लिए कभी निःशङ्क होकर तैयार नही हो

सकते । ऐसे भाषण का आरम्भ करना ही जब इतना कठिन है तब ऐसा वक्ता मिलना कितना दुर्लभ है, यह बताने की आवश्यकता नहीं ।

तथापि, भाई, मुझे तुम्हारी न्यायशास्त्र सङ्गत युक्तियों से भी पूरी पूरी तृप्ति नहीं हुई । मेरा मन अब भी सशयालु बना हुआ है। कोई काम करने के पहले सब बातो का निर्णय अच्छी तरह हो जाना चाहिए । मुख्य काम करने का निश्चय करने के पहले अवान्तर बातों का भी विचार कर लेना उचित है । बात यह है कि सन्धि-विग्रह आदि कार्यों मे और भी कितनी ही छोटी मोटी बाते ऐसी उपस्थित हो जाती हैं जिनका स्वरूप शीघ्र ही समझ मे नही आ सकता । उन पर भी ख़ूब गहरा विचार करना पड़ता है । तुमने हम लोगों की इति-कर्तव्यता का जो निर्णय किया उसके उत्तम होने में कोई सन्देह नहीं । पर उसकी सिद्धि के लिए और भी कितनी ही बातों पर विचार करने की आवश्यकता है । शीघ्रता करने से काम बिगड़ने का डर है । विद्वानों का मत है कि चाहे काम छोटा हो चाहे बड़ा, उसे सहसा करने के लिए तैयार न हो जाना चाहिए । ख़ूब समझ बूझ कर करना चाहिए । क्योंकि अविचार मनुष्य का बहुत बड़ा शत्रु है । इस अविचार ही के कारण मनुष्यों को बड़ी बड़ी विपत्तियों में फँसना पड़ता है । विवेक, गाम्भीर्य और औदार्य आदि गुणों से सम्पत्तियाँ स्वभाव ही से प्रेम करती हैं । जिनमें ये गुण होते हैं उनका वे स्वयं ही प्रसन्नता-पूर्वक आश्रय लेती हैं । ऐसे गुणवान् जनों को सम्पत्ति की कभी कमी नहीं रहती । अतएव, भाई, बिना अच्छी तरह विचार किये कोई

काम करना अच्छा नहीं। यह तो सच है कि जो लोग किसी काम को सहसा कर बैठते हैं उन्हे भी कभी कभी सिद्धि प्राप्त हो जाती है। परन्तु निश्चित सिद्धि सदा ही प्राप्त नहीं होती। कभी ऐसा भी होता है कि सिद्धि नही भी प्राप्त होती। परन्तु जो मनुष्य कर्तव्य-कर्म-रूपी बीज को विवेक-रूपी जल से सतत सिञ्चन करता हुआ फल-प्राप्ति की प्रतीक्षा करता है उसे सदा उसी तरह फल-सिद्धि होती है जिस तरह कि वर्षा ऋतु के आरम्भ मे बोये गये धान्य से शरद्-ऋतु मे किसानों को धान्य की प्राप्ति होती है। साहसी पुरुषो को जो सिद्धि प्राप्त होती है वह पाक्षिक है, परन्तु विवेकी पुरुषो की सिद्धि वैसी नहीं। वह उन्हे नियमपूर्वक अवश्य ही प्राप्त होती है। अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह विवेक को कभी न छोड़े। जो काम करे विवेक-पूर्वक करे। शास्त्रों का अध्ययन यदि सम्प्रदाय-शुद्ध रीति से किया जाय तो उससे शरीर की शोभा है। इस प्रकार अध्ययन करने वाले विद्वान् के हृदय मे यदि शान्ति का वास हो तो उससे उसके शास्त्राध्ययन की शोभा है। यदि उसने उचित समय पर पराक्रम किया तो उसके पराक्रम से उसकी शान्ति की शोभा है। इसी तरह सुनीति तथा विवेक से प्राप्त हुई अर्थसिद्धि से उसके उस पराक्रम की शोभा है। अतएव विवेक सारे गुणो का भूषण है। सभी को उसका आश्रय लेना चाहिए।

सूर्यास्त होने पर सर्वत्र अन्धकार फैल जाता है। इस कारण न कोई लिख सकता है, न पढ़ सकता है, न कोई और ही काम कर सकता है। संसार के सब व्यापार प्रायः बन्द हो जाते हैं।

ऐसे समय में दीपक जलाने से सब चीज़ें फिर दिखाई देने लगती हैं और मनुष्यों के सारे काम फिर पूर्ववत् होने लगते हैं। इसी तरह अविवेक-रूपी अन्धकार से मनुष्य की बुद्धि जब आच्छादित हो जाती है तब उसके लिए यह समझना बहुत ही कठिन हो जाता है कि कौन काम करने और कौन न करने योग्य है। ऐसे समय में, विवेकी पुरुषों के लिए, सतत अभ्यास से निर्णय किये गये नीति-शास्त्र के वचन, दीपक का काम देते हैं। उन्हीं की सहायता से विवेकशील पुरुष यह जानने में समर्थ होते हैं कि कौन काम हमारे करने और कौन न करने योग्य है। अतएव नीतिशास्त्र का अभ्यास करके विवेकशील होना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। यह सच है कि विचारपूर्वक काम करने से भी कभी कभी काम बिगड़ जाता है। परन्तु इससे यह नहीं सिद्ध होता कि मनुष्य सहसा कोई काम करने के लिए तैयार हो जाय।

अनेक स्पृहणीय गुणों के आकर महात्मा जिस मार्ग से जाते हैं उस मार्ग से जाने पर यदि अनर्थ भी हो जाय तो कोई दोष नहीं देता। उलटा लोग ऐसे मनुष्य की प्रशंसा ही करते हैं। बात यह है कि मनुष्य को उपाय भर विवेक का अवलम्बन करना चाहिए। ऐसा करने पर भी यदि दैवयोग से कोई दुर्घटना होजाय, अथवा यदि कार्यसिद्धि न हो, तो मनुष्य का उसमें क्या दोष?

जिनकी यह इच्छा हो कि वे अपने शत्रुओं पर विजय पावें उन्हें पहले क्रोध पर विजय प्राप्त करना चाहिए। जो सच्चे क्षत्रिय हैं वे क्रोध को जीत कर तब शत्रु को जीतने की चेष्टा करते हैं। वे इस बात का निश्चय पहले ही से कर लेते हैं कि कौन सा प्रयत्न

करने से—कौन से उपाय के अवलम्बन से—हमे भविष्यत् मे यथेष्ट फलसिद्धि होगी। यह करके तब वे तदनुकूल उपायों की योजना करते हैं। फलसिद्धि का निश्चय पहले न करके पराक्रम करने के लिए उतारू हो जाना सर्वथा अनुचित है।

क्षत्रियो के लिए क्रोध को जीत लेना परम आवश्यक है। बिना क्रोध को जीते अभीष्ट कार्य कदापि सफल नहीं हो सकता। जो अपने अभ्युदय की हृदय से इच्छा रखता हो उसे चाहिए कि वह क्रोध से उत्पन्न हुए अज्ञान को अपनी विचार-बुद्धि से दूर कर दे। बिना ऐसा किये उसका अभ्युदय नहीं हो सकता। देखो, सूर्य कितना तेजस्वी है। परन्तु वह भी उदय होने के पहले अपने तेज से रात के निबिड अन्धकार का नाश कर देता है। तब कहीं उदय होने मे वह समर्थ होता है। जब सूर्य्य-सदृश तेजस्वियों का यह हाल है तब दूसरों की क्या कथा?

किसी किसी की यह राय है कि जो दुर्बल है उसी को क्रोध का त्याग करके युक्ति से अपना काम निकालना चाहिए। जो बलवान् है उसे क्रोध-त्याग की क्या आवश्यकता? क्रोध से उसकी कोई हानि नहीं हो सकती। क्योंकि उसे तो अपने शौर्य्य और पराक्रम ही से अभीष्ट फल की प्राप्ति हो जाती है। परन्तु यह राय ठीक नहीं। इससे मैं सम्मत नहीं। जो लोग क्रोध से उत्पन्न हुए तमोरूपी मोह का नाश किये बिना ही, केवल अपने पराक्रम के भरोसे, कोई काम करते हैं उन्हे कभी सफलता नहीं प्राप्त होती। कृष्णपक्ष जिस तरह चन्द्रमा की सम्पूर्ण कलाओं का नाश कर डालता है उसी तरह एक मात्र शौर्य के भरोसे कार्य्यारम्भ करनेवाला क्रोधी मनुष्य प्रभु-

शक्ति, मन्त्र-शक्ति और उत्साह-शक्ति, इन तीनों शक्तियों से प्राप्त होने वाली सम्पत्ति का नाश कर डालता है। अतएव क्रोध का अवश्य ही त्याग करना चाहिए। उसकी उपेक्षा करने से कभी कार्य-सिद्धि नहीं होती। भाई भीमसेन, राजाओं को समानवृत्ति तो होना चाहिए, परन्तु प्रसङ्ग की बात उन्हे सदा ध्यान मे रखनी चाहिए। यदि नरमी दिखाने का प्रसङ्ग हो तो नरमी का व्यवहार करना चाहिए। यदि कड़ाई दिखाने का प्रसङ्ग हो तो कड़ा व्यवहार करना चाहिए। प्रसङ्ग को देख कर ही उसे मृदुता या तीक्ष्णता का स्वीकार करना चाहिए। जो राजा इस तरह का व्यवहार करता है वह अपने तेज से ही सब लोगों को अपने वश मे रख सकता है। सभी उससे डरते और सभी उसकी आज्ञा मानते हैं। सूर्य्य को देखो। यद्यपि वह अपनी तेजस्विता कभी नहीं छोड़ता तथापि ऋतु-विशेष मे वह अपने तेज को घटा-बढ़ा ज़रूर देता है। शीतकाल मे वह मृदु और ग्रीष्मकाल में तीक्ष्ण हो जाता है। यही कारण है जो उसके तेज का कोई उल्लङ्घन नहीं कर सकता। अतएव तेज के सम्बन्ध में राजा को अपना व्यवहार सूर्य्य के ही सदृश रखना चाहिए।

लोग चाहते हैं कि उन्हे प्राप्त हुई सम्पत्ति सदा एक सी बनी रहे। परन्तु, भाई साहब, इन्द्रिय लोलुपों को ऐसी आशा करना व्यर्थ है। विषयासक्त लोग तो इन्द्रियों के दास होते हैं। कहाँ इन्द्रिय-लोलुपता और कहाँ सम्पत्ति की स्थिरता की आशा! ये दोनों बाते अत्यन्त ही परस्पर-विरुद्ध हैं। विषयासक्ति और सम्पत्ति कभी एक साथ नहीं रह सकती। लक्ष्मी तो शरद्-ऋतु के मेघों के समान चञ्चल और अनेक प्रकार के अनर्थों की उत्पादक है। ऐसी चञ्चल

और अनर्थकारिणी सम्पत्ति इन्द्रियों के अधीन रहने वाले पुरुषों की रक्षा मे सदा नहीं रह सकती। जितेन्द्रिय लोग ही उसे चिरकाल तक रक्षित रख सकते हैं। याद रहे, क्रोधियों की गणना जितेन्द्रियों मे नहीं। अतएव जिसे सम्पत्ति की रक्षा चिरकाल तक करनी हो उसे क्रोध बिलकुल ही छोड़ देना चाहिए। उसे इंद्रियों को अपने वश मे रखना चाहिए।

भीमसेन, तुम तो ऐसे न थे। पहले तो तुम्हारा मन इस तरह क्षुब्ध न होता था। पहले तो तुमने अपनी गम्भीरता से सागर तक का तिरस्कार कर दिया था। गम्भीरता मे तुम उससे भी बढ़ गये थे। आज तुम इतने चञ्चल क्यों हो उठे? अपने अन्तःकरण के अकालिक क्षोभ से धैर्य छोड कर अब तुम धीरता मे अपने को समुद्र से कम कर रहे हो। देखो, तुम्हारे इस क्षोभ के कारण समुद्र तुमसे धीरता और गम्भीरता मे बढा जा रहा है। ऐसा न होने दो। जिसे एक दफ़े जीत लिया उसी से हार जाना बड़े कलङ्क की बात है। क्या इस तरह का इन्द्रिय-क्षोभ तुम्हारे लिए सन्ताप का कारण नहीं? जो मनुष्य शास्त्रज्ञ होकर भी काम-क्रोधादि षड्-रिपुओं पर विजय नहीं प्राप्त कर सकते वे थोड़े ही दिनो मे सम्पत्ति की चञ्चलता से उत्पन्न होनेवाली अपकीर्त्ति को प्राप्त होते हैं। सम्पत्ति उन्हे अवश्य ही छोड़ जाती है, और उसके छोड़ जाने पर उनके माथे पर अवश्य ही अपकीर्त्ति का टीका लगता है। लोग कहते हैं कि लक्ष्मी स्वभाव ही से चञ्चल है। परन्तु मैं समझता हूँ कि यह दोष लक्ष्मी का नहीं। यह दोष तो हमी लोगों का है। हममे दोष न हों तो लक्ष्मी कभी हमारा साथ न

छोड़े। जिसने काम-क्रोध आदि विकारों को नहीं जीता वह बेचारा अपने शत्रुओं को क्या जीतेगा ? ये विकार तो अपनी ही देह के भीतर उत्पन्न होते हैं । उन्हें भी जीतने की शक्ति जिसमे नही, उसके द्वारा दूरवर्ती शत्रुओं को जीतने की चेष्टा विडम्बना के सिवा और कुछ नहीं । भला ऐसों को भी कहीं सम्पत्ति की प्राप्ति हो सकती है ?

क्रोध मनुष्य का बहुत बड़ा शत्रु है । वह अपने ही शरीर को, तथा शरीरस्थ इन्द्रियों को भी, सन्तप्त किये बिना नही रहता। इतना ही नहीं, उससे और भी अनिष्ट होते हैं। आरम्भ किये गये किसी कार्य के सिद्ध होने का समय आजाने पर भी, और उसकी सिद्धि के साधन अनुकूल होने पर भी, यह दुष्ट क्रोध कुछ भी नहीं होने देता। इसके कारण उपयुक्त समय और उपयुक्त साधन सभी प्रतिकूल हो जाते हैं। फल यह होता है कि काम बिगड़ जाता है। ऐसा महा अनर्थकारी क्रोध तुम्हारे सदृश नीतिज्ञ को भी, एक तुच्छ मनुष्य की तरह, नीति के उच्चासन से नीचे ढकेल दे, यह कितने परिताप की बात है ! तुम्हें क्रोध करना कदापि उचित नहीं। असमय में क्रोध करने से तो और भी काम बिगड़ जाता है; उलटा सन्ताप सहन करना पड़ता है, सो घाते में।

भाई, क्षमा से बढ़ कर संसार मे और कोई साधन नहीं। क्षमा का अवलम्ब करने से सुख की उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्राप्ति होती है, और आरम्भ किया गया काम यथासमय सफल हो जाता है। क्षमा को तो मैं कार्य्यसिद्धि की जड़ समझता हूँ। इसमें एक और भी बहुत बड़ा गुण है। वह यह कि उसका कभी नाश नहीं होता; उसकी सहायता से शत्रुओं का अवश्य नाश

हो जाता है। इस दशा मे तुम्हीं कहो, क्षमा से बढ़ कर कार्य्य-सिद्धि मे सहायता देने वाली और कौन सी वस्तु संसार मे है?

तुम शायद यह समझते होगे कि जब तक हम लोग क्षमा क्षमा कहते हुए चुपचाप बैठे रहेगे तब तक दुर्योधन सब राजाओ को अपने अनुकूल कर लेगा। फिर उससे पार पाना असम्भव हो जायगा। परन्तु तुम्हारी यह शङ्का निर्मूल है। यादव कभी दुर्योधन के अनुकूल न होगे। हम लोगो पर उनका निष्कपट स्नेह है। उनका यह स्नेह सर्वथा स्वाभाविक भी है। वे हमारे स्नेह-पाश मे बँध से गये हैं। वे ऐसे वैसे नही, बड़े ही आत्माभिमानी हैं, उनके साथ हम लोग सदा से ही नम्रता का व्यवहार करते आये हैं। अतएव वे हमे छोड कर कभी दुर्योधन की अनुकूलता न करेगे। हमारा उनका सख्य ही कुछ ऐसा है कि उसे वे त्रिकाल मे भी तोड़ना न चाहेगे। यद्यपि इस समय ऊपर से ऐसा मालूम होता है कि वे दुर्योधन ही के अनुकूल हैं, तथापि समय आने पर वे उसे छोड़ कर हमारी ही सहायता करेगे। इसमे कुछ भी सन्देह नही। यादव ही नही, उनके बन्धु-बान्धव भी हमारी ही सहायता करेगे। यादवो के मातृ-पितृ-पक्ष के सम्बन्धी तथा उनके नये पुराने मित्र भी यादवों ही का अनुसरण करेगे। इन लोगो मे से एक भी ऐसा नही जो यादवों की बात का उल्लङ्घन करे। इस समय ये लोग जो दुर्योधन की अनुकूलता कर रहे हैं उसका कारण है। ये लोग दुर्योधन को भुलावा दे रहे हैं। अपनी नम्रता और अनुकूलता से अभी तो ये ऊपरी तौर से यह दिखा रहे हैं कि युद्ध का प्रसङ्ग आने पर हम लोग तुम्हारी ही सहायता करेगे। परन्तु परिणाम मे यह बात न

होगी। उस समय ये लोग दुर्योधन को अवश्य ही छोड देंगे और यादवों के साथ हमारे पक्ष मे आ मिलेगे। इसका मुझे पूरा भरोसा है।

भाई, दुर्योधन के साथ युद्ध करने का समय अभी नही आया। इस समय उसके साथ युद्ध छेड देने से न यादव लोग ही हमारी सहायता करेंगे और न उनके मित्र ही। बात यह है कि दुर्योधन ने तेरह वर्ष बाद हमे राज्य लौटा देने की प्रतिज्ञा की है। इस अवधि के पहले ही यदि हम लोग शस्त्र-ग्रहण करेंगे तो हमारा यह काम कभी न्याय-सङ्गत न माना जायगा और अन्यायी का पक्ष कोई भी समझदार आदमी नही ग्रहण करता। उदय होते ही सूर्य्य जैसे कमल के मुकुलो को फोड़ देता है वैसे ही हम लोगों का असमय मे शस्त्र-ग्रहण यादवों और तत्पक्षी राजाओं के सख्य को फोड़ देगा। नियमोल्लङ्घन करने के कारण फिर हमे इन लोगों की सहायता से वञ्चित होना पड़ेगा।

तुम यदि यह समझते हो कि जो राजा यादवों के पक्ष के नहीं उनसे तो दुर्योधन को अवश्य ही सहायता मिलेगी, तो यह भी तुम्हारी भूल है। ऐसा कभी न होगा। दुर्योधन राज्य के मद से मतवाला हो रहा है, और मतवाले आदमी को कार्याकार्य का ज्ञान नहीं रहता। अतएव दुर्योधन कभी न कभी इन अन्य राजाओ का अपमान किये बिना न रहेगा। ऐसा होने पर ये राजा भी उससे अवश्य ही द्वेष करने लगेंगे। संसार में निर्बल और असहाय मनुष्य भी अपमान और तिरस्कार नहीं सह सकते। फिर भला ये लोकोत्तर तेजस्वी और प्रतापशाली पृथ्वीपति क्यों अपना अपमान चुपचाप

सहन करेंगे? अपमानित होने पर, ये अवश्य ही दुर्योधन को छोड़ देंगे। इस समय ये उसके अनुकूल हैं, तथापि एक दिन ऐसा अवश्य आवेगा जब ये सब भी दुर्योधन की प्रतिकूलता करने के लिए विवश होंगे। मदमत्तों से किसी की भी सदा नहीं पटती।

जिस वनवासी को हमने दुर्योधन का हाल जानने के लिए भेजा था उसने अवश्य ही दुर्योधन की सभी बातों की प्रशंसा की है। उसके कथन से तो यही सूचित होता है कि दुर्योधन को रत्ती भर भी राज्य मद नहीं। उससे यह भी सूचित होता है कि वह अपने बन्धु-बान्धवों, अपने इष्ट-मित्रों और अपने नौकर-चाकरों से बहुत ही स्नेह करता है। सम्भव है, यह सब सच हो। परन्तु, फिर भी, दुर्योधन दुर्जन ही है। सम्पत्ति प्राप्त होने पर दुर्जन किसी न किसी दिन अवश्य ही विपथ-गामी होजाता है। ऐसे मनुष्य को राज्य का मद हुए बिना रहता ही नहीं। जिसका हृदय अहङ्कार से अभिभूत हो रहा है, जिसने कभी किसी काम का आरम्भ करके स्वयं उसे सफलता-पूर्वक नहीं समाप्त किया, वह कुछ दिन चाहे भले ही आनन्द से सम्पत्तियों का उपभोग करे, पर सदा नहीं कर सकता। विनय और शालीनता के कारण उसकी सम्पत्तियों का नाश कुछ ही समय तक रुक सकता है, अधिक समय तक नहीं। कारण उपस्थित होने पर वह अवश्य ही अहङ्कार के वशीभूत हो जाता है। फिर वह विनय और शील आदि को भूल जाता है। इस अवस्था को पहुँचने पर उसे अवश्य ही विपत्ति-ग्रस्त होना पड़ता है। दुर्जनों का राज-मद परिणाम में कभी सुखकारक नहीं होता।

राज-मद अत्यन्त अनर्थकारी है। राजा के हृदय में मद और

अहङ्कार की उत्पत्ति होने पर मूढ़ता उसे अवश्य ही आ घेरती है। और, मूढ मनुष्य को कार्य्य-अकार्य्य का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। अतएव मूढ़ता का आगमन होते ही मनुष्य न्याय्य मार्ग का उल्लङ्घन कर जाता है—वह अन्याय करने लगता है। और, अन्यायी राजा से प्रजा कभी सन्तुष्ट नहीं रहती, वह अवश्य ही उसकी प्रतिकूलता करने लगती है। प्रजा के प्रतिकूल होने पर मन्त्री लोग भी प्रतिकूल हो जाते हैं। अन्यायी राजा को कोई पसन्द नहीं करता; सभी उससे घृणा करते हैं। प्रजा-जनों और मन्त्रियों के विरोधी बन जाने पर, राजा चाहे जितना पराक्रमी हो, उसका समूल नाश करना बहुत ही सहज हो जाता है। तीव्र वायु के झोकों से जिस वृक्ष के पत्ते, डालियाँ और तना आदि सभी अवयव हिल जाते हैं—शिथिल हो जाते हैं—उसे मन्द वायु भी सहज ही में उखाड़ फेंकता है। यही हाल अहङ्कारी, मदोन्मत्त और अन्यायी राजा का होता है। उसकी प्रजा और मन्त्रिमण्डल के बिगड़ उठने पर वह निर्बल और सहायहीन हो जाता है। तब उसका जड़ से नाश करने में देर नहीं लगती। तब तो अल्प-बल और अल्प-साधन से युक्त भी शत्रु उसे, शिथिल हुए वृक्ष के सदृश ही, उखाड़ फेंकने मे समर्थ होता है।

सचिव-समूह में द्वेष उत्पन्न होने से ही राजा कैसे सहज में जीता जा सकता है? इस तरह की शङ्का कुछ भी अर्थ नहीं रखती। मन्त्रियों को कुछ न समझना भूल है। उन्हीं के सच्चे परामर्श से राजा के काम बनते हैं। यदि वही राजा से द्वेष करने लगे तो, उनका द्वेष चाहे बहुत ही कम क्यों न हो, राजा का नाश होने में देर नहीं

लगती। मन्त्रियो के मन मे उत्पन्न हुआ भेद-भाव बड़ा घातक होता है। वृक्ष की शाखाये जब परस्पर रगड खाती हैं तब उनसे आग निकलने लगती है। उस आग से अकेला वह वृक्ष ही नही जल जाता, किन्तु सारे का सारा वन जल कर भस्म हो जाता है।

हमारे शत्रु दुर्योधन का उत्कर्ष यद्यपि उत्तरोत्तर बढ रहा है तथापि उसकी उपेक्षा करने ही में हमारी भलाई है। नीति कहती है कि राज-मद से मत्त हुए शत्रु का उत्कर्ष चाहे जितना अधिक रहा हो, बुद्धिमान् मनुष्य को उससे भयभीत न होना चाहिए। दुर्विनीत शत्रु भले ही खूब बलवान् और खूब पराक्रमी क्यो न हो, दुर्विनीतता के कारण उसका वह बल और वह पौरुष समय पर कुछ भी काम नही आता। भेद-भाव का प्रसङ्ग उपस्थित होने पर बहुत ही थोड़े उपायों से वह जीता जा सकता है। कारण यह है कि दुर्विनीत और मदमत्त पुरुष के पास सम्पदायें बहुत दिन तक ठहर ही नही सकतीं। अन्त मे वे उसे स्वयं ही छोड़ जाती हैं। उनका पर्य्यवसान अनर्थकारी हुए बिना रहता ही नहीं।

दुराचरण का फल बहुत बुरा होता है। जब राजा अपने उद्धत व्यवहार से अपनी प्रजा और मन्त्रि-मडली को अप्रसन्न कर देता है तब उनके हृदय मे भेद-भाव का अवश्य ही आविर्भाव हो जाता है। ऐसी स्थिति उपस्थित होने पर दुर्विनीत और दुराचारी राजा का राज्य छीनते समीपवर्ती राजा को कुछ भी देर नही लगती। पानी के प्रवाह के धक्को से शिथिल हो गये तट को तोड बहाना नदी के वेग के लिए जैसे बहुत ही सहज काम है वैसे ही

इस तरह के राजा के बल को तोड़ कर उसका राज्य छीन लेना भी बहुत ही सहज काम है।

अपने शत्रु दुर्योधन के अभ्युदय का स्मरण करके क्षुब्ध हुए भीमसेन को युधिष्ठिर इस प्रकार नीतिशास्त्र-सम्बन्धी रहस्य समझा ही रहे थे कि महामुनि व्यास वहाँ अकस्मात् आते दिखाई दिये। वे क्या, मानो व्यासजी का रूप धारण करके धर्मराज युधिष्ठिर का अभीष्ट मनोरथ ही उनके सामने आता दृष्टिगोचर हुआ। व्यासजी बड़े तपस्वी थे। उन्हे तो तपस्या का उत्पत्ति-स्थान ही कहना चाहिए। दर्शनमात्र से ही वे प्राणियों के पापों का नाश और उनके दुःखो का दमन करने वाले थे। वे इतने तेजस्वी थे कि तेज से उनका सारा शरीर देदीप्यमान हो रहा था। परन्तु उनकी तेजस्विता ऐसी न थी कि देखी न जा सके; वह कोमल अतएव अवलोकनीय थी। दयाशील वे इतने थे कि उनकी चितवन से ही दयालुता टपक सी रही थी। सिंह, व्याघ्र, गीध आदि हिंसक पशु-पक्षी भी उनकी दया-दृष्टि पडते ही अपनी हिंस्र-वृत्ति छोड़ देते थे। ऐसे महात्मा, ऐसे दयालु और ऐसे महातपस्वी को अकस्मात् आता देख युधिष्ठिर को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्हें उस समय ऐसा मालूम हुआ जैसे देह धारण करके साक्षात् पुण्य-पुञ्ज ही उनके सन्मुख चला आ रहा हो। युधिष्ठिर उस समय लाल-रङ्ग के वल्कल धारण किये हुए थे। उन्हें वैसे ही धारण किये हुए वे अपने ऊँचे आसन से उठ खड़े हुए। उस समय ऐसा मालूम हुआ जैसे लाल-रङ्ग के कोमल किरण सर्वत्र फैलानेवाला सूर्य प्रातःकाल सुमेरु-पर्वत के शिखर के ऊपर उदित हो आया हो।

तब तक महामुनि व्यास युधिष्ठिर के बिलकुल पास आ पहुँचे। उनके आते ही युधिष्ठिर ने अपना आसन छोड़ दिया और उन्हे बड़े आदर से बिठाया। फिर स्वस्थचित्त होकर उनकी पूजा करने के लिए वे तैयार हो गये। युधिष्ठिर का पुरोहित उस समय वही पर था। उसने युधिष्ठिर से मुनिवर व्यास की यथा-विधि पूजा कराई। ऋषीश्वर की जैसी पूजा की जानी चाहिए वैसी कर चुकने के अनन्तर, व्यासजी की आज्ञा से युधिष्ठिर फिर अपने आसन पर आ बैठे। उस समय उस आसन की वैसी ही शोभा हुई जैसी शोभा कि विनीत-भाव के योग से शास्त्राध्ययन की होती है।

महर्षि व्यास के दर्शनो से युधिष्ठिर को परमानन्द हुआ। उनका मुख-कमल विकसित हो उठा और मन्द मुसकान की किरणे उनके ओठो पर दिखाई देने लगी। उस समय विशेष तेजस्वी भगवान् व्यास के सामने बैठे हुए वे ऐसे शोभायमान हुए जैसा कि देदीप्यमान तेज:समूह धारण करने वाले सुरगुरु बृहस्पति के सामने उपस्थित हुआ पूर्णिमा का पूरा चन्द्रमा शोभायमान होता है।

———

# तीसरा सर्ग।

आसन पर बैठे हुए व्यासजी बहुत ही भले मालूम हुए। शरदृतु के पूर्ण चन्द्रमा की शीतल किरणें जैसी सुन्दर मालूम होती हैं, व्यासजी के शरीर की कान्ति की किरणें भी वैसी ही सुन्दर मालूम हो रही थीं। उन किरणों का जाल ऊपर की ओर फैल रहा था। अतएव ऐसा मालूम होता था कि ऋषीश्वर का शरीर जितना था उससे भी अधिक ऊँचा हो गया है। उनका शरीर तो श्यामल था, पर सिर पर बढ़ी हुई जटायें कुछ कुछ पीली थीं। इस कारण वे चमकती हुई विद्युल्लता से युक्त नीले मेघ के सदृश मालूम होते थे। शरीर उनका अलौकिक शोभा-शाली था। उनके चेहरे से सौम्य-भाव और साधुता टपक सी रही थी। इस कारण जो लोग उन्हें पहचानते न थे—जो यह न जानते थे कि ये महात्मा व्यासजी हैं—उनके भी हृदय में व्यासजी को देखते ही स्नेह-भाव उत्पन्न हो जाता था; वे भी उन पर भक्ति-भाव प्रकट करने लगते थे। उनकी मुखचर्या इतनी शान्त थी कि मानो वह पुकार पुकार कर कह रही थी कि उनकी अन्तःकरण-वृत्ति अत्यन्त निर्मल है। दर्शन मात्र से ही लोग उन पर मोह जाते थे और उन्हें अपना विश्वासपात्र समझने लगते थे। व्यासजी को

देखते ही देखनेवालो को ऐसा ज्ञात होने लगता था जैसे वे उनके साथ बहुत पहले ही कभी बातचीत कर चुके हों और गोपनीय बातें तक करने के लिए तैयार हो । इन गुणो के सिवा व्यासजी मे और भी कितने ही अलौकिक गुण थे । सारे पातकों के नाशक और सारे धर्म्म कार्य्यों के प्रतिपादक पूजनीय वेदो के वही उत्पादक थे । ऐसे महात्मा—ऐसे तपस्वी—को सुख-पूर्वक आसन पर आसीन देख कर युधिष्ठिर के मन मे यह बात आई कि क्या कारण है जो इन्होंने अकस्मात् यहाँ इतनी दूर वन मे आकर मुझे दर्शन दिया । अतएव इसका कारण पूछने के लिए वे बोले—

भगवन्, आप के दर्शन पुण्यवान् ही पुरुषो को होते हैं । जिन लोगो ने यज्ञ आदि दुष्कर धर्म्मानुष्ठान करके बहुत सा सुकृत नहीं कमाया उन्हे आपका दर्शन सर्वथा असम्भव है । आपके दर्शनो से अभीष्ट मनोरथों की सिद्धि होती है और बुद्धि का सारा रजोगुण दूर हो जाता है । मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ जो मुझे आपकी यह दर्शन-रूपिणी सम्पत्ति आज अकस्मात्—वारिद-विहीन व्योम से अतर्कित वृष्टि के सदृश—प्राप्त हो गई। मैं आज सच मुच ही कृतार्थ हो गया । आज तक मैंने यज्ञ आदि जितने पुण्यकारक कार्य किये थे उन सबका फल मुझे मिल गया । ब्राह्मणो ने मुझे समय समय पर जो आशीर्वाद दिये थे वे भी आज सत्य सिद्ध हो गये । आपने अपने आगमन से मेरी प्रतिष्ठा बहुत अधिक बढ़ा दी । जितना आदर और जितना सत्कार आज तक ससार में कभी किसी को नहीं मिला उतने ही आदर और उतने ही सत्कार का पात्र आज मैं हो गया। आपके आगमन से मैं त्रिलोकी की दृष्टि

में आदरणीय हो गया। आपका यह आगमन ऐसा वैसा नहो। इसे मैं समस्त सत्कर्म्मों का फल समझता हूँ। मुझे तो आपने अपने दर्शन देकर अत्यन्त ही कृतकृत्य कर दिया। ब्रह्माजी का दर्शन जैसे कभी व्यर्थ नहीं जाता वैसे ही त्रिलोक-पूज्य और सर्व-श्रेष्ठ आपका भी दर्शन कभी व्यर्थ नहीं जा सकता। जिसे आपका दर्शन प्राप्त हो जाता है उसकी सम्पत्ति दिन-दूनी रात-चौगुनी बढती है, उसके पातकों का जड से नाश हो जाता है; उसका सब तरह कल्याण होता है, उसकी कीर्त्ति दिग्दिगन्त मे फैल जाती है। इतना ही नहीं, आपके दर्शन से और भी न मालूम क्या क्या फल मिलता है। पीयूपवर्षी चन्द्रमा को देखने से भी जितनी शान्ति मेरे नेत्रों को कभी नहीं हुई उतनी आज आपके दर्शनों से हुई है। मेरे नेत्रों को जिस तरह आपके दर्शनों से आनन्द प्राप्त हुआ है उसी तरह मेरे मन को भी प्राप्त हुआ है। मेरा अशान्त चित्त आज आपको देख कर बहुत कुछ शान्त और सुखी हो गया। स्वजनों के वियोग से जो असह्य दुःख मुझे अब तक हो रहा था उसे भी मैं आपके दर्शनों से भूल सा गया।

ऋषिवर्य्य, आप तो सर्वथा निःस्पृह हैं। आपको किसी भी वस्तु की चाह नहीं। यदि चाह हो भी तो मेरे सदृश परतन्त्र पुरुष के पास इस समय आपके देने योग्य धरा ही क्या है! परन्तु, फिर भी, मुझे आपसे यह पूछने का साहस हो रहा है कि आपके आगमन का कारण क्या है? यह मैं आपको कुछ देने के इरादे से नहीं पूछता। मुझे किसी तरह आपकी कल्याणकारिणी वाणी सुनने को मिले, इसीलिए मैं आपसे ऐसा प्रश्न करता हूँ।

आपका मङ्गल-मूल भाषण सुनने की इच्छा ही मुझे यह प्रश्न करने के लिए प्रेरित कर रही है।

उदार-हृदय युधिष्ठिर की ऐसी युक्तिपूर्ण और परम रमणीय उक्तियाँ सुन कर व्यासजी क्षण भर चुप रहे। उनकी मधुर और गम्भीर गिरा ने व्यासजी को प्रसन्न कर दिया। अतएव उनके मन मे यह बात आई कि ऐसे धर्म्मनिष्ठ और सज्जन राजा को किस प्रकार उसके शत्रुओं पर विजय-प्राप्ति हो सकती है। यह सोच कर उन्होने युधिष्ठिर के प्रश्न का इस प्रकार उत्तर देना आरम्भ किया—

युधिष्ठिर, बन्धु-बान्धवो के विषय मे समान-वृत्ति होना मनुष्य का परम धर्म है। जिसकी यह इच्छा हो कि इस लोक और पर-लोक मे भी उत्तम कीर्त्ति मिले, साथ ही अपना कल्याण भी हो, उसे चाहिए कि वह अपने बन्धुओ और आप्त जनों के साथ सदा ही समता का व्यवहार करे, भेद भाव को कभी पास न आने दे। मेरे सदृश तपस्वियों के लिए तो इस तरह का व्यवहार करना और भी आवश्यक है। तपस्वियों का तो कर्त्तव्य ही है कि वे सबको समदृष्टि से देखें। तथापि तुम्हारे दया-दाक्षिण्य आदि गुणों ने मेरे हृदय को बलात् अपने वश में कर लिया है। तुम्हारे लोकोत्तर गुणों से मेरा मन तुम्हारी ओर अत्यधिक आकृष्ट हो गया है। साधारणत ऐसा न होना चाहिए था, क्योंकि तपस्वी सम-दृष्टि होते हैं। परन्तु इस सम्बन्ध मे कभी कभी अपवाद भी देखा जाता है। मुमुक्षु, अर्थात् मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा रखने वाले, पुरुष अत्यन्त ही विरक्त होते हैं। उनकी आसक्ति किसी भी वस्तु-विशेष

पर नहीं देखी जाती। तथापि ऐसे निःस्पृहजन भी साधुत्रों और सज्जनों के पक्षपाती हो जाते हैं। इससे सूचित होता है कि सज्जनों का पक्षपात करने से संसार-त्यागी तपस्वियों पर भी दोष नहीं आता। मैं जो तुम्हारे कल्याण की विशेष चिन्ता कर रहा हूँ, इसका यही कारण है। तुम्हारा हितचिन्तन करने से मुझे दोष नहीं स्पर्श कर सकता।

राजा, क्या तुम धृतराष्ट्र के पुत्र नहीं? अपने शौर्य और शान्ति आदि गुणों में क्या तुम दुर्योधन से बढ़ कर नहीं? फिर भी धृतराष्ट्र ने तुम्हे निकाल बाहर किया! इस अन्याय का कहीं ठिकाना है! विषयाभिलाष सचमुच ही अनर्थ-जनक है। जब मनुष्य के मन में यह कामना उत्पन्न हो जाती है कि अकेले मुझे ही सारे सुख और सारे ऐश्वर्य भोगने को मिलें, तब वह अवश्य ही अन्याय करने लगता है। तब उसकी वह अनुचित कामना उसके हृदय में बलात् अविवेक उत्पन्न कर देती है। वह अविवेक ही उससे नीच काम कराता है। धृतराष्ट्र इस बात को जानता है कि जो काम मैं करना चाहता हूँ उसके सिद्ध होने में सन्देह है। उसे इस बात का भरोसा नहीं कि मैं पाण्डवों को राज्य-च्युत करने में समर्थ हूँगा। तिस पर भी वह कर्ण आदि की कुमन्त्रणा पर विश्वास करता है—तिस पर भी वह इन लोगों की सलाह को अच्छी समझता है और तदनुकूल व्यवहार भी करता है। फिर भला ऐसे मूढ़ मनुष्य का अभीष्ट क्यों सिद्ध होने लगा? दुर्जनों की सलाह कार्य्य-सिद्धि की सब से बड़ी बाधक है। बाधक ही नहीं, वह तो मनुष्य का समूल नाश करनेवाली विपदाओं की जन्मदात्री

है। शठो की सङ्गति से मनुष्य का नाश हुए बिना नही रहता। अतएव धृतराष्ट्र का भी नाश तुम निश्चित ही समझो।

युधिष्ठिर, तुम्हारे शत्रुओं ने भरी सभा मे अनर्थ किया। उन्होंने दु:शासन के द्वारा द्रौपदी के केशो का कर्षण कराया! यह बड़ा भारी अधर्म-कार्य हुआ। परन्तु तुम्हारी शान्ति और सहिष्णुता को तो देखो। तुमने यह सारा अन्याय सह लिया; पर धर्म न छोड़ा, शान्ति न छोडी, प्रतिज्ञा न तोडी। दु सह विपत्तियाँ तुमने सही, पर स्तुत्य और अविनाशी गुणों पर अपना अनुराग अटल रक्खा। तुम धन्य हो! अत्यन्त शान्त, और दूसरों को कभी स्वप्न मे भी सन्ताप न पहुँचाने वाले, तुम्हारे भी साथ शत्रुओं ने छल-कपट किया! पर इससे तुम्हारी विशेष हानि नही। हानि उन्ही लोगों की है। उनके इस कपट-पूर्ण वर्त्ताव से उन्ही का नाश होगा, तुम्हारा नही। मैं तो समझता हूँ कि तुम्हारे साथ छल करके उन लोगो ने एक प्रकार से तुम्हारा उपकार ही किया। क्योकि उनके दुर्व्यवहार के कारण ही तुम्हारी विमल बुद्धि और तुम्हारे शील स्वभाव का यथार्थ ज्ञान लोगों को हो गया।

इसमे सन्देह नहीं कि तुम्हे अपने पराक्रम से ही खोया हुआ राज्य फिर प्राप्त होगा। तथापि तुम्हे यह न भूलना चाहिए कि तुम्हारे शत्रुओ का पक्ष ऐसा वैसा नही। वह खूब प्रबल है। बल-वीर्य, शस्त्रास्त्र और सैन्य-संग्रह मे वे लोग तुमसे बढे चढे हैं। अतएव तुम्हे अपना बल बढ़ाने का उपाय अवश्य करना चाहिए। क्योंकि, युद्ध मे जीत उसी की होती है जो अधिक बलवान् होता है। वहाँ शान्ति और सदाचरण की दाल नही गलती।

भीष्म-पितामह तुम्हारे शत्रुओं के ही पक्ष में हैं । वे अप्रतिम योद्धा हैं । एक दफ़ नहीं, इक्कीस दफे क्षत्रियों का नाश करने वाले परशुरामजी से ही उन्होंने शस्त्र-विद्या सीखी है । अतएव इस विद्या मे परशुरामजी उनके गुरु हुए । पर भीष्म के प्रताप को देखो कि जब विवश होकर उन्हे परशुरामजी के साथ युद्ध करना पडा तब उन्होंने उनके भी छक्के छुडा दिये । गुरु होकर भी उन्हे अपने शिष्य भीष्म से हार खानी पडी । हार जाने पर कही परशुरामजी की समझ मे यह बात आई कि शौर्य्य आदि गुणो के उत्कर्ष के लिए अधिकारी की आवश्यकता होती है । शूर सभी होते हैं, पर सभी एक सा पराक्रम प्रकट नहीं कर सकते । जो अधिकारी होता है वही लोकोत्तर शौर्य्य प्रकट करने में समर्थ होता है । सो भीष्म-पितामह अप्रतिम पराक्रमी हैं । उनको मारने वाला संसार मे कोई है ही नहीं । जब वे मरेंगे तब अपनी ही इच्छा से मरेंगे । औरों की तो बात ही नही, प्रत्यक्ष कृतान्त भी उनका बाल नहीं बाँका कर सकता । जब उसे यह ख़याल आता है कि भीष्म को मारने की शक्ति मुझ में नहीं तब उसे बड़ा खेद होता है । तब वह गलित-गर्व हो जाता है और उसे ऐसा मालूम होने लगता है जैसे किसी शत्रु से उसने प्रत्यक्ष हार खाई हो । ऐसे अद्वितीय पराक्रमी भीष्म-पितामह जब हाथ में धनुर्बाण लेकर युद्ध के मैदान मे उतर पड़ेंगे तब ऐसा कौन है जिसका कलेजा भय से न काँप उठे ?

भीष्म को जाने दो । आचार्य द्रोण भी तो अलौकिक रण-निपुण हैं । नख से शिखा पर्यन्त क्रोध से प्रदीप्त होकर जब वे संख्यातीत शरो की वृष्टि करते हैं तब ऐसा मालूम होता है जैसे

प्रलय-कालीन अग्नि, दूर दूर तक फैली हुई अपनी शिखा-रूपिणी प्रज्वलित जिह्वाओं से, समग्र ब्रह्माण्ड को भस्म कर डालने पर उतारू है। द्रोण की ऐसी बाण-वर्षा का निवारण करने योग्य तुम्हारे पक्ष मे है कौन ? कोई हो तो बताओ। मुझे तो कोई नहीं देख पड़ता।

द्रोण का न सही, कर्ण का सामना करने वाला भी तो कोई नही। भीष्म की तरह कर्ण ने भी परशुराम को प्रसन्न करके उनसे अस्त्र-विद्या सीखी है। वह भी जिस समय कुपित होकर शस्त्र हाथ में लेता है उस समय उसके सामने आते ही विपक्षी का धैर्य छूट जाता है। और की बात जाने दो, उसके कोपारुण नेत्र देख कर प्रत्यक्ष काल भी भयभीत हो उठता है—उसे अत्युग्र और अपरिचित भय आ घेरता है। जब काल की यह दशा है तब औरों की क्या कथा ?

इन्ही बातो का विचार करके और तुम्हारे पक्ष को निर्बल समझ कर मैं आज तुम्हारे पास उपस्थित हुआ हूँ। तुम्हारे उत्कर्ष की सिद्धि के लिए मैं तुम्हे एक मन्त्र-विद्या देना चाहता हूँ। तुमको मैं इस विद्यादान का सर्वथा पात्र समझता हूँ। इसे तुम कोई साधारण विद्या न समझो। इसकी कृपा से ही तुम्हारा मनोरथ सफल होगा। इसके प्रभाव से इन्द्र आदि महा पराक्रमी देवता तुम्हारे अनुकूल हो जायँगे और तुम पर कृपा करेंगे। यह वह विद्या है जिसके प्रसाद से कपिध्वज अर्जुन अत्यन्त कठिन तपस्या करने मे समर्थ होगा और अन्त मे उसे विजय के अपूर्व साधन पाशुपतास्त्र की प्राप्ति होगी। वही अस्त्र भीष्म, द्रोण, कर्ण

आदि कौरव-पक्षीय वीरों का विनाश करने में तुम्हारा सहायक होगा।

अपने ऊपर इतनी कृपा करने वाले महामुनि व्यासजी के मुख से यह बात सुन कर युधिष्ठिर ने कहा—"अर्जुन, उठो; मुनिवर से शस्त्रास्त्र-सम्बन्धिनी मन्त्र-विद्या प्राप्त करो।" इस आज्ञा को शिरसा धारण करके अर्जुन तत्काल ही उठ खड़े हुए और शिष्य के सदृश नम्रतापूर्वक व्यासजी के पास जा बैठे। सावधान होकर उनके बैठ जाने पर, प्रात:कालीन सूर्य-बिम्ब के सदृश कोमल तेज धारण करने वाले ऋषीश्वर के मुख से वह अग्निस्फुलिङ्गवत् देदीप्यमान मन्त्र-विद्या निकल कर अर्जुन के मुख मे इस तरह प्रविष्ट हो गई जिस तरह कि बाल-सूर्य की किरणमाला उसके बिम्ब से निकल कर कमल में प्रवेश कर जाती है।

मन्त्र विद्या का दान करके महामुनि व्यास ने उसकी ध्यानविधि भी अर्जुन को सिखा दी। ऐसी शिक्षा के लिए बहुत समय दरकार होता है। परन्तु व्यासजी ने अपने तपोबल के प्रभाव से अर्जुन को वह विधि तत्काल ही सिखा दी। इसका एक कारण और भी था। अर्जुन ऐसे वैसे शिष्य न थे। वे औरों की अपेक्षा विशेष योग्य थे। इस कारण उन्हे वह विधि सीखने मे देर न लगी। महर्षि की इस कृपा के प्रभाव से अर्जुन को प्रकृति, महत्, अहङ्कार आदि चौबीसों तत्वों का ज्ञान तुरन्त ही प्राप्त हो गया। फल यह हुआ कि जन्म के अन्धे को दृष्टिप्राप्ति होने से जिस तरह उसकी आँखें अकस्मात् खुल जाती हैं उसी तरह तत्व-ज्ञान होने से अर्जुन के ज्ञान-चक्षु अकस्मात् खुल से गये। उन्हें दिव्य दृष्टि सी प्राप्त हो गई।

व्यासजी अर्जुन की भव्य आकृति और भाग्योदय-सूचक मुख-चर्य्या देख कर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने जान लिया कि यह जैसा उत्साहशील है वैसा ही इसका आचरण भी है। अतएव जिस काम के लिए मैं इसकी योजना करना चाहता हूँ उसे करने के लिए यह सब तरह योग्य है। इसमे न उत्साह ही की कमी है, न उद्योग ही की। अतएव उन्हे निश्चय हो गया कि विजय-प्राप्ति के लिए तप.साधन करने मे यह अवश्य ही समर्थ होगा। इस प्रकार मन मे निश्चय करके वे बोले—

बेटा, मैंने जो यह मन्त्र-विद्या तुम्हे बताई और उसके साथ ही जो यह ध्यान-विधि सिखाई उसके बल से—उसकी साधना से—तू अपने पराक्रम की वृद्धि कर। जहाँ पर तू इस मन्त्र की साधना करे, वहाँ किसी को कदापि न आने देना। हाथ से हथियार कभी न दूर करना। सशस्त्र होकर ही अध्ययन, उपवास और स्नानादि कार्य्य करना। मुनिजनोचित आचरण करना। पर शस्त्र हाथ से न रखना। मेरी सिखाई हुई विधि से इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए तुझे बड़ी दुस्तर तपस्या करनी पडेगी। इतनी कठिन तपस्या के लिए रमणीय शिखरो वाला इन्द्रकील नामक पर्वत तेरे लिए बहुत उपयुक्त होगा। तुझे वही जाना पड़ेगा। मैं तेरे साथ एक यक्ष को कर दूँगा। वह तुझे एक क्षण मे उस पर्वत पर पहुँचा देगा। वहाँ जाकर जब तक महेन्द्र तुझ पर प्रसन्न न हो तब तक तपश्चर्य्या से विरत न होना।

इस प्रकार का उपदेश देकर महर्षि व्यास वहीं अन्तर्धान हो गये। मुनिवर के अन्तर्धान होते ही कुबेर का सेवक एक यक्ष

तत्काल ही अर्जुन के सामने आकर खड़ा हो गया। वह यक्ष क्या आया मानो यक्ष के रूप मे व्यासजी का मूर्त्तिमान् आदेश ही आकर उपस्थित हो गया।

यक्ष ने आकर अर्जुन को सादर प्रणाम किया। अर्जुन स्वभाव ही से मधुर-भाषी थे। अतएव उन्होने उसके साथ प्रेम-पूर्वक सम्भाषण करके उसे प्रसन्न कर दिया। फल यह हुआ कि यक्ष के मन मे अर्जुन के विषय मे मित्रवत् विश्वास उत्पन्न हो गया। उसे ऐसा मालूम होने लगा कि पूर्व-परिचय न होने पर भी मानो अर्जुन उसके परिचित मित्र हैं। ऐसा होना ही चाहिए था। बात यह है कि सज्जनो की सङ्गति से मनुष्य के हृदय मे शीघ्र ही विश्वास उत्पन्न हो जाता है।

और स्थानो मे उदय होने के लिए सूर्य्य जब सुमेरु-पर्वत के कान्तिमान् लता-मण्डपों का उल्लङ्घन कर जाता है तब अन्धकार, उन पीछे छोड़े गये लता-मण्डपों पर, धीरे धीरे अपना अधिकार जमा लेता है। अभ्युदय की प्राप्ति के लिए इन्द्रकील-पर्वत पर जाने के इरादे से अर्जुन के तैयार होते ही यही दशा उनके भ्रातृ-चतुष्टय की हुई। अर्जुन का वियोग निकट आया जान, युधिष्ठिर आदि उनके चारों तेजस्वी भाइयों को अर्जुन के भावी वियोग-जन्य शोक ने अभिभूत कर दिया। उन पर शोकान्धकार छा गया। वे मूर्छित से हो गये। बड़ी देर मे उनकी बुद्धि ठिकाने आई। प्रकृतिस्थ होने पर जब उन्होने इस बात का विचार किया कि जिस काम के लिए अर्जुन जा रहे हैं वह कितने महत्व का है, तब उनका वह वियोग-जन्य दुःख प्रायः दूर हो गया। परन्तु अर्जुन पर उनके चारो भाइयों

काले काले नेत्रों पर आँसू छा रहे थे। अतएव आँखें बन्द करके उन आँसुओं को गिरा देने के पहले उसके लिए अर्जुन को अच्छी तरह देख लेना असम्भव था। परन्तु ऐसे मौक़े पर अश्रुपात करना शास्त्र मे मना है—ऐसे अवसर पर आँसू गिराना अमङ्गल-जनक समझा जाता है। इसीसे द्रौपदी ने आँखे बन्द करके उन्हे अश्रु-रहित करना उचित न समझा। जिस तरह बना उस तरह उसने अपनी उन्ही अश्रुपूर्ण आँखो से अर्जुन की तरफ़ देखा। अर्जुन पर द्रौपदी की उस निष्कपट-प्रेम-रस से आर्द्र दृष्टि का बडा असर पड़ा। उसकी उस स्वाभाविक, सुन्दर और प्रीतिसूचक दृष्टि ने अर्जुन का हृदय उच्छ्वसित कर दिया। उन्होने उसकी उस चितवन को पाथेय समझ कर अपनी हृदयानन्द रूपी अञ्जलि से सादर ग्रहण सा कर लिया। विदेश जाने के लिए तैयार पति को उसकी भार्य्या उसे, निष्काम बुद्धि से तैयार करके, रास्ते के लिए, जैसे फलाहार आदि देती है वैसे ही द्रौपदी ने मानो अपनी प्रेम-रसार्द्र दृष्टि को फलाहार ही के सदृश अर्जुन को अर्पण किया और अर्जुन ने उसे प्रसन्नतापूर्वक ले लिया।

बेचारी द्रौपदी की दशा उस समय बहुत ही करुणा जनक हो गई। अर्जुन के वियोग-जन्य दुःख के कारण उसका अन्तःकरण इस तरह कलुषित हो उठा जिस तरह कि जङ्गली हाथी के मथने से ग्रीष्म-कालीन नदी कलुषित—गँदली—हो जाती है। उसका धैर्य्य छूट गया। उसके मुख पर शोक-सूचक चिह्न दिखाई पड़ने लगे। अश्रुपात का स्तम्भन करने और दुःख से अत्यन्त अभिभूत होने के कारण उसका कण्ठ भर आया। अतएव बड़े कष्ट से, बहुत

ही चीण स्वर मे, उसने इस प्रकार अर्जुन से कहना आरम्भ किया—

तुमसे मैं कहूँ तो क्या कहूँ ? मुझसे कुछ कहते ही नही बनता । शत्रुओ के कपटरूपी कीचड़ मे हम लोगो की सारी योग्यता डूब गई है । उस योग्यता और मनस्विता को ही सब से श्रेष्ठ सम्पत्ति समझ कर उसे उस कीचड़ मे निकाल लेना ही तुम्हारा सबसे बडा कर्त्तव्य है । अतएव जिस तरह हो सके उस तरह उसका उद्धार करने के लिए तुम्हें चेष्टा करनी चाहिए। जब तक तुम्हे तपस्या के प्रभाव से इतनी सिद्धि न प्राप्त हो जाय कि उस सिद्धि के द्वारा तुम हम लोगों के दु ख का समूल नाश कर सको तब तक हमारे वियोग से होने वाले दु ख से तुम अपना मन उद्विग्न न होने देना । तबतक तुम धैर्य्य धारण-पूर्वक तपश्चर्य्या में लगे ही रहना; उसमे विघ्न न आने देना । हमारे वियोग से यदि तुम शोकाकुल हो जाओगे तो तुम्हारे मुनि-व्रत मे बाधा आने का डर है ।

जो लोग अपने इष्ट-साधन की प्राप्ति के लिए प्रसन्नता-पूर्वक यथाविधि तपश्चर्य्या करते हैं उन्हे अवश्य ही सिद्धि प्राप्त होती है । तपस्या चाहे कीर्ति-सम्पादन के लिए की जाय, चाहे सुख-सम्पादन के लिए की जाय, चाहे कोई अपूर्व काम करके ससार मे श्रेष्ठत्व प्राप्त करने के लिए की जाय, साधक को सिद्धि उसी तरह प्राप्त हो जाती है जिस तरह कि अनुरक्त स्त्री अपने प्रेमपात्र को प्राप्त हो जाती है । बात इतनी ही है कि साधना सम्पूर्ण होने तक मनुष्य उसमे दृढ़ता-पूर्वक लगा रहे और अपने अन्तःकरण में

किसी प्रकार का क्षोभ न आने दे। सिद्धि-प्राप्ति की यही कुञ्जी है।

अर्जुन, संसार मे पराभव सब दु खो से अधिक दुःसह है। केशाकर्षण आदि के रूप मे शत्रुओं ने हमारा जो पराभव—जो अपमान—किया है उससे बढ़ कर सन्ताप-जनक बात और कोई हो हो नही सकती। ब्रह्मा ने क्षत्रियो को लोक-रक्षा ही के लिए उत्पन्न और इसी लिए उन्हे बल-वीर्य्यरूपी बहुमूल्य धन दिया है। अपमान इस धन का सर्वथा हरण करनेवाला है। क्षत्रियों का सबसे बडा काम विजय प्राप्त करना है। विजय-प्राप्ति ही उनकी प्रधान उपजीविका है। ऐसे तेजस्वी क्षत्रियों के लिए अपने क्षात्रकुल का अभिमान प्राणों से भी अधिक प्यारा होता है। परन्तु शत्रुओं द्वारा किया गया पराभव और अपमान उस क्षात्रकुल के अभिमान का समूल नाश करनेवाला है। इसे तुम मत भूलना।

जिस समय भरी सभा मे दुर्योधन आदिक के द्वारा मेरा अपमान हुआ उस समय, याद है, देश-देशान्तर तक के नरेश वहाँ बैठे थे। लज्जा से उनके सिर नीचे हो गये थे। बड़े कष्ट से वे इस निन्द्य कार्य्य की उपेक्षा कर सके थे। वे उपेक्षा करते भी नहीं, परन्तु उन्होंने शायद मन मे यह समझा कि यह अनार्य्य कर्म्म इन्हीं के बन्धु-बान्धवों के द्वारा हुआ है। अतएव हम लोग बीच मे पड़ कर क्यो बखेड़ा करे? यह अपमान तो ऐसा है कि यदि इसका वर्णन सदा-सत्यवादी और पूजनीय पुरुष करें तो भी दूरस्थ लोगों को उनके कहने पर सहज ही विश्वास न आवे। उन्हें यह संशय हो कि इस तरह का जघन्य कार्य्य तो ससार मे हो ही

नहीं सकता। हमारे इस ऐसे दारुण अपमान ने हमारे दिगन्त-प्राप्त और सर्वत्र छत्र-तुल्य छाये हुए विमल यश का अत्यन्त ही सङ्कोच कर डाला है।

जो काम केवल पराक्रम से सिद्ध होते हैं उनकी सिद्धि के लिए सदा सतर्क रहना चाहिए। ऐसे कामो मे असावधानता करने से सारी पूर्वार्जित कीर्ति मिट्टी मे मिल जाती है। दिन का पिछला भाग जिस तरह अस्तोन्मुख सूर्य के बढे हुए तेज को बहुत ही कम कर देता है उसी तरह असावधानता के कारण प्राप्त हुआ पराभव भी पूर्वार्जित कीर्त्ति-कलाप का अत्यन्त ही कम कर देता है। शत्रुओ के द्वारा हमे जो दारुण अपमान सहना पड़ा है उसका तो स्मरण मात्र अत्यन्त दु खदायी है। उसका प्रत्यच्च अनुभव कितना दु खदायी है, इसकी तो कल्पना ही नही हो सकती। इस मर्म्मकृन्तक अपमान का घाव अभी तक वैसा ही बना हुआ है। हॉ, कालान्तर मे शायद वह कुछ सूखने के लक्षण दिखाता। परन्तु तुम्हारे भावी वियोग-जन्य दुःख के कारण वह घाव अब तो फिर से नया होना चाहता है।

अर्जुन, तुम तो बडी ही विपन्न दशा को प्राप्त हो गये। अपने क्षत्रिय-धर्म्म का अभिमान छोड़ देने से—टूटे हुए दॉत वाले हाथी की तरह—तुम असह्य दुःख सह रहे हो। शत्रुओं के पराक्रम के सामने तुम्हारा तेज बिलकुल ही क्षीण हो गया है। एक तो असह्य दुःख की प्राप्ति, दूसरे कीर्ति-कलाप का नाश। इन बातों ने तुम्हे कुछ का कुछ कर डाला है। शरद्दतु के मेघ मण्डल से व्याप्त हुए दिन के पहले पहर के सदृश तुम तो इस समय अच्छी तरह पह-

चाने भी नहीं जाते। शस्त्रास्त्र से जो काम लेना चाहिए वह काम तुमने नहीं लिया। अतएव तुम्हारे ये शस्त्र अब तुम्हे शोभा नहीं देते। इनका सञ्चालन न करने के कारण तुम तो इस समय लज्जित हुए भीरु पुरुष से मालूम हो रहे हो। यश का नाश हो जाने से तुम आज कल उस सागर की सदृशता को पहुँच गये हो जो पहले जल से परिपूर्ण था, पर अब जिसमे बहुत ही थोड़ा जल रह गया है। तुम्हारी वह पहली आकृति कहाँ और आज की आकृति कहाँ! अब तो तुम्हारा रूपही कुछ और हो गया है। ज़रा मेरे इन केशो की तरफ तो आँख उठा कर देखो! दु:शासन के द्वारा किये गये कर्षण-रूप रज से ये मैले हो रहे हैं और विधवा के केशों की तरह बिखर रहे हैं। भगवान् के सिवा अब इनका कोई नाथ नहीं—कोई त्राता नहीं। क्योंकि भगवान् ही अनाथो के नाथ हैं। दु:शासन के हाथ से अपवित्र हुए इन अनाथ केशों ने तो तुम्हारे बल और पराक्रम को कलङ्कित सा कर दिया है। धर्म्म-राज के आदेश-रूपी प्रतिबन्ध के कारण जिसने मेरे केश-कलाप की यह दशा कर डाली क्या तुम वही पहले के धनञ्जय हो? यदि हो तो मुझे भरोसा है कि तुम अब इनकी और अधिक उपेक्षा न करोगे। इन्हे फिर इनकी पूर्व स्थिति पर पहुँचा दोगे।

जानते हो, क्षत्रिय किसे कहते हैं? क्षत्रिय वही है जो सज्जनो की रक्षा करे। धनुष वही है जिससे शर सन्धान करने का काम लिया जाय। जो मनुष्य "क्षत्रिय" और "धनुष," इन दोनों शब्दों का यह अर्थ न ग्रहण करके उनकी योजना किसी विपरीत अर्थ में करता है वह व्युत्पत्ति-रहित मनुष्य की व्याकरण-विरुद्ध वाणी की

तरह अपनी वाणी को दूषितमात्र करता है। यदि तुम इन दोनों शब्दो का ठीक अर्थ समझते हो तो इस दोष से बचने के लिए तुम्हे जी-जान से चेष्टा करनी चाहिए और मेरे केशो की यह गति करने वालो को उचित दण्ड देना चाहिए।

अर्जुन, तुम्हारे शौर्य्य आदि गुणो का इस समय प्रायः वही हाल है जो मेरा है। वे भी मेरी सरूपता को प्राप्त से हो गये हैं। वे भी मेरे सदृश दु खो का अनुभव सा कर रहे हैं। उनका वह पहले का तेज नही। अब तो उनका नाम मात्र रह गया है—उनकी सत्तामात्र शेष है। जिस तरह मैं इस बात की अपेक्षा करती हुई किसी तरह जी रही हूँ कि किसी दिन तो तुम्हारा अभ्युदय होगा उसी तरह वे भी तुम्हारे ऐश्वर्य्य और अभ्युदय की प्रतीक्षा करते हुए किसी तरह अपने अस्तित्व की रक्षा कर रहे हैं। खैर, जो कुछ होने को था, हो गया। ईश्वर करे, बिगडी बात अब भी बन जाय। असावधानता के कारण सिंह की गरदन के बाल जैसे हाथी नोंच फेकता है वैसे ही असावधानता के कारण तुम्हारी यह दुर्गति तुम्हारे शत्रुओं ने कर डाली है। इसका उपाय अब तुम्हारे ही हाथ है। दिन की शोभा जिस तरह दीप्ति के लिहाज़ से सूर्य्य की शरण जाती है उसी तरह इस कार्य की गुरुता भी योग्यता के लिहाज़ से तुम्हारी शरण है। तुम्ही यह काम करने योग्य हो। तुम्हारी योग्यता देख कर ही राज्य-लक्ष्मी तुम्हे प्राप्त होगी। जो पुरुष अपने बल-विक्रम आदि की सूचक क्रियाये करने मे सब से अधिक योग्यता दिखाता है वही सब से अधिक सम्माननीय भी समझा जाता है। सभ्य समाजों मे जब पूजनीय पुरुषो की गिनती होती है

तब ऐसे ही पुरुष को अद्वितीयत्व प्राप्त होता है। उसी का नाम सबसे पहले लिया जाता है। दूसरा, तीसरा नहीं, उसे सदा पहला ही नम्बर मिलता है। मुझे विश्वास है, तुम अब ऐसे ही लोकातिशायी काम करके अपने को संसार मे अद्वितीय सिद्ध कर दोगे।

पार्थ, तुम विजय-प्राप्ति के लिए उग्र तपश्चर्य्या करने जा रहे हो। अतएव तुम हम लोगों से जुदा हो रहे हो। तुम्हारा हम पर अत्यन्त स्नेह है। इस कारण, बहुत सम्भव है, तुम्हारे हृदय मे हमारे सम्बन्ध मे दुष्ट कल्पनाओ की उत्पत्ति हो। बहुत सम्भव है, तुम यह सोचो कि तुम्हारी अनुपस्थिति मे, न मालूम, हमारी क्या दशा हुई हो। ऐसा होना सर्वथा स्वाभाविक है। जो जिसका प्यार करता है वह उसके विषय मे अनिष्ट कल्पनाये करके दुखी हुआ ही करता है। पर, मेरी प्रार्थना है कि तुम हम लोगो के सम्बन्ध मे इस प्रकार की अनुचित कल्पनाओ को कभी अपने मन मे न आने देना। जिन दुर्वासनाओ और जिन पातकों के कारण इस प्रकार की अनुचित कल्पनायें उत्पन्न होती हैं भगवान् देवेन्द्र उनका नाश करें।

जिस पर्वत पर तुम तपश्चरण करने जा रहे हो वहाँ विघ्न-बाधाओं का कुछ भी डर नहीं। वह प्रदेश सब तरह कल्याण-कारक है। तथापि तुम्हे वहाँ बहुत समय तक अकेले ही रहना है। तुम्हारे साथ तुम्हारा कोई भी कुटुम्बी नहीं। अतएव बहुत सँभालकर रहना। कभी किसी प्रकार की असावधानता न होने देना। बात यह है कि मोह और मत्सर तथा राग और द्वेष से

दूषित स्वभाव वाले लोगों का मन कभी कभी साधुओं का भी अपकार कर बैठता है । इससे मैं तुम्हे सचेत किये देती हूँ । जहाँ तक हो सके व्यासजी की आज्ञा के अनुसार तपस्या करके शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त करना । उसकी प्राप्ति करके ही चुप न हो जाना । उसकी सहायता से हमारे मनोरथ भी पूर्ण करना । तपस्या समाप्त होते ही लौट पडना । देर न लगाना । लौट आने पर मैं तुम्हारा प्रेमपूर्वक स्वागत करूँगी । उस समय दृढालिङ्गनपूर्वक तुमसे मिलने के लिए मैं अभी से उत्कंठित हो रही हूँ ।

द्रौपदी की उत्तेजक वक्तृता सुन कर अर्जुन का हृदय क्षुब्ध हो उठा । उन्हे ऐसा जान पडने लगा जैसे शत्रुओ ने उनका आज ही पराभव किया हो । उनका अपमान-जन्य दु.ख एकदम नया हो गया । इस कारण—उत्तर दिशा को जाने पर अत्यन्त तप्त हुए सूर्य्य के समान—क्रोध से वे जल-भुन गये । पुरानी बातों का फिर स्मरण होने के कारण उनके संताप की सीमा न रही । उन्हे कुछ ऐसा मालूम होने लगा जैसे उनके शत्रु दुर्योधनादि उस समय उनके सामने ही खड़े हो ।

इतने मे पाण्डवो के पुरोहित धौम्य ने मन्त्रो से पवित्र किये गये शस्त्रास्त्र लाकर अर्जुन के सामने रख दिये । अर्जुन ने उन्हे सादर उठा लिया । वे यद्यपि स्वभाव ही से शान्त और रम्यरूप थे, तथापि—परहिसा आदि क्रियाओ में प्रयुक्त किये जाने के कारण स्वभाव ही से शान्त मन्त्र की तरह—अत्यन्त उग्र मालूम होने लगे । मन्त्र यद्यपि स्वभाव से भयङ्कर नही होता, तथापि मारण आदि प्रयोगों मे वह अत्यन्त भयङ्कर हो जाता है । उसी तरह

द्रौपदी की उत्तेजक बातें सुनने और अभिमन्त्रित शस्त्रास्त्र ग्रहण करने पर शान्त और सुशील अर्जुन भी बहुत ही उग्र और भीषण भासित होने लगे।

अर्जुन ने अपने गाण्डीव नामक धनुष को भी धारण कर लिया। यह वही धनुष था जिसके आकर्षण से शत्रुओं का प्रताप कुण्ठित हुए बिना कभी नही रहा और जिसकी प्रत्यञ्चा की टङ्कार तथा बाण छोडने की क्रिया सारे ससार मे प्रसिद्ध है। धनुष के सिवा उन्होने दो तरकस भी अपने साथ लिये। इन तरकसो के भीतर तीक्ष्ण धार वाली एक एक तलवार भी थी। अर्जुन के इन तरकसों पर तब तक शत्रु की दृष्टि एक बार भी न पडी थी। और, पडती कैसे? युद्ध से भागने का प्रसङ्ग कभी अर्जुन को आया ही नहीं। वे उन तरकसों को छोड़ कर कभी भागते तब न वे शत्रुओं के हाथ लगते और वे उन्हे देखते। परन्तु ऐसा कभी हुआ ही नही। उनके धनुष का आकर्षण कभी निष्फल ही नही गया।

इसके बाद अर्जुन ने रत्न-खचित कवच धारण किया। वह कवच प्रकाशमान नक्षत्र-पुञ्जो से युक्त आकाश के मध्यभाग के सदृश उनके शरीर पर शोभायमान हुआ। खाण्डव वन जलाने के समय इन्द्र ने अपने वज्र की चोटों से अर्जुन के शरीर को जगह जगह छेद दिया था। उन घावों के निशान अब तक बने हुए थे। चमकता हुआ यह कवच धारण करने पर वे घाव इस तरह छिप गये मानों अर्जुन के मूर्त्तिमान यश से ही वे ढक गये हो।

इस प्रकार शस्त्रास्त्र से सज्ज होकर, कुबेर के सेवक यक्ष के साथ, अर्जुन वहाँ से चल दिये। यक्ष को पहाड़ी रास्ता अच्छी तरह

मालूम ही था। अतएव वह अपने जाने हुए सुरक्षित मार्ग से उन्हे ले चला। ज्यो ही अर्जुन ने प्रस्थान किया त्यो ही उन्हे जाता देख द्वैतवन के वासी ऋषि उनके वियोग-दु ख से व्यथित हो गये। थोड़ी देर तक वे लोग आँखे डबडबाये इकटक अर्जुन को देखते रहे।

अर्जुन के प्रयाण-समय मे बडे ही अच्छे शकुन हुए। आकाश मे होनेवाली दुन्दुभि-ध्वनि से सारी दिशायें गुञ्जायमान हो गई। देवताओ की की हुई पुष्प-वृष्टि से आकाश को अत्यधिक शोभा प्राप्त हुई। समुद्र ने भी अपने चञ्चल-तरङ्गरूपी हाथ तट तक फैला कर मुदित हुई मही का आलिङ्गन किया। आलिङ्गन क्या किया, मानो उसने पृथ्वी को इस खुशख़बरी की पहले ही से सूचना दे दी कि तेरा भार हलका होने मे अब विलम्ब नही।

---

## चौथा सर्ग।

हेमन्तवन से चल कर सब लोगो के प्यारे अर्जुन एक ऐसे प्रदेश मे जा पहुँचे जहाँ हस बोल रहे थे और जहाँ चारो तरफ़ की भूमि पके हुए धान्यों से सफ़ेद दिखाई दे रही थी। मीठे मीठे शब्द करने वाले हंस ही मानो उस भूमि-रूपिणी कामिनी की करधनी थी, और, पके हुए धान्य के कारण प्राप्त हुई पाण्डुता ही मानों उसके शरीर की काञ्चनी कान्ति थी। वह भूमि उस समय प्राप्त-यौवना स्त्री के सदृश मालूम हो रही थी। अतएव कलहसों के समान शब्द करने वाली करधनी धारण किये हुए गौरवर्णा नायिका के पास जैसे नायक, सखियों के सामने, पहुँच जाता है वैसे ही उस भूमि के पास, वहाँ के निवासीजनो के सामने ही, अर्जुन पहुँच गये। वहाँ उन्होंने देखा कि पके हुए धान की बालों के बोझ से धान के खेत झुक रहे हैं। जगह जगह पर विमल जल भरा हुआ है। उसमे सुन्दर सुन्दर कमल खिल रहे हैं। जलाशयों मे कही कीच का नाम तक नही। उस भूमि की ऐसी अकृत्रिम शोभा देख कर अर्जुन को बहुत ही आनन्द हुआ। उन्हे ऐसा मालूम हुआ, मानो उस भूमि ने उन्हे भेट मे देने ही के लि शरद्दतु की मनोहारिणी शोभा धारण की है।

अर्जुन ने देखा कि जलाशयो मे मछलियाँ आनन्द से उछल रही हैं। उनके उस उछल-कूद को अपने कमलरूपी लोचन खोल खोल कर जलाशय मानो बडे विस्मय से देख रहे है। मछलियों की वह चञ्चलता अर्जुन को सचमुच ही बहुत लुभावनी मालूम हुई। उनकी उस लीला के आगे अर्जुन ने प्रणयिनी के भ्रू-विलास की शोभा को कोई चीज़ ही न समझा। स्त्रियों के भ्रू-विभ्रम की शोभा हरनेवाले, मछलियो के उस लीला-ललाम स्फुरण ने अर्जुन के हृदय को हर लिया।

खिले हुए कमलो से परिपूर्ण जल मे उगे हुए धानों के पौधो के समूह के समूह देख कर अर्जुन उनकी सुन्दरता पर मुग्ध हो गये। जल के भीतर उन्हे लहराता देख अर्जुन के आनन्द की सीमा हो न रही। ऐसा होना सर्वथा स्वाभाविक था। किसी भी दुर्लभ वस्तु का समागम उसी के अनुरूप वस्तु से हो जाने पर सौन्दर्य्य की अवश्य ही अतिशय वृद्धि होती है। फिर भला ऐसा अलौकिक सौन्दर्य्य किसे आनन्ददायक न होगा और कौन उसका अभिनन्दन न करेगा?

अर्जुन ने देखा कि कही कही सारा का सारा जलाशय फेनमय हो रहा है। उस फेन के ऊपर, जलाशय मे ही उत्पन्न कमल-कुसुमों का पराग गिर गिर कर जम गया है। अतएव उन्हे यह शङ्का हुई कि यह जलाशय नही, यह तो थल है और इसमे जो कमल हैं वे थल-कमल हैं। परन्तु इतने ही मे मछलियो ने उछल कर जमे हुए उस पराग और फेन को अलग कर दिया। अतएव उनके नीचे छिपा हुआ जल प्रकट हो गया। इस कारण

अर्जुन का वह सन्देह जाता रहा। वे जान गये कि यह थल नहो, यह जलाशय ही है।

आगे चल कर अर्जुन को कितनी ही पहाड़ी नदियाँ मिलीं। उन्होंने देखा कि पानी का वेग कम हो जाने के कारण उनके वालुका-पूर्ण तट क्षीण हो रहे हैं। परन्तु उन पर पहले की ऊँची ऊँची लहरों की मार के चिह्न अब तक बने हुए हैं। उन नदी तटो की वालुका इतनी शुभ्र थी कि मालूम होता था, उन पर धुला हुआ सफ़ेद वस्त्र बिछ रहा है। चमकती हुई शुभ्र बालू से युक्त ऐसे सुन्दर और शिथिल तट देख कर अर्जुन को अवर्णनीय आनन्द हुआ।

इतने मे अर्जुन को धान के खेत रखाने वाली एक पहाड़ी स्त्री दिखाई दी। उसने अपनी भौंहों के बीच, ललाट पर, फूलो के पराग का खौर लगाया था। अतएव उसके ललाट की शोभा बहुत ही अधिक हो गई थी। तिस पर भी उसने दुपहरिया का फूल वहीं लटका कर उस शोभा को और भी बढ़ा दिया था। यह देख कर अर्जुन के मन मे यह बात आई कि लाख के रङ्ग से रँगे हुए अपने लाल लाल अधर-पल्लवो की बराबरी करने के लिए ही कहीं उसने दुपहरिया का फूल तो नहो धारण किया? उसका वह लाल लाल अधर-पल्लव और दुपहरिया का वह फूल, ये दोनो परस्पर कहाँ तक समता रखते हैं, कहो वह इसी बात की जाँच तो नहीं कर रही? अथवा कहीं वह अपने अधरो से यह तो नहीं कह रही कि लो, सुन्दरता मे तुम्हारी बराबरी करने वाली भी एक चीज़ है? उसके शरीर पर अर्जुन ने एक और भी विशेषता देखी। उसने बालसूर्य्य की कोमल किरणो के सदृश लाल कमलों का पराग

अपने वक्ष-स्थल पर ख़ूब मल मल कर लगाया था। श्रम के कारण उत्पन्न हुए पसीने के बूँद पराग के उस लेप पर जहाँ तहाँ चमक रहे थे। अतएव उस अरुणवर्ण लेप मे पसीने के बूँद मोती की तरह बहुत ही भले मालूम होते थे।

उस स्त्री ने अपने कानो की शोभा बढाने के लिए कमल के फूलो के झूमक पहन रक्खे थे। वे हिल हिल कर बार बार उसके कपोलो को छू रहे थे। उन पर उस स्त्री की आँखो की कान्ति की किरणे पड़ने से उनकी शोभा दूनी हो रही थी। धानों की रखवाली करने वाली ऐसी पहाड़ी प्रमदा को देख कर अर्जुन ने कहा— जिस शरदृतु की कृपा से ऐसे ऐसे मनोरम रूप देखने को मिल सकते हैं वह सचमुच ही धन्य है।

आगे चल कर अर्जुन ने देखा कि वन से गायों के झुण्ड के झुण्ड दौड़े चले आ रहे हैं। समय प्रभात का था। रात भर अपने बछड़ो से वियुक्त रहने के कारण उन्हे फिर देखने के लिए गायें अत्यन्त उत्सुक हो रही थी। उनके बड़े बडे थनो से दूध टपक रहा था। वे चाहती थी कि बड़े वेग से दौड कर हम अपने बछडों के पास पहुँच जायँ, परन्तु थनो के बोझ के कारण वे दौड़ न सकती थी। इस प्रकार आती हुई गायों की तरफ़ अर्जुन बडी देर तक देखते वहीं खड़े रहे। इतने ही मे उन्हे एक बहुत बड़ा बैल आता दिखाई दिया। उसने कुछ ही देर पहले एक और बैल के साथ लड़ कर उसे हराया था। इस कारण विजय के गर्व से वह फूला न समा रहा था और बार बार गर्जना करता हुआ चला आ रहा था। उस बैल ने अपने सींगों से नदियो के तटों को न मालूम कितनी दफ़े

खोद बहाया था। शरत्काल प्राप्त हो जाने से वह उस समय खूब ही पुष्ट हो रहा था। अतएव ऐसा जान पड़ता था कि वह बैल नही, किन्तु मूर्त्तिमान गर्व ही बैल का रूप धारण करके आगया है।

शरत्काल की नदियों के तट देख कर अर्जुन को बड़ा कुतूहल हुआ। इन नदियों के तटो को बर्फ़ के सदृश सफ़ेद गायों के झुण्ड के झुण्ड धीरे धीरे छोड़ कर दूर चले गये थे। वहाँ पर, उस समय, एक भी गाय न रह गई थी। अतएव वे वालुका-पूर्ण तट अर्जुन को—स्त्रियों के वस्त्र-हीन जघनों की तरह—जान पडे। उनके कुतूहल का यही कारण था। अर्जुन को वही, कुछ दूर पर, गायों के झुण्ड के पास ही कुछ गोप दिखाई पड़े। वे बडे ही भोले भाले थे। वे वन को ही अपना घर समझते थे और गाय, बैल आदि पशुओ को ही अपना कुटुम्बी जानते थे। उन पर उन गोपों की इतनी प्रीति थी जितनी कि और लोगों की अपने बन्धु-बान्धवों पर होती है। उनका सीधापन—उनके स्वभाव का सारल्य—देख कर ऐसा जान पडता था मानों उन्होंने यह गुण गायों आदि अपने पशुओं ही से सीखा है।

कुछ दूर और चलने पर अर्जुन को पर्ण-शालाओं के बाहर कुछ गोपियाँ दिखाई दी। वे उस समय दही मथ रही थीं। मन्थन-क्रिया के कारण उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग हिल रहे थे और श्रम पड़ने से उनके नेत्र-कमल क्रान्त हो रहे थे। अतएव नृत्य-रत नर्तकियों को देख कर दर्शकों की जो दशा होती है वही दशा उन्हे देख कर अर्जुन की हुई। बड़ी देर तक उन्हें देखते रहने पर भी अर्जुन की तृप्ति न हुई।

दही मथने वाली उन गोपियो के मुख उस समय खिले हुए कमलो के समान सुन्दर मालूम हो रहे थे। कमलो पर उड़ उड़ कर भ्रमर उन्हे त्रास देते हैं। गोपियों के मुखो पर भी बिखर बिखर कर गिरने वाले केशरूपी भ्रमर उन्हें त्रास दे रहे थे। खिले हुए कमलो के भीतर उनके केसर स्पष्ट दिखाई देते हैं। मथने के समय मन्द मन्द मुसकान के कारण गोपियो के भी दशन-रूपी केसर बीच बीच दिखाई देते थे। नवोदित सूर्य की किरणे पड़ने से कमलो की सुन्दरता अधिक हो जाती है। कान मे धारण किये गये, बार बार हिलने वाले, कुण्डलो की कान्ति की किरणे पड़ने से गोपियों के मुख भी अत्यधिक सुन्दर मालूम होते थे। मथने के समय गोपियों को कुछ देर तक अपना श्वासोच्छ्वास बन्द करना पड़ता था। इस कारण उस समय उनका अधरोष्ठ हिलने लगता था। तब ऐसा मालूम होता था कि ये गोपियाँ नहीं; किन्तु ऐसी लतायें हैं जिनका पत्ता हिल रहा है। गोपियाँ अपने पाणि-पल्लवों से मथानी मे लगी हुई रस्सी का आकर्षण और विकर्षण कर रही थीं। उसे इस प्रकार लीला-ललाम गति से खींचते समय कभी उनका दाहिना पार्श्वदेश आगे हो जाता था और कभी बायाँ; साथ ही उनकी कमर का पिछला भाग भी हिलता जाता था। यह दृश्य सचमुच ही अवलोकनीय था। वन मे मयूरो और मयूरियों की कमी न थी। मयूरियाँ तो गोशालाओं के आँगन तक मे पहुँच जाती थीं। अतएव जिस समय गोपिकायें बहुत बड़ी दहेंड़ी के भीतर मथानी डाल कर दही मथने लगती थीं उस समय वे अपनी गर्दन उठा उठा कर बड़ी उत्कंठा से वह शब्द सुनती थीं। मथानी के

आघात से दहेड़ी के भीतर से मृदङ्ग-नाद के समान ध्वनि निकलती थी। उस नाद को मेघ-गर्जना समझने वाली मयूरो की स्त्रियाँ मद मत्त होकर नाचने लगती थी। ऐसा अपरिचित, पर अत्यन्त आनन्ददायक, दृश्य देख कर अर्जुन का ख़ूब ही मनोरञ्जन हुआ। बड़ी देर तक उस दृश्य को देखने के बाद वे आगे बढ़ सके।

जिस मार्ग से अर्जुन जा रहे थे उसमें कहीं कीच का नाम तक न था। वर्षाऋतु मे पानी भर जाने और जहाँ तहाँ कीच हो जाने के कारण पथिको को कतरा कतरा कर आना जाना पड़ता था। परन्तु अब ऐसा करने की आवश्यकता न थी। अब तो न कहीं पानी था, न कहीं कीचड़। रास्ता साफ़ पडा हुआ था। हाँ, रथों और गाड़ियों की लीक के इधर उधर पहियो की रगड़ से इकट्ठा होकर कीचड़ जम अवश्य गया था। पर वह गीला न था, सूखा था। लोगों के आवागमन के कारण रास्ता साफ़ और सीधा दिखाई दे रहा था। उसके किनारे किनारे उगी हुई घास पशुओं ने चर ली थी। इस कारण चलने मे पथिको को और भी आराम मिलता था।

मार्ग मे अर्जुन को अनेक पहाड़ी गाँव मिले। उन्होने देखा कि भोले भाले ग्रामवासी, अपने अपने घरो के सामने, प्रफुल्लित फूलों से मण्डित लता-मण्डलो के नीचे आनन्द से बैठे हुए हैं। उन लोगों की वृत्ति सर्वथा अभिनन्दनीय थी। वे विशेषत: खेती करके अथवा वन मे आप ही आप उत्पन्न हुए धान्यो के दाने एकत्र करके अपनी जीविका का निर्वाह करते थे। चालाकी उनको छू तक न गई थी। उनकी बात-चीत से, उनकी चेष्टा से, उनके वस्त्रालङ्कार से उनका सीधापन प्रकट हो रहा था। उनकी

मुखचर्य्या ही उनके आन्तरिक भावो को प्रकट कर रही थी। ऐसे साधुस्वभाव ग्रामीण जनों के आश्रित लता मण्डप, ऋषियों के आश्रमों के लता-मण्डपों की बराबरी कर रहे थे।

शरत्कालीन शोभा ने अर्जुन के साथी यक्ष को भी प्रसन्न कर दिया। उसने देखा कि मेरी ही तरह अर्जुन भी शरद्-ऋतु की रमणीयता देखने मे मग्न हैं। जिस दृश्य को देखने के लिए वे आँख उठाते हैँ उसे देखते ही रह जाते हैं, आगे नही बढ़ते। अर्जुन की इस उत्सुकता को देख कर उसने, बिना पूछे ही, उनसे वार्तालाप करना आरम्भ कर दिया। ठीक ही है, जो मनुष्य दूसरे के मन की बात जान लेता है वह पूछे बिना भी, योग्य अवसर आने पर, अवश्य ही कुछ कहता है। ऐसे समय मे बोलना अनुचित नही।

यक्ष ने कहा—

हे अर्जुन, शरत् यथार्थ ही विशेष सुख-दायिनी ऋतु है। इस ऋतु मे ढूँढ़ने से भी कही गँदला जल नहीं मिलता। जल का सारा समुदाय निर्मल हो जाता है। निर्जल जलदों के समागम से आकाश भी बहुत ही सुन्दर मालूम होता है। समय जिस प्रकार सौभाग्योदय का फल देता है, उसी प्रकार यह काल भी तरह २ के धान्य उत्पन्न करके सारे संसार के श्रम को सफल कर देता है। ऐसा मनोहारी शरत्काल आपकी विजय-सम्पदा को बढ़ावे!

देखिए, यह ऋतु कितनी अच्छी है। परिपक्व हो जाने के कारण धान्यों के खेत बड़े ही सुहावने मालूम होते हैँ। नदियाँ भी वर्षा-ऋतु की तरह घहराना छोड़ कर पार उतरने योग्य हो जाती

हैं। कीच का कहीं चिह्न नहीं रह जाता। सारी पृथिवी साफ़ सुथरी हो जाती है। कई महीने तक वर्षा ऋतु रहने के कारण, उससे विशेष परिचित हो जाने से, उस पर सब लोगो का प्रेम अधिक हो गया था, परन्तु, अब, उस प्रेम पर शरद्-ऋतु ने अपने नये नये गुणो का परदा सा डाल दिया है। सब लोग वर्षा-ऋतु के गुणों को भूल कर अब शरत् के ही गुणों पर मुग्ध हो रहे हैं।

इस ऋतु मे सफ़ेद बगले आकाश मे उड़ते नहीं दिखाई देते। चित्र-विचित्र रङ्गोवाले इन्द्र-धनुषों से शोभायमान मेघों की मालिकायें भी नहीं देख पड़ती। इस शोभावर्द्धक सामग्री के न रहने पर भी आकाश बहुत ही रमणीय दिखाई देता है। सच तो यह है कि जो वस्तु स्वभाव ही से सुन्दर है उसे सुन्दर बनाने के लिए बाहरी उपकरणों की अपेक्षा ही नहीं होती।

बेचारी दिग्वधुओं को कृशता अवश्य प्राप्त हो गई है। वर्षा-ऋतु-रूपी पति के चले जाने से विरह-विधुरा दिगङ्गनायें क्लान्त सी मालूम हो रही हैं। देखिए, पयोधरो ने पाण्डुता धारण कर ली है, विद्युल्लता-रूपी सुवर्णालङ्कारों से वे रहित हो गये हैं। तथापि दिगङ्गनाओं की यह कृशता भी मुझे बुरी नहीं मालूम होती। मुझे तो इस कृशता मे भी रमणीयता जान पड़ती है।

वर्षा-ऋतु में मयूर मतवाले हो जाते हैं। परन्तु अब उनका वह मद जाता रहा है। इस कारण उनका उच्च केकारव अब अच्छा नहीं लगता। वह अब कानों को कठोर मालूम होता है। अब तो मदमत्त हंसों का मधुर स्वर सुनने की इच्छा होती है; उन्हीं का स्वर अब कानों को मीठा मालूम होता है। बात यह है

कि किसी चीज़ पर प्रेम होने का कारण उसके गुण ही होते हैं। चिरकाल तक परिचय होने के कारण ही लोग किसी पर प्रेम नहीं करते। परिचय से प्रेम की उत्पत्ति नही, उसकी उत्पत्ति तो गुणों से है।

अर्जुन, जरा इन धान के पौधों को तो देखो। कैसी बड़ी बड़ी बाले इन पर लटक रही हैं। उनके बोझ से ये झुक गये हैं। बाले सभी पक गई हैं। इस कारण ये पौधे पीले पीले दिखाई पड़ते हैं। खेत मे नीचे पानी भरा हुआ है। उसमे जहाँ तहाँ नील कमल खिल रहे हैं। उनसे सुन्दर सुगन्धि उड रही है। बालों के बोझ से झुके हुए इन पौधो को देख कर ऐसा मालूम होता है जैसे कमलों की सुगन्धि लेने ही के लिए ये झुक रहे हों।

इस ऋतु मे जल को जो शोभा प्राप्त होती है वह सर्वथा अवर्णनीय है। कमलिनी के फूले हुए फूलो की प्रतिबिम्बित छाया से वह लाल रङ्ग का मालूम होता है। उसके हरे हरे पत्तों के योग से वह हरा भी मालूम होता है। लहराते हुए धानो के परिपक गुच्छो से उसका रङ्ग कहीं कही पीला भी दिखाई देता है। अतएव ऐसा मालूम होता है कि यह जल नहीं; यह तो इन्द्र-धनुष का एक टुकड़ा ही बहता चला जा रहा है।

वन-पङ्क्ति-रूपी युवतियाँ भी बड़ी बहार दिखा रही हैं। उन पर सुन्दर सुन्दर फूल खिल रहे हैं। फूल क्या हैं, मानों वे फूलों के बहाने हँस सी रही हैं। बाण नाम के खिले हुए स्वच्छ फूल उन पर बहुत ही भले मालूम होते हैं। ये फूल वन-पंक्ति-रूपी युवतियों के नेत्र-सदृश हैं। इनके बहाने वे आँखें खोल खोल कर

देख सा रही हैं। इन वन-लताओं पर सप्तपर्ण नाम के जो फूल खिल रहे हैं उन पर शुभ्र पराग छाया हुआ है। उसे पवन उड़ा कर ले जाना चाहता है। परन्तु उस शुभ्र पराग को—स्त्री जिस तरह अपने शरीर के ऊपर से खींचा गया वस्त्र पकड़ लेती है, उसे नहीं छोडती उसी तरह—ये नही छोडती। पवन का अवरोध करके उसे पराग ले जाने से ये मना सा कर रही हैं।

गगन-मण्डल भी कैसा रमणीय हो गया है। उसमे अब बिजली की चमक कही नही दिखाई देती। निर्ज्जल मेघो से व्याप्त हो जाने के कारण उसमें अब धूप का कही नाम तक नही। उसके सारे आतप को सफ़ेद मेघो ने ढक लिया है। आकाश मे पानी के कण अब तक कही कही विद्यमान हैं। परन्तु वे घने नही, अत्यन्त विरल हैं। कमलों को छू कर आई हुई वायु से आकाश सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है। फल यह हुआ है कि बिजली के लोप हो जाने से आकाश मे अब उष्णता नहीं, इस कारण उसकी तरफ़ देखने से दृष्टि को कुछ भी कष्ट नहीं होता। स्वच्छ मेघों से ढक जाने के कारण उसकी तरफ़ आँख उठाने से धूप की बाधा भी अब नहीं सहन करनी पडती। जल की विरल बूँदो से व्याप्त हो जाने के कारण उसकी तरफ़ देखने से आँखों को शीतलता प्राप्त होती है। यही नहीं, वायु मे कमलो के पराग-कण मिल जाने के कारण सुन्दर सुगन्धि का भी अनुभव होता है।

मेघों की रुकावट दूर हो जाने से सारी दिशायें स्वच्छ हो गई हैं। जिधर देखिए उधर ही सफ़ेद पङ्ख वाले हंस और बगले कल-रव करते हुए उड़े जा रहे हैं। उनसे दिशायें व्याप्त सी हो रही

हैं। मुझे तो ऐसा मालूम होता है जैसे इन उड़ते हुए पक्षियों के मनोहर शब्दों के बहाने ये दिशायें आनन्दपूर्वक परस्पर बातें सी कर रही हैं।

अब जरा इन गायों को तो देखिए। बड़ी ही उत्कण्ठा से ये अपनी विहार-भूमि से दौड़ती हुई आ रही हैं। इन्हे अपने बछड़ो को देखने के लिए जल्दी हो रही है। इस कारण साथ की अन्यान्य गायों के झुण्ड को छोड़ कर ये अलग अलग दौड़ती हुई आ रही हैं। इनके थनों से दूध बराबर टपक रहा है। बहुत दिन के बाद बच्चों की माँ जब घर आती है तब वह उनके लिए खाने-पीने की कोई न कोई चीज ज़रूर लाती है। जान पड़ता है, दूध टपकते हुए थनो को ये गायें भी उसी तरह अपने बछड़ो को उपहार सा देने के लिए ला रही हैं।

मन्त्रयुक्त हवन संसार को पवित्र करनेवाला और परम्परा से उसकी उत्पत्ति का कारण भी है। इस प्रकार का मन्त्रपूत हवन जैसे शोभायमान होता है वैसे ही बछड़ो से युक्त गोशालाओ मे उपस्थित हुई गायों का समूह भी शोभायमान मालूम होता है। गायों का दूध भी मन्त्रयुक्त हवन के सदृश ही उपकारक है। अपने दूध, घी, दही से ये भी संसार को पवित्र करती हैं। ये पदार्थ संसार की उत्पत्ति के कारण भी हैं। क्योकि यदि गायों का घी, दूध आदि न प्राप्त हो तो प्रजा निर्बल हो जाय और ऐसा होने से उत्पत्ति का कार्य्य भी अवश्य ही बहुत कुछ बन्द हो जाय।

अर्जुन, दूर खड़ी हुई उन हरिणियों के झुंड को तो देखो। उनकी मुखचर्य्या कह रही है कि वे इस समय अत्यन्त भूखी हैं।

रात भर वे आराम करती रही हैं; उन्हे खाने को नहीं मिला। परन्तु इतनी भूखी होने पर भी सामने उगी हुई कोमल कोमल घास चरना वे भूल गई हैं। बात यह है कि गोपियाँ इस समय बड़ा ही मनोहारी गायन कर रही हैं। उनका स्वर मयूरों के षड्ज स्वर से भी अधिक कर्ण-मधुर है। उन्ही का गाना सुनने मे हरिणियाँ तल्लीन हो रही हैं—इतनी तल्लीन कि उनकी भूख प्यास जाती रही है।

देखो, इन खेतो मे धान पक कर सूख गये हैं। सूख जाने के कारण उनका रङ्ग सफ़ेद हो गया है, उन मे पाण्डुता आ गई है। उनके नीचे खेत मे भरा हुआ पानी भी सूख गया है। जान पड़ता है, नीचे जल मे खिली हुई कमलिनी को प्रसन्न करने के लिए उसके सामने अपना सिर झुकाने पर भी धानो के इस समुदाय को उसने फटकार बता दी है। इसीसे, कामार्त्त मनुष्य के सदृश अत्यन्त सन्तप्त होकर इस शालि-समुदाय ने सूख कर अपने प्राण से दे दिये हैं। उसके सहचर जल से अपने मित्र की यह दशा देखी नहीं गई। इस कारण वह भी उसी के साथ सूख कर मर मिटा है।

इस समय वायु बहुत ही सुख-कारक बह रही है। कमल-फूलों का पराग उड़ा लाने के कारण उससे बड़ी अच्छी सुगन्धि आ रही है। जलाशयो के ऊपर से आने के कारण जल के परमाणुओं को भी वह अपने साथ ले आई है। अतएव उसमे शीतलता भी आ गई है। इस सुगन्धिपूर्ण और शीतल वायु के झोको में पड कर बेचारे भौरों की बड़ी दुर्दशा हो रही है। वायु मे पराग

का आधिक्य होने के कारण वह उड़ उड कर भौंरों की आँखों मे पड़ रहा है। इससे वे घबरा कर इधर उधर भाग रहे हैं। उन्हें यही नही सूझता कि किधर जायँ। चोर और व्यभिचारी आदि दुःशील लोगों की भी यही दशा होती है। राजभय प्राप्त होने पर वे भी अन्धे से हो जाते हैं। कहाँ—किस प्रान्त मे, किस देश मे—जाकर अपनी रक्षा करे, यह उस समय उन्हे नहीं सूझ पड़ता। तरह तरह के फूलों से मधु और पराग हरण करने वाले इन भौंरो को भी एक प्रकार का चोर समझ कर ही वायु-प्रवाह उन्हें यह दण्ड सा दे रहा है।

वह देखो, तोतों की पाँति की पाँति उडती हुई कैसी चली जा रही है। उनका शरीर शिरीष-कुसुम के सदृश कोमल है। रङ्ग हरा है। चोचे मूँगे के चूर्ण के सदृश लाल हैं। उन लाल लाल चोचो से पके हुए धान की पीली पीली बालें लटक रही हैं। शरीर हरा, चोचें लाल, धान की बाले पीली—अतएव तीन रङ्गो का यह मेल बहुत ही सुहावना मालूम होता है। तोतो की यह पंक्ति इन्द्र-धनुष की शोभा का अनुसरण सा करती हुई उडी जा रही है।

इस प्रकार शरद्-ऋतु का वर्णन करता हुआ वह यक्ष जा रहा था कि इतने मे थोड़ी ही दूर पर आगे हिमालय पर्वत दिखाई दिया। वह इतना ऊँचा था कि सूर्य्य उसकी आड़ मे छिप गया था—अपने शिखरो से उसने सूर्य्य-बिम्ब का आच्छादन कर लिया था। पर्वत के ऊपर स्वच्छ और निर्ज्जल मेघ छाये हुऐ थे। अतएव वह सफ़ेद मेघों का समुदाय ही सा मालूम होता था। उसका अधोभाग तो बहुत घने वनों से ढका होने के कारण

श्याम वर्ण था । पर उसके ऊँचे ऊँचे शिखर बर्फ़ से ढके होने के कारण शुभ्र दिखाई दे रहे थे । शीश उसका शुभ्र; नीचे का और सारा भाग श्याम । ऐसे दुरङ्गी हिमालय को देख कर अर्जुन को मद-रहित—शान्त-स्वरूप—बलरामजी की सुन्दरता का स्मरण हो आया । क्योंकि बलरामजी हैं तो गोरे, पर पहनते वे नीले कपड़े हैं ।

---

## पाँचवाँ सर्ग ।

कुछ ही देर मे अर्जुन हिमालय के पास पहुँच गये। उसकी ऊँचाई देख कर उन्हे बड़ा विस्मय हुआ। उनके मन मे न मालूम कितनी कल्पनाओं का उदय हुआ। उन्होने सोचा कि अपनी ऊँचाई से यह हिमालय कही सुमेरु पर्वत को जीत लेने का प्रयत्न तो नही कर रहा? अथवा कही यह इस बात का पता लगाने के लिए तो नही इतना ऊँचा हो गया कि देखूँ ये दिशायें कहाँ तक फैली हुई हैं? अथवा कहीं यह आकाश का उल्लङ्घन करके उसके भी आगे निकल जाना तो नही चाहता? इसी तरह की कल्पना-तरङ्गो मे वे बड़ी देर तक तरङ्गित होते रहे।

हिमालय यथार्थ ही आश्चर्य्य का घर है। उसकी शोभा और सुन्दरता अलौकिक है। उच्चता के साथ ही साथ उसका विस्तार भी बहुत अधिक है। उसके एक तरफ़ तो सूर्य्य का प्रकाश सदा बना रहता है। अतएव वह भाग प्रकाशमान दिखाई देता है। परन्तु, दूसरे भाग मे रात्रि के सदृश अन्धकार छाया रहता है। अतएव एक ओर प्रकाश और दूसरी ओर अन्धकार से युक्त वह ऐसा मालूम होता है जैसे गज-चर्म्म धारण किये हुए महादेवजी हँस रहे हों। क्योंकि, गज-चर्म्म काला होने के कारण शिवजी की

पीठ का भाग तो तमोवृत सा दिखाई देता है और आगे का भाग हास्यरूपी प्रकाश से अन्धकारहीन सा मालूम होता है।

पृथ्वी, आकाश और स्वर्ग—ये तीनों लोक जुदा जुदा हैं। इन लोको मे रहने वालो को कभी परस्पर मिल जुल कर रहने का मौक़ा नहीं आता। परन्तु हिमालय पर इन तीनों लोको के निवासियों ने अपने अपने घर बना रक्खे हैं। वे सभी यहाँ रहते हैं। अतएव जिन्होंने कभी परस्पर एक दूसरे को न देखा था वे भी अब यहाँ पास पास रहते हैं और परस्पर बातचीत भी कर सकते हैं। यह बड़ा ही अद्भुत और अलौकिक दृश्य है। जान पड़ता है, शङ्कर ने अपना सामर्थ्य प्रकट करके दिखाने के लिए हिमालय के रूप मे संसार की दूसरी प्रतिमा ही बना दी है। जो बात और किसी से न हो सकती थी उसे ही उन्होने कर दिखाया है।

इस पर्वत का और सारा शरीर तो शेषनाग के सदृश शुभ्र है; पर इसके गगन-चुम्बी शिखर सुवर्ण की मोटी मोटी रेखाओं से विराजमान हैं। उन पर सोने के समूह झलका करते हैं। इस कारण ऐसा मालूम होता है कि शोभा मे यह, चमकती हुई बिजली से युक्त शरत्कालीन शुभ्र मेघों की मालिका से भी बढ़ जाना चाहता है।

जिस भूमि-भाग पर यह स्थित है वह बहुत बड़े नगर के सदृश मालूम हो रहा है। बड़े बड़े नगरों मे सफ़ेदी पुते हुए भवन और पट-मण्डप होते हैं; इस पर भी चमचमाते हुए रत्नों के किरणसमूह-रूपी मण्डप और छोलदारियाँ जगह जगह दिखाई

देती हैं। नगरों में घरों की पंक्तियाँ ही पंक्तियाँ दिखाई देती हैं, इस पर भी सुर-नारियों के विहारोपयोगी लतारूपी घर ही घर देख पड़ते हैं। नगरों मे बड़े बड़े फाटक होते हैं; इस पर भी, जगह जगह, पाषाणरूपी बड़े बड़े गोपुर—फाटक—हैं। नगरों मे अनेक उद्यान होते हैं, इस पर भी अनन्त फूल-बाग़ विराजमान हैं।

इस पर्वत के अधोभाग का दृश्य बड़ा ही रमणीय है। उस पर मेघों का समुदाय सदा ही छाया रहता है। बहुत समय तक बरसते रहने के कारण रिक्तजल मेघ सफ़ेद दिखाई देते हैं। न वे गरजते हैं और न उनमे कहीं बिजली ही चमकती है। इसके दोनो तरफ़, नीचे नीचे, इस तरह के सफ़ेद बादल छाये देख, ऐसा मालूम होता है कि इसके पङ्ख उग आये हैं। अतएव यह उड़ना चाहता है।

इस पर जितनी नदियाँ हैं सभी बड़े वेग से बहती हैं। इन नदियों मे जहाँ जहाँ स्नान करने के घाट हैं वहाँ वहाँ की भूमि तो ऊँची नीची नही, वह तो सम है। पर अन्यत्र यह बात नही। और सब कहीं के तट ऊँचे नीचे हैं, उनमे बड़ी विषमता है। कारण यह है कि इसके जिन भागों मे रत्नों की खानियाँ हैं उनमें हाथी अधिक हैं। ये हाथी खानियो के कगारो को तोड़ा फोड़ा करते हैं। उन्हे ऐसा करने की आदत सी पड़ गई है। अतएव जब वे नदियों मे पानी पीने आते हैं तब उनके भी कगारों को क्षत-विक्षत कर डालते हैं। यही कारण है जो इस पर्वत की नदियों के अधिकाश तटो मे विषमता आ गई है। पर इसकी पहाड़ी नदियाँ हैं बड़ी सुन्दर। उनमे कमल खिले रहते हैं।

उनका जल भी बहुत सुस्वादु है। अतएव उसे पीने और उसमें स्नान करने से बहुत सुख मिलता है।

इसके ऊँचे ऊँचे शिखरों पर पद्मराग आदि मणियों की बहुत अधिकता है। ये मणियाँ नये फूले हुए जपापुष्प के सदृश लाल और प्रभापूर्ण हैं। दूर तक फैली हुई इनकी दीप्ति जब ऊपर को जाती है तब शिखरों पर सर्वत्र लालिमा छा जाती है। अतएव ऐसा मालूम होता है कि अकाल ही में सन्ध्या हो गई—यह लालिमा सान्ध्य-राग के सिवा और कुछ नहीं।

इस पर बड़े बड़े कदम्ब वृक्षों की अत्यन्त अधिकता है। वे सब पुष्पगुच्छों से सदा लदे रहते हैं। तमाल-वृक्षों की भी इस पर कमी नहीं। उनके तो वन के वन इस पर विद्यमान हैं। ये तमाल-वृक्ष जङ्गली वृक्षों की तरह इधर उधर बिखरे हुए नहीं। सब अपनी अपनी पाँति मे लगे हुए हैं। इस पर बर्फ़ की छोटी छोटी बूँदों की सदा ही वर्षा हुआ करती है। मतवाले और बड़ी बड़ी सूँडों वाले सुन्दर हाथी इस पर सर्वत्र विहार किया करते हैं। इसका एक भी शिखर ऐसा नहीं जिस पर रत्नों के ढेर के ढेर न हो। एक भी ऐसी गुहा नहीं जिसमे लतारूपी घर न हो। एक भी ऐसी नदी नहीं जिसमे कमल न खिले हो और जिसके वालुकापूर्ण तट सुन्दर न हो। एक भी ऐसा वृक्ष नहीं जिस पर फूल न फूल रहे हो। इसकी नदियों मे देवाङ्गनाये जल-विहार करने आया करती हैं। वे करधनी धारण किये हुए अपने नितम्बो के आघात से इनके जल को धीरे धीरे क्षुब्ध कर डालती हैं। इस पर जितनी लतायें और जितने बकुल-वृक्ष हैं वे सभी बड़े ही मनोरम और

प्यारे मालूम होते हैं। इसके चारो तरफ सैकडो, हज़ारों सर्प वास करते हैं। इसका विस्तार भी बहुत अधिक है।

इसके शिखरो पर बर्फ़ जमी रहने के कारण वे शुभ्र दिखाई देते हैं। उन पर चित्र-विचित्र मणियो की प्रभायें फैली रहती हैं। अतएव उनके ऊपर छाया हुआ निर्जल, अतएव विशद, वारिदो का समूह ऐसा मालूम होता है जैसे उन पर इन्द्रधनुष चमक रहा हो। इसके शिखरो पर मेघ ठहरे रहते हैं। इस कारण वे निश्चल दिखाई देते हैं। उन्हे देख कर यह शङ्का होती है कि इन्द्रधनुष से युक्त ये मेघ नही, किन्तु मणिप्रभाओ से युक्त इसके शिखर ही हैं। जब ये मेघ गरजते हैं तभी इस तरह की शङ्का दूर होती है—तभी यह मालूम होता है कि ये शिखर नहीं; ये तो मेघ हैं।

मानस-सरोवर भी इसी पर्वत पर है। उसका जल अत्यन्त स्वच्छ है। वह खिले हुए कमलो से सदा व्याप्त रहता है। मधुर शब्द करने वाले राजहंस उसमे सदा ही विहार किया करते हैं। अपने गणो को लिये हुए महादेवजी भी इस पर रहते हैं। उनके साथ पार्वतीजी भी रहती हैं। पार्वतीजी जब कभी महादेव जी से रूठ जाती हैं तब उनमे और महादेवजी मे झगड़े की भी नौबत आ जाती है। अतएव इसे शिव-पार्वती का प्रणय-कलह भी चुपचाप देखना पडता है।

इस पर ऐसी अनेक ओषधियाँ हैं जो बहुत ही दीप्तिमती हैं। वे आग के सदृश प्रकाश देती हैं। इस प्रकाश से यह पर्वत चन्द्रमा आदि ग्रहो और उपग्रहो को ही नही, आकाशगामी देव-

ताओं के विमानों को भी प्रकाशित करता है। इतना ही क्या, उस प्रकाश से यह सारे स्वर्गलोक को भी प्रकाशमय कर देता है। जिस समय इसकी कान्तिमती ओषधियो का प्रकाश रात को चारों ओर फैल जाता है उस समय इस पर रहने वाले शङ्कर के सेवको को बड़ा आश्चर्य होता है। उन्हे उस समय शिवजी के द्वारा जलाये गये त्रिपुरासुर के पुरो मे लगी हुई आग की लपट बार बार याद आती है।

त्रिलोक-पावनी भागीरथी की धारा इसके ऊँचे ऊँचे शिखरों से नीचे गिरती है। अत्युच्च स्थानो से नीचे गिरने पर उसके जल के कण-समूह जिस समय चारो तरफ़ फैल जाते हैं उस समय का दृश्य वर्णन नहीं किया जा सकता। वह बडा ही अद्भुत है। कही कही बड़ी बड़ी शिलाओ के समूह के समूह राह मे आकर गङ्गा के प्रवाह को रोकने की चेष्टा करते हैं। ऐसी दशा को प्राप्त होने पर गङ्गाजी का जल दाहने बाये दूर दूर तक फैल जाता है। उस अर्द्ध-चक्राकार जल को देखने से ऐसा मालूम होता है मानो गङ्गाजी ने अपने हाथ मे सफ़ेद पङ्खा पकड रक्खा है।

इस तरह के आश्चर्यों और सुन्दर दृश्यो से परिपूर्ण नगाधि-राज हिमालय ने अर्जुन को मोह लिया। उनको विस्मित देख कुवेर के अनुचर यक्ष से चुप न रहा गया। उसने मन मे कहा—हिमालय को देख कर अर्जुन जब इतने चकित हुए हैं और उनका अवलोकन-कुतूहल जब इतना अधिक हो गया है तब मुझे भी इस पर्वत के विषय मे कुछ निवेदन करना ही चाहिए। अतएव उसने बड़े आदर से मधुर भाषण आरम्भ किया। ठीक भी है। योग्य

समय उपस्थित होने पर ही बोलना शोभा देता है। बेमौक़े का सुन्दर भाषण भी रोचक नहीं होता। यक्ष बोला—

अर्जुन, बर्फ के समान सफ़ेद सफ़ेद शिखरों से यह पर्वत आकाश को एक जगह नहीं, हजारो जगह, छेद सा रहा है। यह बड़ा पवित्र पर्वत है। दर्शन-मात्र से ही यह मनुष्यो के पातको के समूहो का नाश करने मे समर्थ है। इसका यथेष्ट ज्ञान मैं तो क्या, बडे बड़े ज्ञानी और ध्यानी तक नहो प्राप्त कर सकते। इसके किनारे किनारे के प्रदेशो का थोड़ा बहुत हाल चाहे कोई भले ही जान ले, परन्तु इसका मध्य-भाग बहुत ही दुरधिगम्य है। उसका ज्ञान-सम्पादन करना आप असम्भव ही सा समझिए। पुराणो की महत्ता आपसे छिपी नही। परन्तु ये इतने महत्वपूर्ण और दुर्ज्ञेय पुराण भी इसके मध्यभाग का बहुत हो थोड़ा वृत्तान्त वर्णन कर सके हैं। इन पुराणो को—इन आगमो को—भी हिमालय के मध्यवर्ती भाग का पूर्ण ज्ञान नही। यह पर्वत बहुत ही गहन है। दिशाओ-विदिशाओ को भी इसने अपने विस्तार से ढक लिया है। यह उनके भी छोर तक पहुँच गया है। पुराण-पुरुष परमेश्वर को जिस प्रकार एक मात्र ब्रह्माजी ही जानते हैं उसी प्रकार इसको भी एक मात्र वही अच्छी तरह जानते हैं। ब्रह्माजी को छोड़ कर इसका पूरा पूरा हाल जानना और किसी के लिए सम्भव नहीं।

इस पर बडे ही सुन्दर सुन्दर सरोवर हैं। उन सरोवरों मे तरह तरह के कमल सदा ही खिले रहते हैं। सरोवरो के तीर तीर रुचिर पल्लवों और पुष्पों वाली लताओं के घर हैं। इसके सरोवर-तटवर्ती ये लतागृह इतने चित्ताकर्षक और इतने शृङ्गार-

रसोद्दीपक हैं कि उन्हे देख कर मानिनी कामिनियों के मान तत्काल ही छूट जाते हैं। वे ज्योहा देख पडते हैं त्योही धीर-हृदया मानिनियों का भी धैर्य्य शिथिल हुए बिना नही रहता।

यह हिमालय संख्यातीत अनमोल द्रव्यो का आकर है। इस तरह के द्रव्य नीतिमान् तथा अत्यन्त भाग्यवान् जन को ही प्राप्त हो सकते हैं। नवो निधियो और सारे यक्षो के स्वामी कुवेर को भी इसके द्रव्य-समुदाय के अवलोकन से परमानन्द प्राप्त होता है। वह भी उन्हे पाने की लालसा रखता है। इस प्रकार की अलौकिक द्रव्य-राशि से परिपूर्ण इस पर्वत के याग से यह पृथिवी अपने को बहुत ही सौभाग्यशालिनी समझती है। मेरी समझ मे तो इस पर्वत के कारण इस पृथिवी की शोभा स्वर्ग और पाताल की शोभा से भी बढ़ गई है। सच तो यह है कि यह सारा का सारा त्रिभुवन भी हिमालय की बराबरी नही कर सकता। देखिए न, जिन पार्वतीपति शङ्कर की महिमा जानने मे कोई भी समर्थ नही वही इस पूजनीय पर्वत पर सदा वास करते हैं। फिर भला त्रिभुवन इसकी बराबरी कैसे कर सकता है? इस पर्वत की महत्ता वर्णनातीत है। जन्म और जरा से रहित परब्रह्म के परम विशुद्ध पद की प्राप्ति की इच्छा रखने वाले लोगो के अज्ञानान्धकार का—सच्छास्त्रों के सदृश—नाश करने वाले इस पर्वत पर रहने से बुद्धि अत्यन्त ही विमल हो जाती है। इस कारण साधको और तपस्वियो के आवागमन की डोरी छिन्न हो जाती है। प्रपञ्च की निवृत्ति होने से वे लोग जन्म-मरण के दुःख से छुटकारा पा जाते हैं। उन्हे परम पद प्राप्त हो जाता है।

इस पर्वत पर फूलों की सेजें जगह जगह बिछी रहती हैं। उन पर सुर-सुन्दरियों के पैरो के तलुवो मे लगे हुए लाक्षारस के चिह्न बने रहते हैं। उनके केश-कलापों मे गुँथे हुए फूल भी उनके सिर से गिर गिर कर इन सेजो पर पड़े दिखाई देते हैं। इस प्रकार की अस्त-व्यस्त हुई कुसुम-शय्यायें देख कर लोग तत्काल ही ताड जाते हैं कि इन पर प्रेमाकुल देवाङ्गनाओं ने यथेच्छ विहार किया है।

यह पर्वत समग्र ससार की दृष्टि मे पूज्य है। इसमे एक दो नही, अनन्त गुण हैं और वे सभी परिपूर्णता को पहुँच गये हैं। इसी से इसके गुणो पर मोहित होकर देदीप्यमान ओषधियाँ इसके ऊपर सदा ही अपने तेज का प्रकाशन किया करती हैं। वे कभी, एक क्षण के लिए भी, इस प्रकाशन-कार्य्य से विरत नही होतो। न्यायी और धर्म्मनिष्ठ राजा के पास पहुँच कर लक्ष्मी जिस प्रकार बड़े प्रेम से उसके आश्रय मे रहती है—उसे कभी नही छोड़ती—उसी प्रकार हिमालय के गुणो की परिपूर्णता पर मुग्ध हुई ओषधियाँ इसे छोडने की इच्छा नही करती। अपने प्रकाश स वे सदा ही इसकी शोभा का बढ़ाती रहती हैं।

इस पर्वत की कौन कौन सी शोभा का मैं उल्लेख करूँ। टिटहरी नाम के पक्षी इस पर सदा ही मधुर रव किया करते हैं। जितने वृक्ष इस पर हैं, सभी पुष्पित रहते हैं। जितने जलाशय इस पर हैं, सभी कमलो से परिपूर्ण दिखाई देते हैं। जितनी नदियाँ इस पर हैं उन सभी के किनारे किनारे वरण नाम के वृक्ष हैं। उनकी झुकी हुई शाखाओ से नदियाँ आच्छादित रहती हैं।

इन नदियो मे परम सुगन्धित उशीर उत्पन्न होता है । वृक्ष-शाखाओं से आच्छादित और उशीर-युक्त होने के कारण हाथी इनको बहुत पसन्द करते हैं । इनके किनारे रहने, इनमे स्नान करने और इनका जल पीने से उन्हे परमानन्द होता है ।

इस पर्वत पर विहार करने के लिए देवताओं के हाथी भी आया करते हैं । मतवाले होने के कारण उनके मस्तक से बडा ही सुगन्धित मद स्राव हुआ करता है । उस स्राव से आम की मञ्जरी की मधुर सुगन्धि आती है । अतएव जिस पेड़ या पेड की मोटी शाखा पर रगड़ कर वे अपने मस्तक खुजाते हैं उस पर आम-मञ्जरी की सुगन्धि देने वाला उनका मद-जल लग जाता है । इस कारण सैकड़ों भ्रमर दूर दूर से आकर उस जगह चिपक जाते हैं । यही नहीं, आम के मौरों की सुगन्धि आने से कोकिलों को अकाल ही मे वसन्त-ऋतु आ जाने का धोखा होता है । इस कारण वे उन्मत्त हो उठते हैं और मधुर आलाप करने लगते हैं ।

उभड़े हुए नितम्बों ( कगारों ) से इस पर्वत की रुचिरता और भी अधिक हो गई है । यह यद्यपि पृथिवी पर स्थित है, तथापि स्वर्ग की अप्सरायें सदा ही इस पर विहार किया करती हैं । पृथिवी के और किसी भाग पर वे अपना पैर नही रखती ; परन्तु इस पर वे सानन्द विचरा करती हैं । अप्सरायें ही क्यो, जो अमृत भूमण्डल पर और कहीं नही पाया जाता वह भी इसके ऊपर मृत-सञ्जीवनी आदि ओषधियों के भीतर निरन्तर वास करता है । यह अमृत ऐसा वैसा नहीं. त्रिलोकी मे जितने रस हैं उनमे से एक भी इसकी बराबरी नहीं कर सकता । यह वह रस है जो पाताल लोक की

रक्षा करने वाले शेष नामक सर्पाधिराज को सबसे अधिक प्यारा है। इन गुणो के कारण यह नगाधिराज हिमालय सुमेरु-पर्वत से किसी बात मे कम नहीं। सुमेरु पर इससे अधिक और रक्खा ही क्या है ?

इस पर सुन्दर सुन्दर फूलो और मीठे मीठे फलो से युक्त लतायें ही घरो का काम देती हैं। दीपको की यहाँ आवश्यकता ही नहीं। चमकती हुई ओषधियाँ ही रात को अन्धकार का नाश करती हैं। जो काम रत्न-खचित दीपको से निकलता है वही इनसे निकलता है। बिछौनो की भी यहाँ आवश्यकता नही। कल्प-वृक्षो के कोमल किशलय ही बनी बनाई शय्याये हैं। घूमने-फिरने और विहार करने के कारण उत्पन्न हुए श्रम और स्वेद को दूर करने के लिए यहाँ पङ्खे की भी आवश्यकता नही। प्रफुल्ल कमलो का स्पर्श करके आई हुई वायु सारे श्रमजात पसीने का तत्काल ही नाश कर देती है। इस वायु के स्पर्श से थकावट दूर होने मे भी देर नही लगती। इस पर इतनी सुख सामग्रियाँ हैं जिनकी गिनती नहीं। यही कारण है जो इस पर्वत पर विहार करने वाली सुर-नारियो को स्वर्ग का कभी स्मरण तक नही होता।

मछली आदि जलजन्तुओ के स्फुरण सदृश चञ्चल लोचनो वाली पार्वती ने इसी पर्वत पर गले तक पानी मे पैठ कर बहुत काल तक तपस्या की थी। तपस्या का फल भी उन्हे यहीं प्राप्त हुआ था। प्रेमजन्य पसीने से भीगे हुए अपने हाथ से शङ्कर ने उनका हाथ इसी पर्वत पर पकड़ा था। शिव-पार्वती का विवाह होने के कारण इस पर्वत की महिमा और भी अधिक हो गई है।

मन्दराचल भी इसी पर्वत का एक कँगूरा है। अमृत की प्राप्ति के लिए देवताओं और दैत्यों ने जब क्षीरसागर को मथा था तब उन्होंने मन्दराचल ही से मथानी का काम लिया था। सर्पाधिराज वासुकि को रस्सी बना कर उससे उन्होंने मन्दराचल को बाँध दिया था। तब उसे क्षीर-सागर के भीतर डाला था। वासुकि-रूप रस्सी की रगड़ यद्यपि इसे सहन करनी पड़ी तथापि इसने क्षीर सागर को इतना मथा कि उसका सारा क्षीर उफना कर बाहर निकल पड़ा और उसके नीचे पाताल-लोक साफ़ दिखाई देने लगा। वही मन्दराचल, देखिए, वह दिखाई दे रहा है। वह इतना ऊँचा है कि आकाश को छू सा रहा है। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि वह आकाश को फाड़ कर उसके भी आगे निकल सा जाना चाहता है।

इस मन्दराचल पर स्फटिक बहुत होता है और चाँदी भी बहुत पैदा होती है। जहाँ पर ये चीजें होती हैं वहाँ दूर दूर तक इनकी दीवारें सी ऊपर को उठी हुई दिखाई देती हैं। इधर स्फटिक और चाँदी के ढेरों से निकली हुई कान्ति-किरणें ऊपर को जाती हैं, उधर ऊपर से सूर्य्य की किरणें आकर उनमें मिल जाती हैं। इस कारण स्फटिक और चाँदी की किरणों की दीप्ति और भी अधिक हो जाती है। साथही इन्द्रनील-मणियों की कान्ति की नीली नीली किरणें भी, हंसों के समान सफ़ेद स्फटिक और चाँदी की कान्ति-किरणों में मिल जाती हैं। सूर्य्य की, इन्द्रनील-मणियों की और स्फटिक तथा चाँदी की किरणों का जब मिश्रण होता है तब ठीक दोपहर के समय भी चन्द्रमा की चाँदनी का भ्रम होता है।

ऊपर को गमन करता है, उधर से भगवान् भास्कर की किरणों का समूह इनकी तरफ आता है। इन देनो किरण-समूहों का मिश्रण होने पर ऐसा मालूम होता है जैसे सहस्र-रश्मि सूर्य्य अपनी किरणो की सहस्र-सख्या का अतिक्रमण कर रहे हैं। उस समय उनकी किरणों की संख्या सहस्र की अपेक्षा सैकडों गुनी अधिक सी हो जाती है।

कैलास-पर्वत भी इसी हिमालय का ही अंश विशेष है। यह भी सर्वथा प्रशसनीय है। धनाधिप कुवेर ने त्रिपुरान्तक शङ्कर को प्रसन्न करने के लिए ऊँचे ऊँचे फाटको वाली अलका नामक नगरी की रचना इसी पर्वत पर की है। यदि यह पर्वत प्रशसनीय, अतएव शिवजी के वास योग्य, न होता तो कुवेर इसके ऊपर ऐसी रम्य नगरी का निर्म्माण क्यो करता? यह इतना ऊँचा है कि सूर्य्य कभी इसके शिखरों का उल्लङ्घन नही कर सकता। वह इसके नीचे ही रहता है। अतएव, यह पर्वत अपने प्रान्त-भाग मे गमन करने वाले सूर्य्य को अकाल ही मे अस्त सा कर देता है। इसकी उँचाई के कारण सूर्य्य का प्रकाश इसकी तरफ आ ही नही सकता। इसीसे वह अकाल ही मे अस्त सा हो गया जान पडता है।

इसके शिखरो के भीतर नाना प्रकार के रत्नो का समुदाय भरा हुआ है। उन रत्नों की कान्ति की किरणो से इसके शिखरों और बडे बडे कगारों के बीच की जगह बिलकुल आच्छादित हो जाती है—वह भर सी जाती है। इस कारण ऐसी शङ्का होती है कि वे खड्ड ठोस हैं, उन पर सफ़ेद सफ़ेद दीवारें सी खडी हैं। परन्तु ज़ब वेग से वायु बहती है तब यह शङ्का दूर हो जाती है। क्योंकि

यदि वहाँ सचमुच ही दीवारें होतीं तो वे वायु के प्रवाह को रोक देतीं, उसके वेग को वे कम कर देतीं। परन्तु उन खड्ढों—उन ख़ाली जगहों—में उतने ही वेग से वायु चलती देख दीवार की शङ्का का निरसन हो जाता है।

मैं कैलास की महिमा का कहाँ तक वर्णन करूँ। इस पर कोमल कोमल घास और तृण सदा छाया रहता है। यह घास-पात कभी सूखता ही नहीं, सदा हरा बना रहता है। अतएव, हरियाली के कारण यह बहुत ही रमणीय मालूम होता है। इस पर नील कमलों के वन के वन हैं। वे श्यामायमान दिखाई देते हैं; उन पर कभी सफ़ेदी नहीं आती। इसी तरह चित्र-विचित्र फूलों के गुच्छों से लदे हुए वृक्षों के पत्ते इस पर कभी नहीं सूखते। वे सदा ही नये, अतएव कोमल, बने रहते हैं।

इस पर्वत के प्रान्त-भागों में मरकत-मणियाँ बिखरी पड़ी रहती हैं। वे नवजात शुकों के सदृश कोमल और हरी दिखाई देती हैं। उन्हें देख कर हरिणियों को यह शङ्का होती है कि कोमल कोमल हरी घास उग रही है। इस कारण वे उन पर मुँह मारती हैं। परन्तु जब वे देखती हैं कि यह घास नहीं, ये तो मणियाँ हैं, तब उन्हें छोड़ देती हैं। जिस समय इन मणियों की कान्ति सूर्य्य की किरणों से मिलती है उस समय उसकी शोभा सौगुनी अधिक हो जाती है।

इस कैलास-पर्वत पर स्थल-कमल भी बहुत हैं। उनके वन के वन दूर दूर तक चले गये हैं। इन कमलों में उत्पन्न रज:कणों के समूह को वायु उड़ा कर ऊपर ले जाती है। वहाँ वह आकाश

मे चारो तरफ़ गोलाकार छा जाता है। उस समय ऐसा मालूम होता है जैसे इस पर्वत के ऊपर सोने का छत्र तान दिया गया हो। अतएव, यह उस समय अपूर्व ही शोभा धारण करता है।

इस पर, गङ्गा के किनारे, प्रात काल, शिवजी संध्या-वन्दन करके प्रदक्षिणा करते हैं। पर उस समय भी वे पार्वती का साथ नही छोड़ते, पूजा के समय भी पार्वतीजी को अपनी अर्द्धाङ्गिनी बनाये रहते हैं। इस बात की गवाही उनकी प्रदक्षिणा का मार्ग देता है। क्योकि, उस पर जो पदचिह्न बन जाते हैं उनमे एक छोटा और एक बड़ा दिखाई देता है। साथ ही बाई ओर के छोटे पैर महावर से रञ्जित देख पडते हैं। बात यह है कि पार्वतीजी अपने पैरों पर महावर लगाती हैं। इसी से जहाँ जहाँ उनका बायाँ पैर पडता है वहाँ वहाँ महावर लग जाता है।

कैलास-पर्वत पर सूर्य्य की प्रभा के मडल वृक्षो की हिलती हुई डालियो के भीतर प्रवेश कर जाते हैं। ऐसे समय मे, इस पर्वत के ऊपर, दीवारो के सदृश दूर दूर तक चली गई चाँदी की चौडी चौड़ी रेखाओ से निकला हुआ किरण-समूह यदि सूर्य्य के उन प्रभा-मडलो मे मिल जाता है तो उनकी कान्ति दूनी हो जाती है। तब उन वृक्षो की डालियो के भीतर ऐसा मालूम होता है जैसे सैकडो आईने चमक रहे हो। उस समय वह शोभा देखने ही योग्य होती है।

गणाधिप शङ्कर का वाहन बैल इस पर्वत के शिखरो पर आनन्द से विहार किया करता है। उसका रङ्ग अत्यन्त शुभ्र है। शुभ्रता के आधिक्य के कारण उसके शरीर से शुभ्र किरणे निकला

करती हैं। उनसे उसका सारा शरीर व्याप्त रहता है, वह ख़ूब चमका करता है। बहुधा वह अपने सींगों से पर्वत के कगार तोड़ने का खेल किया करता है। इस खेल के समय उसका शुभ्र शरीर सिमट कर गोल—मण्डलाकार—हो जाता है। ऐसी दशा मे यदि मुग्धा स्त्रियों की दृष्टि उस पर पड़ती है तो उन्हे यह शङ्का होती है कि कैलास के शिखरो पर चन्द्रमा का उदय तो नहीं हो आया? चन्द्रमा भी शुभ्र और गोल, वृषभराज भी शुभ्र और गोल। इसीसे उन्हे चन्द्रोदय का भ्रम होता है।

शरद्-ऋतु के कारण मेघो मे अब जल नहीं रह गया। इस कारण वे बहुत हलके हो गये हैं, उनकी सघनता जाती रही है। रुई के गाले के सदृश वे एक दूसरे से अलग अलग होकर आकाश मे छाये हुए हैं। उनकी इस क्षीणता, लघुता और भिन्नता के कारण उन पर बड़ी कठिनता से, बहुत धीरे धीरे, छोटे छोटे इन्द्र-धनुष उत्पन्न होते हैं। परन्तु इस तरह के खण्डित इन्द्र-धनुषो की पूर्ति कैलास पर एक और प्रकार से हो जाती है। बात यह है कि इस के शिखरो पर अनेक रङ्गोवाली सैकड़ो मणियाँ विद्यमान हैं। उनसे निकली हुई रङ्ग-रङ्ग की किरणो का समूह जब इन छोटे छोटे और निर्बल धनुष-खण्डों पर पड़ता है तब इनके रङ्ग भी गहरे हो जाते हैं और इनकी लम्बाई चौड़ाई भी पूरी हो जाती है।

शिवजी सदा ही इस पर्वत पर वास करते है। अतएव उनके ललाट पर लगी हुई इन्दु-लेखा इसके सौभाग्य को बढ़ा देती है। चन्द्रकला की किरणो से अमृत-मय बूँदें टपका करती हैं। उसकी वे पीयूषवर्षिणी किरणें इस पर्वत पर उत्पन्न हुए वृक्षो के पत्तो

और नई नई लताओं पर रात भर छाई रहती हैं। इस कारण कृष्ण-पक्ष की रात मे भी इसके मध्यवर्ती वनोपवन ज्योत्सना-पूर्ण दिखाई देते हैं। शिवजी की इस चन्द्रकला के प्रभाव से कैलास पर कृष्ण-पक्ष मे भी शुक्ल-पक्ष ही की जैसी चाँदनी छिटकी रहती है।

अर्जुन, देखिए यही इन्द्रकील पर्वत है। यह तुम्हारे पिता, इन्द्र, को बहुत ही प्रिय है। इस पर सोने की सैकड़ों कन्दरायें हैं। उनसे गोरोचना के सदृश पीली पीली दीप्ति निकला करती है। उस दीप्ति से इस पर्वत का प्रत्येक वन पीले रङ्ग से रँगा हुआ सा दिखाई देता है। इस काञ्चनी कान्ति के विस्तार के बहाने ऐसा मालूम होता है जैसे इस पर्वत ने बहुत लम्बी चौड़ी पीली पीली चादरें ही सर्वत्र बिछा दी हो।

इस पर्वत पर सख्यातीत लतायें हैं। वे खूब घनी हैं। जब वेग से वायु चलती है तब इन बल्लियों की सघनता मिट जाती है। ये दूर दूर छिटक जाती हैं। ऐसे समय मे इनके भीतर दिनकर की किरणों का अकस्मात् प्रवेश हो जाने पर बड़ी ही अद्भुत शोभा होती है। इन लताओं के पीछे सुवर्णमयी भूमि दिखाई देने लगती है। उन पर सूर्य की किरणें पड़ते ही बिजली चमकने का सा दृश्य दृष्टिगोचर होता है। जब जब वायु के प्रवाह से छिन्न-भिन्न हुई लताओं के भीतर सोने की भूमि दिखाई देती है तब तब उस भूमि पर सूर्य की किरणे पड़ते ही बिजली सी चमकने लगती है। जब तक हवा चलती है तब तक यही तमाशा हुआ करता है।

इस इन्द्रकील-पर्वत पर इन्द्र का हाथी ऐरावत भी बहुधा आता है। वह इस पर उगे हुए हरिचन्दन के वृक्षों पर अपना

गंडस्थल रगड़ रगड़ कर अपनी खुजली मिटाता है । इस कारण उसके गंडस्थल से झरनेवाले मद-जल से ये पेड भीग जाते हैं । मस्तक ज़ोर से रगड़ने के कारण सारे वृक्ष हिल भी उठते हैं । इससे इन पर रहने वाले भीमाकार भुजङ्गम भाग जाते हैं । ऐरावत के भय से बडे बड़े मतवाले हाथी तक फिर घटो इन वृक्षो के नीचे नही ठहरते । पेड़ा की दशा देख कर और उनसे निकली हुई मद-गध सूँघ कर हाथियों को यह मालूम हो जाता है कि ऐरावत इसी मार्ग से गया है, ऐसा न हो जो फिर आ जाय ।

इस पर्वत पर इन्द्रनील-मणियों का अत्यन्त आधिक्य है । उनसे वारिद-वृन्द के सदृश घनी मरीचि-मालाये निकल निकल कर इसकी कन्दराओ तक के भीतर चली जाती हैं । फल यह होता है कि इन किरणो की नीली नीली प्रभा सूर्य्य की कान्ति को आच्छादिन कर देती है । फिर, हजार प्रयत्न करने पर भी, सूर्य्य इसकी गुफाओ को प्रकाश-पूर्ण नही कर सकता । इन्द्रनील-मणियो की कान्ति के मिश्रण से उसकी कान्ति तिमिर-राशि से मिश्रित सी हो जाती है, उस पर अन्धकार सा छा जाता है । इस कारण कन्द-राओं के भीतर प्रवेश कर जाने पर भी वहाँ सूर्य्य की किरणो का कुछ भी असर नही पडता । वहाँ अन्धकार ही बना रहता है ।

अब आप महामुनि व्यासजी की आज्ञा के अनुसार इसी इन्द्र-कील पर्वत पर तपस्या करे । देखना, सदा अपने स्वभाव को शान्त रखना । शान्ति का कदापि भङ्ग न होने देना । क्षात्र-धर्म्म से विचलित न होना । शस्त्रास्त्रो से सदा सज्ज रहना । इसमे भूल न होने पावे । बड़ी सावधानी रखना । यह न समझना कि आप

सर्वभूत हितकारी हैं, अतएव असावधानता से भी आपकी कुछ हानि न होगी। सच तो यह है कि मनुष्य चाहे कितना ही शान्त और कितना ही सर्वभूत-हितेच्छु क्यो न हो, और चाहे उसके काम से संसार का कितना ही भला क्यो न होने वाला हो, जितने मङ्गल-कार्य है उनकी सिद्धि मे विघ्न बहुधा आते ही हैं। बिना विघ्न बाधाओ के ऐसे कार्य्यो मे सफलता होना बहुत कठिन है। अतएव अपने इन्द्रियरूपी घोड़ो को कुपथगामी न होने देना। उन्हे बलपूर्वक अपने वश मे रखना। तपश्चर्य्या के कारण मन मे ग्लानि और शरीर मे शिथिलता उत्पन्न होने पर, भगवान् भवानीपति आपकी श्रमजात खिन्नता और मानसिक ग्लानता दूर करे। वे आपका कल्याण करे और आपको प्रसन्न रक्खे। इन्द्र आदि लोक-पाल, कठोर तप करने के लिए, आपको यथेष्ट बल दे और आपकी इस कल्याणकारिणी तपश्चर्य्या को यथासमय यथेष्ट फलवती करे।

इतना कह कर कुवेर का सेवक वह प्रेमास्पद यक्ष तत्काल अपने घर लौट गया। उसके इन हितकारक वचनो को सुन कर पृथा-पुत्र अर्जुन कुछ देर तक उत्कण्ठा-पूर्वक मन मे कुछ सोचते रहे। बात यह हुई कि उसके चले जाने से अर्जुन को दु:ख हुआ। इसी से कुछ देर तक वे सोच-विचार मे पड गये। सज्जनो का वियोग सचमुच ही बहुत दु खदायक होता है। अतएव कोई आश्चर्य नही जो अर्जुन के सदृश समझदार और शान्त पुरुष को भी थोड़ी देर तक यक्ष के वियोग का दुःख सहना पड़ा।

यक्ष के चले जाने पर बडे ही शोभनीय शरीर वाले अर्जुन इन्द्रकील-पर्वत के ठीक नीचे पहुँच गये। यह पर्वत अर्जुन को पुरुष-

कार—पराक्रम—के सदृश मालूम हुआ। अत्यन्त बली होने के कारण जैसे अर्जुन का पराक्रम किसी और के द्वारा अनुल्लङ्घनीय था वैसे ही अपनी श्रेष्ठ सारता के कारण यह पर्व्वत भी किसी और के द्वारा अनुल्लङ्घनीय था। जैसे अर्जुन के पराक्रम की मात्रा बहुत अधिक थी, वैसे ही इस पर्वत का आकार भी बहुत बड़ा था। जैसे अर्जुन का पराक्रम शीघ्र ही और बहुत अधिक फल सिद्धि देने योग्य था, वैसे ही यह पर्व्वत भी था। जैसे अर्जुन का मन अपने पराक्रम का प्रयोग करने—उसका परिचय देने—के लिए सदा चला करता था वैसे ही इस पर्व्वत पर पहुँचने—इससे परिचय प्राप्त करने—के लिए उनका चित्त चञ्चल हो रहा था। अतएव अपने पराक्रम की बराबरी करने वाले इस पर्व्वत के पास पहुँच कर अर्जुन बहुत ही प्रसन्न हुए।

---

# छठा सर्ग।

सौम्य-स्वभाव और रुचिराकृति अर्जुन ने उस इन्द्र-कील पर्वत पर चढ़ने की तैयारी कर दी। उन्होंने देखा कि जहाँ से त्रिपथगा—तीन प्रवाहों से बहनेवाली—गङ्गाजी बह रही हैं उसके सामने ही से चढ़ने मे सुभीता होगा। यह निश्चय करके विहगराज गरुड पर जिस प्रकार विष्णु भगवान् चढ़ जाते हैं उसी प्रकार सत्पथगामी अर्जुन भी सोने के शिखरों वाले उस पर्वत पर चढ़ गये। पर्वत पर जितने वृक्ष थे सब फूल रहे थे। उन फूलो पर भौंरो के झुण्ड के झुण्ड गुञ्जार कर रहे थे। प्रशंसा-योग्य बन्दी-जनों के सदृश उन भ्रमरो ने अपने गुञ्जा-रव से अर्जुन का जय-जयकार सा किया। वायु उस समय अनुकूल बह रही थी। उसके कारण पेडो की चञ्चल शाखाओं ने अर्जुन पर चँवर सा चलाया और अपने सुगन्धित फूलों की वर्षा करके उनका अभिनन्दन सा किया।

वृक्षों के द्वारा अर्जुन का ऐसा सत्कार होता देख मन्द मन्द चलनेवाली सुख-दायिनी वायु से भी न रहा गया। जाह्नवी के जल की छोटी छोटी लहरों के टुकड़े टुकड़े करने वाली, अतएव शीतल, और कमलों के पराग-कणों को इधर उधर फैला देनेवाली,

अतएव सुवास पूर्ण, वायु ने भी—मित्र के बहुत दिनों बाद मिलने पर जैसे उसका सखा प्रीति-पूर्वक उसे गले लगा लेता है वैसे ही सामने आकर—अर्जुन का आलिङ्गन किया। उसने भी उनकी प्रेमपूर्वक सेवा की।

वायु की देखादेखी जल ने भी अर्जुन का अभिनन्दन किया। ऊँचे ऊँचे पत्थरों पर टकराने के कारण चूर्ण होकर जिसके छोटे छोटे कण चारों तरफ़ फैल रहे थे और जिसके किनारे बैठे हुए हंस और सारस आदि पक्षी मधुर ध्वनि कर रहे थे उस जल ने मानों माङ्गलिक बाजे बजाकर अर्जुन को प्रसन्न किया। अर्थात् जल के टकराने और उसके तटवर्ती पक्षियों के विराव ने मङ्गल-कारक वाद्यों का काम किया।

अर्जुन ने देखा कि भागीरथी के प्रबल प्रवाह ने देवदारु के ऊँचे ऊँचे गगन-चुम्बी वृक्षों को जड़ से उखाड़ फेका है। परन्तु वहीं, बीच बीच, छोटे छोटे टापुओं मे बेत के वृक्ष झुके हुए आनन्द से लहरा रहे हैं। उनकी इस कल्याण-कारिणी नम्रता को देख कर अर्जुन को बहुत ही सन्तोष हुआ। गर्व से उन्मत्त होकर जो अपना सिर व्यर्थ ही ऊँचा उठाये अँकड़ते हुए चलते हैं उनका गर्व चूर्ण हुए बिना नही रहता। परन्तु शालीनता और नम्रता का व्यवहार करने वाले कभी इस तरह की आपदाओं में नहीं फँसते। वे सदा ही सुख से रहते हैं। अतएव नम्रता कितनी हितकारक है, यह बात, बेतों के उदाहरण से, अर्जुन के ध्यान में अच्छी तरह आ गई।

पास ही, गङ्गा मे तैरते हुए राज-हंसों की पाँतियाँ की पाँ

अर्जुन को बहुत ही भली मालूम हुईं। ये हंस परस्पर इतने पास पास थे कि उनके बीच तिल भर भी जगह ख़ाली न थी। कमलों की पराग-रज उड़ उड़ कर इन हंसों पर इतनी पड़ गई थी कि सफ़ेद होने पर भी इनका रङ्ग बिलकुल ही लाल हो गया था। गङ्गा की ऊँची ऊँची तरङ्गों पर तैरते समय इनकी शोभा देखते ही बनती थी। ऐसा मालूम होता था कि गङ्गा ने गुलाबी रङ्ग का डुपट्टा अपने ऊपर डाल रक्खा है। ऐसी शोभा-शालिनी हंस-पङ्क्तियों को बड़ी देर तक देख कर भी अर्जुन को सन्तोष न हुआ। उनकी सुन्दरता ही कुछ ऐसी अलौकिक थी कि उन्हे चाहे कोई जितनी देर तक देखे, फिर भी वहाँ से हटने को उसका जी न चाहे। अर्जुन ने देखा कि बड़े बड़े मतवाले हाथियों ने अपने दाँतो के टेढे मेढे प्रहार से गङ्गाजी के तटों को तोड़ कर उन्हे छिन्न भिन्न कर दिया है। इस कारण उनमे विषमता आ गई है। अतएव वे अच्छे नही लगते। तथापि, दन्त-प्रहार करते समय हाथियों के गण्डस्थल से जो मद-स्राव हुआ है वह अब तक बह रहा है। इस कारण उसकी सुगन्धि से आकृष्ट होकर भौंरियाँ दूर दूर से आकर आनन्दपूर्वक वहाँ बैठी हुई हैं। यह दृश्य देख कर, तटो के टूटे फूटे होने पर भी, अर्जुन की प्रीति उन पर विशेष हो गई। उन्होंने सोचा, देखो, यद्यपि ये तीर टूट फूट गये हैं तथापि ये अब तक आने जाने वालों को अपने सुवास से आनन्दित कर रहे हैं। ठीक ही है, महात्मा यदि कारणवश किसी को पीड़ित करते हैं तो उस पीड़ा से भी पीड़ित को कुछ न कुछ लाभ अवश्य ही पहुँचता है। हाथी के सदृश महान प्राणी के द्वारा भागीरथी के तट यद्यपि छिन्न-भिन्न हो गये

तथापि उनका मद-जल गिरने से तटों मे सुगन्धि अवश्य ही आ गई। अतएव उनका छिन्न भिन्न होना एक प्रकार से उनकी गुण-वृद्धि का कारण ही हुआ।

इन्द्रकील-पर्वत के सुवर्णमय शिखरों के नीचे बहता हुआ गङ्गा का शुभ्र प्रवाह बहुत ही शोभायमान दिखाई देता था। वहाँ का जल यद्यपि शुभ्र था तथापि सोने के शिखरों का प्रतिबिम्ब पड़ने के कारण यह अरुण दिखाई देता था। जल का रङ्ग लाल हो जाने के कारण ऊँची ऊँची तरंगे चक्रवाक पक्षियों के सदृश मालूम होती थी। उन तरङ्गों को देख कर भ्रम होता था कि ये तरंगे नहीं, किन्तु जल पर चक्रवाक पक्षी ही तैरते हुए चले जा रहे हैं। ऐसे समय मे अर्जुन ने देखा कि एक चक्रवाकी बेतरह आक्रोश-विक्रोश कर रही है। बात यह थी कि वह अपने पति से दूर जा पड़ी थी और सोने के शिखरो के प्रतिबिम्ब पड़ने के कारणलहरो में उसे सैकड़ों चक्रवाक से दिखाई दे रहे थे। इस कारण उसे यही न मालूम होता था कि उनमे से उसका पति कौन है। इसीसे वह बड़े ही करुण-स्वर मे अपने पति को पुकार पुकार कर उसे ढूँढ़ रही थी। उसे ऐसा करते देख अर्जुन को बड़ा कुतूहल हुआ और उन पति-पत्नियों के पारस्परिक प्रेमातिशय का विचार करके उनका हृदय आनन्द से उच्छ्वसित हो उठा।

भागीरथी का जो भाग इन्द्रकील-पर्वत के ऊपर बहता था उसके भीतर, तह मे, सैकड़ों तरह के रङ्गीन रत्न बिछे पड़े थे। यद्यपि वे बहुत गहरे जल के भीतर थे तथापि उनके प्रतिबिम्ब भागीरथी की चञ्चल तरङ्गों पर साफ़ दिखाई दे रहे थे। मनुष्य के

हृदय मे उत्पन्न हुए हर्ष, रोष आदि विकार जैसे उसके भ्रू-भङ्ग आदि बाहरी चिह्नो से मालूम हो जाते हैं वैसे ही चित्र-विचित्र रङ्गों वाले उन रत्नो के प्रतिबिम्ब जल पर देख कर अर्जुन को पता लग गया कि यहाँ पर जल के भीतर रत्न अवश्य हैं । उन प्रति-बिम्बों ने मानों अर्जुन को आपही आप अपने अस्तित्व का समाचार साफ़ साफ़ कह सुनाया ।

अर्जुन को भागीरथी मे कही कही फेने का समूह का समूह दिखाई दिया । पत्थरो पर टकराने के कारण ऊँची उठी हुई लहरों पर वह फेन, ज़ोर से बहती हुई वायु के झोंके खा खा कर, चञ्चल हो रहा था और इधर उधर चारों तरफ़ फैल रहा था । वह केतकी के पत्ते की तरह शुभ्र और स्वच्छ था । अतएव ऐसा मालूम होता था कि उसके बहाने भागीरथी हँस सी रही है ।

एक जगह अर्जुन ने देखा कि इन्द्र का ऐरावत हाथी भागीरथी में जलविहार कर रहा है । नहाते नहाते वह अकस्मात् डुबकी मार गया । इस प्रकार यद्यपि वह गहरे जल के भीतर छिप गया तथापि मयूर-पङ्खों के गोल गोल मण्डलों के सदृश उसके मद के मण्डल पानी पर तैरते ही रहे । उसके शरीर से छूटे हुए मद के इन सैकड़ों मण्डलों को पानी पर तैरते देख अर्जुन के आनन्द की सीमा न रही । उन्हें ऐसा मालूम हुआ जैसे अपने भीतर छिपे हुए ऐरावत को देखने के लिए भागीरथी ने, मदोदक के मण्डलों के बहाने, अपनी हजारों आँखे खोल दी हैं ।

कमल-नयन अर्जुन ने देखा कि वहीं, भागीरथी के किनारे, सफ़ेद बालू पर एक सीपी पड़ी हुई है । उसका मुँह खुल गया है ।

अतएव वह बड़ी सुन्दर मालूम होती है। उससे निकले हुए शुभ्र मोती इधर उधर बिखर रहे हैं और जल के बूँद अब तक टपक रहे हैं। यह देख कर अर्जुन को वह सीपी प्रातःकाल जागी हुई नवला नायिका के सदृश मालूम हुई—ऐसी नायिका के सदृश जिसका मुख जँभाई आने के कारण खुल गया है, जिसके हार के मोती टूट कर इधर उधर बिखर गये हैं और जिसके नेत्रों से आनंद के आँसू गिर रहे हैं।

और नदियों मे मूँगे नही होते, पर इंद्रकील-पर्वत पर बहने वाली भागीरथी मे विद्रुम-लतायें भी होती हैं। एक जगह अर्जुन ने देखा कि इन लताओ की डालियाँ दूर दूर तक फैली हुई हैं और उन पर बारीक बारीक शुभ्र फेन की घनी रेखायें सी बन गई हैं। मूँगों के गुच्छे लाल, उन पर फेन की लकीरें सफ़ेद। यह दृश्य देख कर अर्जुन को स्त्रियों की दन्तकान्ति से युक्त, शृङ्गार-रसोद्दीपक, अधरोष्ठ का बार बार स्मरण हो आया। उन्हें ऐसा मालूम हुआ जैसे अरुण अधरो वाली कोई स्त्री हँस रही हो और हँसते समय उसके दाँतों की कान्ति की किरणें ओठों पर फैल रही हो।

कुछ दूर आगे चल कर अर्जुन ने देखा कि बड़े बड़े मतवाले हाथी भागीरथी मे जल-विहार करके वहीं उसके तट पर घूम-फिर रहे हैं। स्नान करते समय उनके कपोलों पर बहने वाला मद धो गया था। वह भागीरथी की चञ्चल तरङ्गों पर उस समय भी तरङ्गित हो रहा था। उसकी सुगन्धि से जलहस्ती नामक प्रकाण्ड जल-जन्तुओं को मालूम हो गया कि हाथी स्नान कर रहे हैं। अतएव मारे क्रोध के वे जल के ऊपर उठ आये और तैरने लगे।

बाहर फिरने वाले हाथियों ने उन्हें देख लिया। अतएव उन्हे भी क्रोध आ गया। उनमे से एक हाथी किनारे की तरफ बड़े वेग से दौड़ा। अपने विपक्षी पर हाथी जैसे आक्रमण करता है वैसे ही वह हाथी, उस जल-जन्तु पर आक्रमण करने के लिए, बड़ी ही कोप-पूर्ण दृष्टि से उसकी तरफ़ देखने लगा।

इतने मे अर्जुन को एक और ही विस्मय-जनक दृश्य दिखाई दिया। उन्होंने देखा कि भागीरथी के भीतर एक बहुत बड़ा साँप अकस्मात् जल के ऊपर आने की इच्छा कर रहा है। उसने बड़े वेग से जो फुफकार छोड़ी तो उसके कारण पानी की धारा ऊपर को उड़ने लगी। अतएव शरत्काल के शुभ्र अभ्रों के समान स्वच्छ जल का फ़ौवारा आकाश मे उड़ता दिखाई दिया। उसकी फुफकार मे इतना वेग था कि पानी ऊपर उड़ कर मण्डलाकार हो गया और फ़ौवारे का सादृश्य दिखाने लगा।

अर्जुन ने और भी अनेक नदियों को पार किया। वे दूर दूर से आकर भागीरथी मे मिल गई थीं। इन नदियों के वालुकापूर्ण कछार बहुत विस्तृत थे। मछलियाँ भी इनमे बहुत थीं। जल में चञ्चलता दिखाने वाली ये मछलियाँ इन नदियों की कटाक्षपूर्ण वक्र दृष्टि के सदृश थीं। विशाल जघनो वाली सुन्दर सखियों को बहुत दिन के बाद मिली हुई अपनी किसी प्राणप्रिया मैत्रिणी का आलिङ्गन करके उससे मिलते-भेटते देख, देखने वालों को जैसे कौतुक मालूम होता है उसी तरह इन मत्स्यस्फुरण-रूपी सुन्दर आँखों तथा वालुकापूर्ण विस्तृत कगारों वाली नदियों को भागीरथी से मिलते देख अर्जुन को अत्यानंद हुआ।

धीरे धीरे अर्जुन इन्द्रकील-पर्वत के ठेठ ऊपर पहुँच गये। वहाँ उन्होंने वन के मध्यभाग मे तपस्या के लिए एक ऐसी जगह पसन्द की जो इस काम के लिए बहुत ही उपयुक्त थी। उस जगह वृक्ष बहुत घने थे। वे सबके सब ख़ूब फूल रहे थे। फूलों के बोझ से उनकी डालियाँ झुक गई थीं। इस कारण वह जगह उनकी पुष्पपूर्ण शाखाओं से आच्छादित सी हो गई थी। वह स्थली विशुद्ध भी अत्यन्त ही थी। वह देखने वालों के मन की मूर्तिमती प्रसन्नता सी मालूम होती थी। उससे बढ़ कर शान्त, सुन्दर तथा छायादार स्थान उस पर्वत पर दूसरा न था। अतएव अर्जुन ने वहीं ठहर जाना उचित समझा।

इन्द्रकील-पर्वत पर जितने शिखर हैं वे सभी सुन्दर सुन्दर वनों से व्याप्त हैं। कोई शिखर ऐसा नहीं जिस पर रमणीय अरण्य न हों। ये अरण्य फूलो से लदी हुई लताओं के समूह से सदा ही शोभायमान रहते हैं। इन अरण्यों के वृक्ष भी फलो से सदा लदे रहते हैं—सभी वृक्ष अपने अपने फलो की समृद्धि से अरण्यों की शोभा बढ़ाया करते हैं। ललित लताओ और फल-फूलों से झुके हुए वृक्षों वाले इन्द्रकील-पर्वत ने उस पूर्व-कथित स्थान को दिखा कर अर्जुन को मानो वहीं तप करने के लिए उत्तेजित किया। अर्जुन ने भी सब तरह का सुभीता देख वहीं तपश्चरण करने का निश्चय किया। अतएव उन्होने वहीं आसन लगा दिया।

योग-शास्त्र मे कही गई विधि के अनुसार, सबसे श्रेष्ठ ध्येय, परमात्मा, मे उन्होंने अपने मन का लय कर दिया। मुनि-वृत्ति धारण करके उन्होने बड़ी कठिन तपस्या का आरम्भ किया। परन्तु

इस इतनी कठिन तपस्या से भी उन्हे कुछ भी कष्ट न हुआ। बात यह है कि जो मनुष्य अपने मन का निग्रह कर सकते हैं उनके लिए संसार मे कोई बात ऐसी नही जो उनको कष्ट दे सके अथवा उनके हृदय मे क्षोभ उत्पन्न कर सके। अर्जुन ने अपनी इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया। इन्द्रिय-दमन को ही उन्होंने सबसे बड़ा सुख समझा। दया, दाक्षिण्य आदि अपने पवित्र गुणों से उन्होने पापमूलक अज्ञान का नाश कर डाला। संसार के सन्ताप की निवृत्ति को ही अद्वितीय सुख समझने वाला और अपने निर्म्मल कान्ति-समूह से अन्धकार का नाश करने वाला शुभ्र चन्द्रमा जिस तरह एक एक कला से शुक्ल पक्ष मे प्रति दिन बढ़ता है उसी तरह अर्जुन भी अपने पूर्वोक्त गुणो से अपनी तपश्चर्या की एक एक कला प्रति दिन प्रकट करते हुए अपना पुण्य-पुञ्ज बढ़ाने लगे। दिन पर दिन उनके पापरूपी अज्ञान का नाश और पुण्यरूपी ज्ञान का उदय होने लगा। ईश्वरीय तत्वज्ञान की सहायता से काम, क्रोध आदि षड् रिपुओं को उन्होने जीत लिया। इन विकारो से अपने मन को बिलकुल ही खींच कर उसे उन्होने अखण्ड-शमरूपी सुख के अनुभव मे लगा दिया। उन्होने देखा कि इन्द्रिय-सम्बन्धी विषयों की सेवा से होने वाला सुख कोई सुख नहीं; वह तपश्चर्या का सब से बड़ा विघातक है। अतएव ऐसे सुख का उन्होंने घृणापूर्वक तिरस्कार किया। ऐसा होना ही चाहिए था। ईश्वर-सम्बन्धी तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति से जिसे शान्ति-सुख सुलभ हो जाता है वह विषय-सुखों की ओर कभी दृष्टिपात नहीं करता।

योग-शास्त्र में वर्णन किये गये यमों और नियमों आदि का

विधिपूर्वक अभ्यास करके अर्जुन ने अपना तपश्चरण जारी रक्खा। हिंसा आदि जितनी बाधक बाते थीं सब उन्होंने छोड़ दीं। अपने इष्टदेव इन्द्र का ध्यान, उसके विशिष्ट मन्त्रो का जप, तथा उसको नमस्कार करके—मन से, वाचा से, काया से—सभी तरह वे उसे प्रसन्न करने की चेष्टा मे लग गये। इस दशा को पहुँचने पर वे अपने स्वाभाविक वीर-रस और अभ्यास-जन्य शान्त-रस, इन दोनो रसों के तेज से युक्त हो गये। इन दोनों तेजो के योग से उनमे विलक्षण तेजस्विता का आविर्भाव हो गया। शरीर उनका साँवला था। केश भी उनके मरकत मणियों के समान श्याम थे। परन्तु बार बार स्नान करने और उनमे तेल, फुलेल आदि न लगाने से उनकी जटाये बन कर बड़ी बडी हो गई। धीरे धीरे इन जटाओ का रङ्ग पीलापन लिये हुए भूरा हो गया। अतएव इस प्रकार का लम्बा लम्बा जटा-भार उन काले काले तमाल-वृक्षों के सदृश मालूम देने लगा जिनका ऊपरी भाग सूर्य्य की काञ्चनी किरणें पड़ने से पीला हो जाता है। अर्जुन का जटाभार देखकर ऐसा भास होने लगा जैसे तमाल-वृक्षों के ऊपर सूर्य्य की किरणें चमक रही हो।

अर्जुन ने रजोगुण का सर्वथा ही त्याग कर दिया। उनके हाथ में यद्यपि शस्त्र थे—शस्त्र धारण किये हुए ही यद्यपि वे तपस्या कर रहे थे—तथापि उनके अन्तःकरण से दुष्ट बुद्धि, दुष्ट वासनायें और हिंसादिक दुर्वृत्तियाँ बिलकुल ही दूर हो गईं। उनका आचरण इतना शुद्ध हो गया कि सदाचार में वे बड़े बडे ऋषियों और मुनियों से भी बढ़ गये। उनको शस्त्र धारण किये

हुए देख कर भी, उनके अन्तःकरण की शुद्धता का ज्ञान पशुओं तक को हो गया । मृग तक उन्हे देख कर प्रसन्न होने और उनके पास निर्भय चले जाने लगे । शम, दम और दया आदि गुण हैं भी ऐसे ही । वे किसे नहीं प्रसन्न कर सकते ? ऐसा कौन है जो उन पर लुब्ध होकर उनके वशीभूत न हो जाय ? ये गुण तो प्राणिमात्र को रममाण करने की शक्ति रखते हैं ।

अर्जुन के अनेक अलौकिक गुणों पर मुग्ध होकर प्रत्यक्ष तपस्या को भी उन पर दया सी आई। उसने देखा कि मेरा अनुष्ठान करते करते अर्जुन बहुत ही दुबले हो गये हैं । अतएव जो अपने ऊपर इतना प्रेम प्रकट करे उसकी उचित सहायता करना ही मेरा कर्त्तव्य है । यह सोच कर ही मानो तपस्या ने अर्जुन की परिचर्य्या आरम्भ कर दी—उसने अर्जुन की कठिनाइयों को बहुत कुछ कम कर दिया । तपस्या के द्वारा की गई सेवा का फल तत्काल ही दिखाई देने लगा । उष्णता अधिक होने पर, बिना बादलों के भी आकाश से बूँदें पड़ने लगीं । इससे उड़ी हुई धूल बैठ गई और उष्णता की बाधा कम हो गई । सूर्य्य ने भी ऋतु-विशेष की परवा न करके, ग्रीष्म मे भी, अपने तेज को कम कर दिया । उसने अपनी किरणों की कान्ति इतनी घटा दी कि शीत-काल का अनुभव होने लगा । सुगन्धित और अनुकूल वायु मन्द मन्द चलने लगी । इन कारणों से अर्जुन का तपोजन्य क्लेश और मानसिक मलिनत्व कम हो गया । तपस्या के प्रभाव से जल, वायु और सूर्य्य ही ने अर्जुन पर कृपा न की, वृक्षों तक ने उनकी सेवा की । फूल तोड़ने के लिए अर्जुन को अपने पास आया देख

उन्होंने अपनी अपनी डालियाँ झुका दी और पल्लवरूपिणी अञ्जलि मे फूल ले लेकर वे अर्जुन को अर्पण करने लगे। धरती तक ने उन पर कृपा की। रात को जिस जगह वे सोते थे उस जगह भूमि ने कोमल कोमल घास उत्पन्न करके उसे हरे बिछौने से आच्छादित सा कर दिया।

ये सब बातें अर्जुन के लिए भावी शुभ की सूचक थीं। इन सूचनाओं—इन अनुकूलताओं—से उन्होने जान लिया कि मेरी तपश्चर्य्या अवश्य ही फलवती होगी। ये शकुन उस तपश्चर्य्या के पुष्प-सदृश हैं। परन्तु यह जान कर भी उन्होने अपने मन मे आश्चर्य्य का लेश भी न आने दिया। यही उचित भी था। क्योंकि इस प्रकार की शुभ सूचनाओं पर आश्चर्य प्रकट करने और ख़ुशी मनाने से कल्याण-प्राप्ति मे बाधा उपस्थित होने का डर रहता है। खेतिहर जानता है कि मैंने जब बीज डाला है और उगे हुए पौधों की जब मैं अच्छी तरह सेवा कर रहा हूँ तब फल-प्राप्ति अवश्य ही होगी। अतएव पौधो मे फूल आया देख धान्य-रूपी फल की प्राप्ति की आशा से वह विस्मय नही करता। वह जानता है कि फूल आना और बाले निकलना स्वाभाविक बात है। इसी तरह पृथ्वी, सूर्य्य आदि की अनुकूलता देख कर अर्जुन को भी आश्चर्य्य न हुआ। ठीक भी है। जितेन्द्रिय जन फल-प्राप्ति के सूचक अनुभव होने पर भी अपना धैर्य्य नही छोड़ते; वे अपने मन मे विस्मय आदि विकारो को नहीं उत्पन्न होने देते। क्योंकि विकार उत्पन्न होने से तपोभङ्ग का डर रहता है।

इन्द्रकील-पर्वत पर इन्द्र का अधिकार था। इन्द्र ही उसका

स्वामी था। इस कारण इन्द्र ने उस पर्वत के वनों और उपवनों की रक्षा के लिए कुछ लोग नियत कर रक्खे थे। उन रक्षकों ने देखा कि अर्जुन ने थोड़े ही समय मे अत्यधिक पुण्य-सञ्चय कर लिया है। जितना तपोबल—जितना तपोवैभव—इतने थोड़े समय मे और किसी को नहीं प्राप्त हो सकता उतना, बिना किसी विघ्न-बाधा के, इसे प्राप्त हो गया है। इस कारण उन लोगो को बड़ा विषाद हुआ। वे आश्चर्य से घबरा से गये। उन्होने यह सब हाल इन्द्रकील के स्वामी इन्द्र को सुनाने का निश्चय किया। अतएव वे तत्काल ही वहाँ से चल दिये और अमरावती मे इन्द्र के भवन के द्वार पर जा पहुँचे।

उन्होंने अपने आने की सूचना इन्द्र को दी। आज्ञा पाते ही वे इन्द्र के पास उपस्थित हुए और उसे सादर प्रणाम किया। बैठने पर उन्होंने सोचा कि शिष्टाचार की बाते देर तक करके व्यर्थ समय खोने की आवश्यकता नहीं। इन्द्रकील-पर्वत की रक्षा का जो काम हमे सौंपा गया है उसमे वह तपस्वी बेहद विघ्न डाल रहा है। अतएव औपचारिक बातें न करके उस विघ्न की बातें, झटपट, थोड़े मे, कह देनी चाहिए। यह निश्चय करके उन रक्षकों ने अर्जुन की तपस्या की कथा का कथन बड़े ही अच्छे ढंग से आरम्भ किया। वे बोले—

हे महेन्द्र, आपके इंद्रकील-पर्वत पर एक निष्पाप पुरुष कहीं से आकर बड़ी ही घोर तपस्या कर रहा है। उसने अपने शरीर पर परम पवित्र वल्कल-वस्त्र पहन रक्खे हैं। वह महा तेजस्वी है। देखने से मालूम होता है कि या तो वह सूर्य्य का अवतार है, या

अग्नि का, या चंद्रमा का। वह कोई ऐसा वैसा साधारण मनुष्य नहीं। किसी बहुत बड़े विजय की इच्छा से वह तप कर रहा है। उसकी घोर तपश्चर्या से पृथ्वी तप सी रही है। तपस्या के प्रभाव से उसका शरीर इतना तेजस्क हो गया है कि पृथ्वी उसके तेज को सहन ही नही कर सकती। वह उसके तेज से जल सी रही है। उस तपस्वी की भुजायें भयङ्कर भुजङ्गो के सदृश लम्बी लम्बी हैं। वह ऐसा विकट धनुष धारण किये हुए है, जिसे देख कर उसके शत्रु सहज ही भयभीत होकर धैर्य-च्युत हो सकते हैं। परन्तु ऐसा वीर-वेश और ऐसा भयानक धन्वा धारण करके भी उसका आचरण बहुत ही पवित्र है। अपने विशुद्ध आचरण से तो वह पतित-पावन मुनियों को भी लज्जित कर रहा है। उसकी दिनचर्या और उसका आचार-व्यवहार मुनियों से भी बढ़ा चढ़ा है। उसकी सभी बातें अलौकिक हैं। उसके अद्वितीय गुणों को देख कर पृथ्वी आदि पञ्च-महाभूत तक उसकी सेवा कर रहे हैं। पर्वत पर जो दृश्य हम लोगों ने देखा है उससे तो यही मालूम होता है। देखिए, उसकी तपस्या के समय वायु बहुत ही सुख-कारक बहती है। भूमि हरे हरे कोमल तृणों से आच्छादित हो जाती है। धूल उड़ने पर उसे शान्त करने के लिए बिना बादलों के ही आकाश से जल-वृष्टि होने लगती है। इसी से हम लोगो को यह कहने का साहस होता है कि और प्राणियों की तो कथा ही नहीं, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश भी उसकी परिचर्य्या मे तत्पर से हैं।

शिष्य जैसे एक दूसरे का द्रोह न करके अपने आचार्य्य की

सेवा मन से आदरपूर्वक करते हैं वैसे ही इन्द्रकील-पर्वत के सारे पशु, आपस की स्वाभाविक शत्रुता भूल कर, उस पुरुष की सेवा कर रहे हैं । प्राणी ही नहीं, जड़ वृक्ष भी अपनी अपनी डालें झुका कर उसके हाथों के पास इसलिए पहुँच जाते हैं जिससे उसे फूल तोड़ने के लिए हाथ न ऊपर उठाना पड़े ।

हे इन्द्र, हम लोगों को ऐसा मालूम होता है कि इन्द्रकील-पर्वत जैसे आपके अधीन है वैसे ही वह उस पुरुष के अधीन सा हो गया है । वह भी उसका उसी तरह वशवर्ती जान पड़ता है जिस तरह कि आपका है । इसे आप अत्युक्ति न समझिए ।

उसकी तपश्चर्य्या ऐसी वैसी नहीं । वह बहुत ही श्रमसाध्य । परन्तु आश्चर्य्य तो यह है कि यद्यपि तपःसाधना में वह अत्यधिक श्रम करता है तथापि उसके शरीर पर श्रम का कोई चिह्न नहीं दिखाई पड़ता । उसकी मुखचर्य्या और चेष्टा से यही सूचित होता है कि चाहे जितना श्रम वह करे उससे वह थकता ही नहीं । इससे सिद्ध है कि वह महाशक्ति-सम्पन्न है । क्योंकि यदि वह कोई साधारण शक्ति वाला होता तो इतना श्रम कर ही न सकता । उसका शरीर भी बहुत ही सुदृढ़ और लाँबा है । अतएव सूचित होता है कि वह कोई विजयी पुरुष है । तपोरत होने के कारण यद्यपि उसने शान्त वृत्ति का अवलम्बन किया है—हिंसा और पर-पीड़न के भाव को यद्यपि वह पास नहीं आने देता—तथापि उसके चेहरे से स्वाभाविक शौर्य टपक रहा है । अतएव पहले पहल उसका दर्शन होने पर लोगों के मन में भय उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता । उसका आकार ही ऐसा है—

उसकी शौर्य्य-सूचक चेष्टा ही ऐसी है—कि हृदय मे आप ही आप भय उत्पन्न हो जाता है। हम नही कह सकते कि वह तपस्वी किसी ऋषि के कुल मे उत्पन्न हुआ है, अथवा किसी दुर्दान्त दैत्य के कुल मे उत्पन्न हुआ है, अथवा किसी प्रतापी राजा के कुल मे उत्पन्न हुआ है। वह चाहे जो हो—चाहे जिस वंश मे उत्पन्न हुआ हो—आपके रक्षित पर्वत पर तपश्चरण करने वाले उस तेज पुञ्ज पुरुष का यथार्थ रूप हम लोग नहीं जान सके।

महाराज, बस हम लोगो को इतना ही निवेदन करना है। हम मे बुद्धि ही कितनी है? जितनी बुद्धि हम मे है उसके अनुसार हमने अपना निवेदन कह सुनाया। ऐसा करने मे यदि हमारे मुँह से कोई बात असत् निकल गई हो तो आप कृपापूर्वक उसके लिए हमे क्षमा करे। एक और कारण से भी हम लोग आपकी क्षमा के पात्र हैं। घोर तपश्चर्य्या से बड़े से भी बड़े कार्य सिद्ध हो सकते हैं। उसकी बदौलत तपस्वियो को इन्द्रासन तक मिल सकता है। यह बात आपसे छिपी नही। तपस्या के गुरुतर परिणाम का विचार करके ही हम लोगों ने सब बाते आपसे साफ़ साफ़ कह दी हैं। निर्बोधता के कारण न सही, कार्य की गुरुता के कारण भी हम लोग क्षमा किये जाने योग्य हैं। हम से जैसा बना हमने कह सुनाया। उचित-अनुचित के जानने वाले आप हैं। हम बेचारे वनवासी असभ्य इन बातो को क्या जानें? ये तो प्रवीण बुद्धि वाले पण्डितो ही के जानने योग्य हैं। वही अपना वक्तव्य सुन्दर, सुसम्बद्ध और संस्कृत भाषा मे कह सकते हैं, हम लोग नही।

वन-रक्षकों के मुख से अपने प्यारे पुत्र अर्जुन की तपस्या का वृत्तान्त सुन कर इन्द्र को मन ही मन परमानन्द हुआ। परन्तु उसने उस आनन्द को अपने हृदय के भीतर ही छिपा रक्खा, उसे प्रकट न किया। महात्माओं का स्वभाव ही ऐसा होता है। वे कभी नीति-मार्ग का उल्लङ्घन नहीं करते। सभी बातों में वे लोकाचार का अनुसरण करते हैं। इसी से इन्द्र ने भी अपने मन की बात प्रकट करना उचित न समझा। उसने ज़रा देर समाधिस्थ होकर अपनी अन्तर्दृष्टि से यह तत्काल ही जान लिया कि अर्जुन मेरा सच्चा भक्त है। वह बड़े ही भक्ति-भाव से तपस्या कर रहा है। तथापि उसने लोकाचार का पालन करना ही अपना कर्त्तव्य समझा। अतएव सब बातें जान कर भी वह अजान सा बन गया। उसने ऐसा भाव दिखाया जैसे वह अर्जुन और उनकी तपस्या के उद्देश से सर्वथा अनभिज्ञ हो। उसने सोचा कि अर्जुन तपश्चरण तो कर रहा है, पर उसमें इन्द्रियनिग्रह की शक्ति भी है या नहीं, इस बात की जाँच करके उसकी जितेन्द्रियता का हाल सब लोगों पर प्रकट कर देना चाहिए। इसी उद्देश से उसने वहाँ बैठी हुई देवाङ्गनाओं को सुना कर इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

देवाङ्गनाओ, मनोभव की सहायता से विजय-प्राप्ति के लिए तुम से बढ़ कर और कोई अस्त्र मेरे पास नहीं। दूसरों के मर्म-स्थल छेदने वाले और भी शस्त्र हैं अवश्य, परन्तु तुम में उन सब अस्त्रों से विशेषता है। और कोई अस्त्र ऐसा नहीं जो तुम्हारे सदृश कोमल हो। वे सब के सब कठोर हैं। और अस्त्र अनेक प्रकार के हैं; उन सबकी मार भी जुदा जुदा तरह की है। परन्तु तुम लोगों

की मार एक ही सी है। तुम्हारे रूप-रङ्ग मे भी भिन्नता नहीं, तुम सब एक ही प्रकार के अस्त्र-तुल्य हो। और अस्त्र स्थूल हैं, इस कारण उनकी चोट निशाने के इधर उधर भी लग जाती है। परन्तु तुम वैसी नही। तुम सभी सूक्ष्म हो। अतएव तुम्हारी मार ठीक निशाने पर ही लगती है। और शस्त्र बहुत दूर तक प्रहार नही कर सकते, परन्तु तुम्हारी मार की दूरी परिमित नही। लक्ष्य चाहे जितनी दूर हो, तुम उसे सहज ही छेद सकती हो। इसके सिवा तुम मे एक विशेषता और भी है। तुम्हारी मार कभी खाली नही जाती। तुम्हारा लक्ष्य अमोघ है। दूसरे अस्त्रो की बात ऐसी नही, वे कभी कभी अपना निशाना चूक भी जाते हैं। और अस्त्रों की मार से बचने के उपाय भी हैं, परन्तु तुम्हारी मार से बच जाने का कोई उपाय नहीं। तुम्ही कहो, क्या जैसे गुण तुम मे हैं वैसे और भी किसी शस्त्रास्त्र मे हैं? मेरी समझ मे तो किसी मे नही। इसी से मैंने तुम्हे, अपना अद्वितीय अस्त्र समझ कर ही, अपने सेनानी मनोभव के हाथ मे दिया है।

मैं साधारण तपस्वियो की बात नही करता। जन्म, जरा और मृत्यु से सदा के लिए छूट जाने की इच्छा रखने वाले बड़े बड़े योगियो की बात कहता हूँ—ऐसे योगियो की बात जिन्होंने सारे तमो-गुण का नाश कर दिया है और जिन्होने ज्ञानरूपी सलिलोद्रेक से अपने रजोगुण को भी धो बहाया है। ऐसे महात्माओं—ऐसे योगियो—के भी ज्ञानरूपी जल को तुम अपनी आँखों के कटाक्ष-रूप अञ्जलि से एक क्षण मे पी जाने का सामर्थ्य रखती हो! बड़े बड़े ज्ञानियों और ध्यानियों का सारा ज्ञान

तुम्हारे एक छोटे से कटाक्ष से ही न मालूम कहाँ उड़ जाता है। जब तुम्हारे जरा देख लेने से ही योगियों की भी वृत्ति चञ्चल हो जाती है तब दोनो आँखों से अच्छी तरह देखने पर उनकी क्या दशा हो सकती है, यह तुम स्वयं ही जानती हो।

ब्रह्मा ने एक बहुत बड़े मतलब से ही तुम्हारी उत्पत्ति की है। संसार मे चद्र और कमल आदि मे जो लावण्य और जो सौन्दर्य्य था उस सबको एकत्र करके उसी से उसने तुम्हे बनाया है। यही कारण है जो स्वर्ग को इतनी श्रेष्ठता प्राप्त हुई है। स्वर्ग को श्रेष्ठत्व देने के लिए ही, तुम्हे बनाने के बहाने, ब्रह्मा ने त्रिभुवन के रूप-लावण्य को यहाँ ला रक्खा है। यदि तुम सब इस लोक, अर्थात् स्वर्ग, मे न होती तो क्यों कोई इसे प्राप्त करने की इच्छा करता! तो यहाँ और धरा ही क्या था? तुम्हारे ही कारण लोग नाना प्रकार की, कठिन से भी कठिन, तपस्यायें करके इस लोक की प्राप्ति करना चाहते हैं। तुम्हारे इस महत्व का कहीं ठिकाना है! अतएव, अप्सराओ, जाव और उस तपस्वी की तपस्या भङ्ग कर आओ। तुम्हीं अकेली न जाना। गाने-बजाने मे अत्यन्त कुशल गन्धर्वों को भी अपने साथ लेती जाना। इस बात का सन्देह अपने मन मे कदापि न करना कि तुम मे उसकी तपस्या भङ्ग करने की शक्ति नहीं। विषय-सुखो से जिन्होने अपने मन बिलकुल ही खींच लिये हैं ऐसे बड़े से बड़े मुमुक्षुओ—मोक्षमार्गियो—के भी आसन तुम डिगा सकती हो। वह बेचारा तपस्वी, जिसकी तपस्या का हाल तुम ने अभी अभी वन-रक्षको से सुना, क्या चीज़ है! वह तो एक साधारण तपस्वी है। वह तो विषय-सुखों की प्राप्ति के लिए ही तपस्या

कर रहा है। ऐसे मनुष्य को जीत लेना तो तुम्हारे लिए एक बहुत छोटी बात है। वह विषय-सुख की ही इच्छा रखता है, इस बात को तुम बिलकुल सच जानो। इसमे संशय के लिए जगह ही नहीं। वह संसार-सागर से पार उतरने—सांसारिक प्रपञ्चो से मुक्त होने—की कामना से तपश्चरण नही कर रहा है। वह तो शत्रुओ को मार कर विषय-सुखों की प्राप्ति ही के लिए तपस्या कर रहा है। हाथ मे धनुष धारण करके कोई मुक्ति-मार्ग नही ढूँढ़ता! कहाँ मुक्ति मार्ग, कहाँ हाथ मे भीषण धन्वा! दोनो मे कुछ भी सम्बन्ध नहीं।

मैं तुम से एक बात और भी कह देना चाहता हूँ, वह यह कि तुम उस तपस्वी से ज़रा भी न डरना। वह, कुपित होने पर, और तपस्वियों की तरह शाप देने वाला तपस्वी नहीं। उससे शाप-ग्रस्त होने का रत्ती भर भी डर नही। रक्षकों के वर्णन से मालूम हुआ की वह बड़ा पराक्रमी है। अतएव कीर्त्ति की रक्षा करने वाले पराक्रमी पुरुष अबलाओ पर कभी हाथ नही उठाते। उनके मन मे स्त्रियों का घात करने की प्रवृत्ति जागृत ही नही होती। यही उचित भी है। स्त्रियों को मारना शूर-वीरों के लिए बडे ही कलङ्क की बात है। इस कारण उस पुरुष की तेजस्विता देख कर भी उससे तुम्हें शाप का कुछ भी भय नही।

इस प्रकार, भरी सभा मे, सारे देवताओ के सामने ही, इंद्र ने उन अप्सराओं की प्रशंसा करके उनके सम्मान की वृद्धि की। इन्द्र की इस प्रशंसा से उन्हे बहुत सन्तोष हुआ। इन्द्र ने उनकी सम्मान-वृद्धि ही न की, उन्हे कुछ काम भी बताया। इससे उनका

उत्साह और भी बढ़ गया। उनके मुख-कमल खिल उठे। वे पहले से भी अधिक सुन्दर मालूम होने लगी। स्वामी से प्राप्त हुआ गौरव और उत्साह सेवक के तेज को अवश्य ही बढ़ा देता है। सेवक के लिए इससे बढ़ कर तेजोवर्धक बात और क्या हो सकती है?

अपने स्वामी की आज्ञा को सिर-आँखो पर चढ़ा कर अप्सराओ ने इन्द्र को बड़े आदर से प्रणाम किया। फिर उन्होने अपने अपने घर की राह ली। जिस समय उत्साह, सत्कार और सम्मान से सन्तुष्ट हुई देवाङ्गनाये जाने लगी उस समय पयोधर-भार से झुकी हुई उनकी शरीर-लतिकाये देख कर इन्द्र को अपूर्व आनन्द हुआ। अपनी शोभा से चञ्चल कमलो की शोभा को मात करनेवाले, और, आश्चर्य्य के कारण निश्चल, एक नही, अपने सहस्र नेत्रो से भी उन्हे इकटक देखने पर भी, देवेन्द्र को सन्तोष न हुआ। जब तक वे आँखो की ओट न हो गई तब तक वह उन्हे टकटकी लगाये देखता ही रहा।

---

# सातवाँ सर्ग।

अमरावती से अप्सरायें अपनी अपनी सवारी पर शीघ्र ही चल दीं। उनके साथ सुरेश्वर इन्द्र के सचिव गन्धर्वों ने भी प्रस्थान कर दिया। अच्छे अच्छे बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहने हुए सब लोगों ने इंद्रकील-पर्वत की राह ली। कोई रथ पर सवार हुआ, कोई हाथी पर, कोई घोड़े पर। उस समय मृदङ्गों का तुमुल नाद अलकापुरी के भवनों की खिड़कियों और झरोखों की राह से उनके भीतर घुस गया। उसे सुन कर पौर जनों को विदित हो गया कि गन्धर्वों को साथ लिये हुए सुराङ्गनाओं के समूह ने प्रस्थान कर दिया। इस कारण उसे देखने के लिए इन्द्र की उस देदीप्यमान पुरी की प्रत्येक सड़क और प्रत्येक गली में देवताओं के झुण्ड के झुण्ड बड़ी उत्कण्ठा से आकर एकत्र हो गये। जिधर देखो उधर ही देवताओं का समुद्र सा उमड़ आया। इतने में सुराङ्गनाओं की सवारी ने अमरावती से निकलकर आकाश-मार्ग की राह ली। वह सारी सेना उड़ कर आकाश में बहुत ऊँची चली गई और सूर्य्य-मण्डल के ऊपर से जाने लगी। इस कारण सुर-नारियों के सिर पर धारण किये गये छाते व्यर्थ हो गये। उनकी आवश्यकता ही न रही। वे ऊपर, सूर्य्य-मण्डल नीचे। उन तक सूर्य्य की धूप पहुँचे कैसे? इसीसे छाता लगाना बेकार हो गया।

सुर-सुन्दरियों की सेना के प्रयाण के अनन्तर बडे वेग से उलटी हवा चलने लगी । उसने अपने झकोरो से कोमलाङ्गी सुराङ्गनाओं के अङ्ग झकझोर डाले । चलने के परिश्रम से उनके नेत्र-कमल मलिन हो गये । उलटी वायु बहने को अपशकुन समझ कर उन बेचारियों का कलेजा धड़क उठा । अतएव उनके मुख-कमल कुम्हला गये—वे फीके पड गये—और कपोलों से तारुण्य के लावण्य की लाली उतर गई । हाँ, जब कभी वह सेना सूर्य्य-मण्डल के नीचे हो जाती और सूर्य्य की प्रखर किरणे उन सुराङ्गनाओ के कपोलो पर पडती तब सूर्य के उत्ताप से उनके मुखो पर कुछ लालिमा अवश्य आ जाती । वह लालिमा कुछ कुछ वैसी ही मालूम देती जैसी कि तारुण्य-मद से उत्पन्न हुई लालिमा होती है। पर यथार्थ मे वह तेज़ धूप ही के कारण उत्पन्न हुई थी, वह लावण्य-लालिमा न थी ।

अप्सराओ के रथों मे बडे ही तेज़ घोड़े जुते हुए थे। वे रथों को वायुवेग से खींचते चले जा रहे थे । रथ जब भूमि पर चलते हैं तब उनके पहिए घूमते रहते हैं । पर आकाश शून्य है । वहाँ पहियों का स्पर्श किसी वस्तु से न होने के कारण सुराङ्गनाओ के रथ यों ही उड़ते हुए चले जाते थे, उनके पहिए जरा भी न घूमते थे । अतएव ऐसा मालूम होता था कि आकाश-मार्ग से जाने वाले वे रथ नहीं, विमान हैं, जो सन्नाटे मे चले जा रहे हैं । आकाश मे कोई वस्तु टिक नहीं सकती। वह नीचे गिर जाती है। पर सुराङ्गनाओं के रथों के विषय मे गिरने की शङ्का नहीं हो सकती । वे देवताओ के प्रभाव से बिना विघ्न-बाधा के अन्तरिक्ष मे उड़ते चले जा रहे थे ।

कुछ दूर जाने के बाद मार्ग-श्रम के कारण सुराङ्गनाओं के शरीर पर पसीने के बूँद दिखाई देने लगे। उन बूँदों ने सुगन्धित उबटन लगे हुए सुर-नारियो के वक्ष.स्थलों पर रोमाञ्च उत्पन्न कर दिया—पसीना आ जाने से उनके रोंगटे खड़े हो गये। इधर यह हुआ, उधर ललाट पर लगे हुए कुंकुम-तिलक पुछ गये। मुख पर भी पसीने के बडे बड़े बूँद मोतियों के समान झलकने लगे। पर इससे उन नारियो की शरीर-शोभा और सुन्दरता कम न हुई। वह उलटा बढ गई। बात यह है कि जो वस्तु स्वभाव ही से रम्य है उस पर उत्पन्न हुए विकार भी शोभा ही देते हैं। उनसे स्वाभाविक शोभा की हानि नहीं होती।

अप्सराओं के रथो पर चमकते हुए पीले वस्त्र की पताकाये आकाश मे बड़े वेग से उडती हुई जा रही थीं। वे सब एक ही आकार की थी और एक ही सीध मे, एक के बाद एक, वायु मे लहराती हुई उड़ रही थीं। इस कारण उन पताकाओं की पाँति कसौटी पर कसी गई सोने की लकीर के सदृश मालूम होती थी। वह दृश्य बहुत ही अद्‌भुत था। जान पड़ता था, मानो कोई दीप्तिमती उल्का आकाश मे चली जा रही है। कान्ति फैल जाने के कारण पताकाओ के वस्त्रो की लम्बाई-चौड़ाई जितनी थी उससे भी अधिक मालूम होती थी। गज़ भर लम्बे वस्त्र दो गज़ लम्बे जान पड़ते थे।

देवाङ्गनाओं के अङ्ग बहुत ही सुकुमार थे—इतने सुकुमार कि फूलों की माला की सुकुमारता उनके सामने कोई चीज ही न थी। परन्तु इतनी सुकुमार होने पर भी, सूर्य की किरणों का ताप उन्होंने सह लिया। यह देख कर देवाङ्गनाओं के साथी गन्धर्वों

को बड़ा विस्मय हुआ। उन्हो ने कहा—कहाँ यह सुकुमारता और कहाँ यह सहिष्णुता! यह दृश्य देख कर उन्हे सृष्टि-निर्माण के सम्बन्ध मे ब्रह्मा की चतुरता का अच्छा अनुभव हुआ। उन्हे मालूम हो गया कि सृष्टि-रचना मे ब्रह्मा ने ऐसी चतुरता दिखाई है जो बड़ी ही कल्याणकारिणी है।

देवाङ्गनाओ के इस समूह मे बड़े बडे मत्त मतङ्गज भी थे। उन पर सोने की मोटी मोटी ज़ंजीरे पडी हुई थी और सिन्दूर के चित्र विचित्र बेल-बूटे कढे हुए थे। ये सोने की जंजीरे और सिन्दूर की चित्रावलियाँ सूर्य की धूप मे ख़ूब चमक रही थी। मत्त होने के कारण सुर-गजों के शरीर से मदोदक के बूँद भी टपकते चले जा रहे थे। अतएव वे उन वारिवर्षी मेघो के सदृश मालूम होते थे जिन पर रह रह कर बिजली चमक रही हो, और जिन पर सर्वत्र बाल-सूर्य्य की कोमल किरणे पड़ रही हो। बात यह कि वे हाथी मेघों के सदृश काले काले थे, उनका मदस्राव वृष्टि-पात के सदृश था, उन पर सिन्दूर की पत्र-रचना बाल-सूर्य्य की धूप के सदृश थी, और उन पर पडी हुई सोने की चमकती हुई ज़ंजीरे विद्युल्लता के सदृश थीं।

देवाङ्गनाओं की यह इतनी बड़ी सेना, बहुत देर तक चलने के बाद, सूर्य्य के अत्यन्त दु:सह मण्डल के पास का प्रदेश पार कर पाई। चलते चलते वह मन्दाकिनी के तट पर जा पहुँची। उसमे उस समय मन्द मन्द लहरे उठ रही थी। इस कारण वह बहुत ही रम्य दिखाई देती थी। जल उसका नीला था। अतएव वह दिगङ्गनाओं के सिर पर सँवारी हुई वेणी के सदृश विराज रही थी।

सवारी पर भी चलने से बहुत श्रम होता है। देवाङ्गनायें तो अत्यन्त ही सुकुमार थी। वे तो और भी थक गई। परन्तु आकाश-गङ्गा के पास पहुँचने पर उन्हे बहुत आराम मिला। उस नदी की तरङ्गो को छू कर आने के कारण शीतल हुए पवन का स्पर्श होते ही उनका श्रम-जनित सन्ताप बहुत कुछ दूर हो गया। वहाँ की वायु शीतल ही न थी, वह सुगन्धित भी थी। क्योंकि, मदमत्त भौंरो के समूह से घिरे हुए और पराग के कणों से परिपूर्ण कमलों को कम्पायमान करने के कारण उसमे सुगन्धि भी आ गई थी। कमलों से उड़े हुए पराग के कण उसमें मिल गये थे। इसी से वह सुगन्धिपूर्ण हो गई थी। ऐसी शीतल और सुगन्धित वायु के सेवन से अपनी थकावट दूर करने के लिए देवाङ्गनायें कुछ देर तक मन्दाकिनी के किनारे ठहर गई। उनके विमान—उनके रथ—तो आकाश ही मे खड़े रहे, उनके घोड़े अवश्य खोल दिये गये। हाथियों को भी नदी मे घुसने की अनुमति दे दी गई और घोड़ो को भी। उन्होने मन्दा-किनी मे खूब जल-विहार किया। उसे मथ कर उन्होंने क्षुब्ध कर डाला। उनके मथने से मन्दाकिनी मे बडी बड़ी तरङ्गे उठीं। वे पास ही आकाश मे खड़े हुए रथों की पंक्ति से जा टकराई और टक्कर खा कर वहाँ से फिर लौट आई। इस प्रकार तरङ्गों के टकराने और लौटने का अनुभव मन्दाकिनी को पहले ही पहल हुआ। बात यह है कि आकाश मे बहने के कारण मन्दाकिनी मे तट तो हैं ही नहीं। अतएव, इससे पहले उसे कभी ऐसे अनुभव का अवसर ही न आया था। पर देवाङ्गनाओं के रथो ने, आकाश

मे कुछ दूर पर खड़े रह कर, तट का काम दिया। इसी से वहाँ तक पानी पहुँच कर फिर नदी की ओर लौट आया।

कुछ देर तक विश्राम करने के अनन्तर उस सैन्य-समूह ने फिर वहाँ से प्रस्थान कर दिया। सूर्य्य आदि ग्रह जिस मार्ग से आते-जाते हैं उसी से सुर-सेना के रथ आगे बढे। मार्ग मे देवताओ के जो घर उनके दाहने बाये, राह मे, पड़े उनके बाहरी चबूतरों को अपनी धुरियों की नोकों से तोड़ते फोड़ते, और अपने पहियों के आघात से मेघों को रगड़ रगड़ कर उनके भीतर भरा हुआ जल क्षुब्ध करते हुए, वे बड़े ही वेग से दौडने लगे। रथों के पहियो से तो बेचारे मेघो को रगड़ खाने ही का कष्ट उठाना पड़ा। सवारी के हाथियों ने तो अपने बड़े बड़े दाँतों से उन पर ऐसी ठोकरे लगाई कि वे जगह जगह फूट भी गये और उनसे पानी भी झिरने लगा। इससे देवताओं के हाथियो की बन आई। वे बडे प्रसन्न हुए। गरमी से वे तङ्ग आ रहे थे। मेघ फूटने के कारण जल जो शरीर पर गिरा तो उनका सारा सन्ताप दूर हो गया। देखिए, हाथियों ने तो मेघों को फोड़ कर उन्हे पीडा पहुँचाई। पर मेघों ने अपनी जल-वर्षा से उन्हे शीतल करके उनका सन्ताप दूर कर दिया। सच तो यह है कि परोपकार-व्रती महात्मा अपने को पीड़ा पहुँचाने वाले लोगों का भी कल्याण ही करते हैं। वे ऐसों के साथ भी अपकार के बदले उपकार ही करते हैं। उनका स्वभाव ही कुछ ऐसा होता है कि चाहे कोई उनका अनिष्ट ही क्यों न करे, वे उसका भी इष्ट ही साधन करते हैं।

वेग-वाहिनी समीर रथों पर बैठी हुई सुर-नारियों के साथ

विनोद सा करने लगी। वह उनकी साडियो को उड़ा उड़ा कर उनके जघन बार बार खोल देने लगी। पर देवाङ्गनाओ ने कमर पर करधनी पहन रक्खी थी। वह हीरे और मानिक आदि चमकीले रत्नो की थी। इस कारण उन रत्नो से निकल निकल कर उनके किरण-समूह देवाङ्गनाओ के जघन-स्थल पर पडे। फल यह हुआ कि उनका वह अंग खुल जाने पर भी ढका हुआ ही सा दिखाई दिया। वस्त्र उड जाने पर भी यही जान पडा कि सुरनारियो ने गाठो तक सफेद सफ़ेद घुटन्ना पहन रक्खा है।

मेघ छोटी छोटी जल-कणिकाये बरसा रहे थे। उन फुहारों से सुराङ्गनाओ के ललाटवर्ती तिलक भीग भीग कर ख़राब होने लगे। तथापि मेघों की उस तुपार-वर्षा से सुराङ्गनाओ के मार्ग-जात श्रम का परिहार हो गया। अतएव तिलक भिगो देने के कारण उन्होने मेघों पर अप्रसन्न न हो कर, उलटा उनका अभिनन्दन ही किया। श्रम-परिहार होने के कारण उन्हे जो आनन्द मिला उसे उन्होंने मेघों ही की कृपा का फल जान कर उन्हे अपने सम्मान का पात्र समझा। बात यह है कि जिसे बहुत कुछ उपकार होता है उसका एक छोटा सा दोष जी मे नही खटकता। ऐसा कौन है जो जरा सा अपकार होने पर बहुत बडे कृतोपकार को भुला दे?

उस समय आकाश मे जितने मेघ छाये हुए थे सब निर्ज्जल थे। इस कारण वे—लहरों से बार बार धोई गई, अतएव अत्यन्त शुभ्र, बालू के सदृश—सफ़ेद दिखाई देते थे। इन निर्ज्जल, निर्बल और श्वेत-वर्ण मेघों पर इन्द्र-धनुष का पूरा पूरा उदय न हो सका। बडी कठिनता से बने हुए उसके छोटे छोटे टुकड़े ही इधर उधर

प्रकट हो सके। परन्तु वहाँ अप्सराओं के पहुँचने पर उन खण्डित इन्द्र-धनुषों का आकार पूर्णता को पहुँच गया। हुआ यह कि अप्सरायें चित्र-विचित्र रत्नों के अलङ्कार पहने हुए थी। उनसे निकली हुई प्रभा-ज्योति जो खण्डित धनुषो की खाली जगहो पर पडी तो वे भर गईं और सभी धनुष पूरे दिखाई देने लगे।

अपनी कार्य-सिद्धि के विषय मे अनेक प्रकार की बातें करते करते—किस प्रकार कार्य-सिद्धि होगी, उसके लिए किन किन युक्तियो की योजना करनी होगी, इस प्रकार आपस मे सलाह करते करते—पक्षियो के मार्ग का अतिक्रमण करके सुर-सुन्दरियाँ इन्द्र-कील-पर्वत के पास पहुँच गईं। वहाँ वे आकाश से नीचे उतरने लगी और मेघों से छाये हुए शिखरो वाले इन्द्रकील के ठीक ऊपर आ गईं। अप्सराओं की सेना जब इन्द्रकील पर्वत की चोटी पर उतरने लगी तब वह आकाश-गङ्गा के समान मालूम हुई। आकाश-गङ्गा मे कमल खिले रहते हैं, सेना रूप नदी मे विलासिनी अप्स-राओ के मुख ही कमल हो गये। आकाश-गंगा फेन से व्याप्त रहती है, सुर-सेना मे अप्सराओं के सिरों पर धारण किये गये स्वच्छ और शुभ्र छाते ही फेन हो गये। आकाश-गङ्गा की धारा गिरने से गम्भीर शब्द होता है, सेना मे नाना प्रकार के वाद्यो का जो शब्द हो रहा था वही जल-प्रपात की गभीर ध्वनि हो गया। इसी से जब अप्सराओं की सेना इन्द्रकील-पर्वत की शिखर-माला पर उतरने लगी तब ऐसा मालूम हुआ जैसे आकाश-गंगा ही आकाश से पर्वत की चोटी पर गिर रही हो।

जो मेघ आकाश से इंद्रकील के शिखरों तक छाये हुए थे

पैर ही न रक्खे। वे शिखरो से चार अंगुल ऊपर आकाश ही मे चलते हुए आगे बढे। फल यह हुआ कि शिखरो पर उनकी टापों का कही चिह्न तक न हुआ। परन्तु जब वे मन्दाकिनी नदी की बालुका-पूर्ण भूमि पर आये तब उन्होने अपनी पूरी टापे उस पर रख दी। अतएव वहाँ अलबत्ते उनके पैरो के निशान बन गये। वहाँ न कही ऊँचाई थी, न निचाई। सब कही भूमि सम थी। इसी से वहाँ चलने मे घोडो के लिए सुभीता था। यदि वहाँ भी कही समता और कही विषमता होती तो वे उस भूमि से भी अपनी टापो का सम्पर्क न होने देते।

जिस समय अप्सराओ की सेना के रथ उस पर्वत पर पहुँचे उस समय उनकी घरघराहट दूर दूर तक सुनाई दी। पर्वत पर कितने ही झरने थे। वे घोर रव करते हुए ऊँची जगहो से नीचे गिर रहे थे। रथों की घरघराहट इन झरनो की गभीर ध्वनि से मिल कर और भी अधिक हो गई। प्रतिध्वनि ने उसे कई गुना अधिक कर दिया। इस कारण पर्वत के निचले भाग मे रहने वाले मयूरों को मेघ गर्जना की शङ्का हुई। उन्होंने उस नाद को मेघो ही का नाद समझा। अतएव अपने अपने कंठ ऊपर उठाकर बड़ी उत्कण्ठा से वे उसे सुनने लगे।

इंद्रकील-पर्वत के अधोभाग मे नील वर्ण की मणियो की बहुत अधिकता है। ऊपर शिखरो से गिरते हुए झरनो के प्रवाह मे उन मणियों की नीली नीली किरणे कही कही पड़ा करती हैं। जहाँ पर वे किरणें पड़ती हैं वहाँ जल मे नीलिमा आ जाती है; उसकी शुभ्रता दूर हो जाती है—यहाँ तक कि जल लुप्त सा हो गया जान

पड़ता है। जहाँ यह बात होती है वहाँ ऐसा मालूम होता है जैसे ऊपर से गिरता हुआ जल-प्रवाह टूट गया हो। पर्वत पर उतरते ही अप्सराओं को इस तरह के अनेक दृश्य दिखाई दिये। उन्होंने देखा कि आकाश में कुछ दूर तक तो पानी गिर रहा है, कुछ दूर तक, न मालूम कहाँ, वह लुप्त हो गया है, कुछ दूर पर वह फिर प्रकट हो गया है। यह तमाशा देख कर उनके आश्चर्य की सीमा न रही।

जिस राह से देव-सेना के हाथी आ रहे थे उसी राह से, कुछ समय पहले, जङ्गली हाथी गये थे। राह में गिरे हुए उनके मद-जल की सुगन्धि तब तक भी आ रही थी। उसे सूँघ कर सेना के हाथी एकदम मतवाले हो उठे। अपने अपने महावतों का शासन न मान कर वे इतने क्रुद्ध हो गये कि उन्हें वश में रखना कठिन हो गया। यह दशा देख कर महावतों ने हथिनियों को उन हाथियों के पास कर दिया। वे बनावटी प्रेम दिखा कर हाथियों का मन अपनी तरफ़ खींचने लगीं। इसमें उन्हें सफलता भी हुई। उसके कपट-प्रेम में फँस जाने से हाथियों का क्रोध कुछ कुछ शान्त हो गया और वे किसी तरह वहाँ से आगे बढ़ सके।

वर्षा के आरम्भ में, पहले पहल पानी बरसने पर, गङ्गा के प्रवाह में सूखे हुए फलों, फूलों और पत्तियों के साथ बहुत सी मिट्टी भी मिल जाती है। इस कारण उसके जल का रङ्ग अरुणता लिये हुए मटमैला हो जाता है। देवाङ्गनाओं की सेना का भी रङ्ग ठीक ठीक वैसा ही था। क्योंकि रथों के पहियों की रगड़ से मार्ग की धूल उड़ उड़ कर उस पर ख़ूब ही छा गई थी। इस कारण मिट्टी मिले हुए वर्षाकालीन नये जल के सदृश सुर-सेना भी मट-

मैली दिखाई देती थी। वर्षा के आरम्भ मे, बढने पर, नदी जैसे आसपास के जङ्गलो के भीतर तक फैल जाती है, उसी तरह, नदी के सदृश ही, यह सेना भी इन्द्रकील-पर्वत के ऊपर घने वनो के भीतर दूर दूर तक फैल गई।

इन्द्र के सहायक उन गन्धर्वों और देवाङ्गनाओं ने अपने ठहरने के लिए गङ्गा के पास एक बहुत ही सुभीते की जगह पसन्द की और वही उन्होने अपने अपने डेरे डाल दिये। इस जगह के आस पास, विहार करने योग्य, बडे ही अच्छे अच्छे वन और उपवन थे। वहाँ का वालुकापूर्ण प्रदेश दीप्तिमान् रत्नो से व्याप्त था। वृक्षो से आप ही आप गिरे हुए फूल उस पर चारो तरफ बिछ रहे थे। सभी कहीं हरी हरी घास उगी हुई थी। ऐसी अच्छी जगह पाकर सेना ने अपने कार्य्यों की सिद्धि के लिए वहीं ठहरना निश्चित किया। उसके वहाँ ठहर जाने पर इन्द्रकील-पर्वत के उस भूमि-भाग की शोभा पहले से भी कहीं अधिक हो गई। ठीक ही है। बडे आदमियो के सम्पर्क और समागम से ऐसी कौन सी बात है जो दुर्लभ हो? उनके योग से क्या नहीं हो सकता? बात यह है कि दैवयोग से ही महाजनो की सङ्गति प्राप्त होती है और उसके प्राप्त होने पर सौभाग्य का उदय अवश्य ही होता है।

जिस जगह सुराङ्गनाओं की सेना ठहरी वह यथार्थ ही मे बडे आराम की थी। वहाँ जितने वृक्ष थे सब फूल रहे थे और फूल भी उनके बहुत ही सुगन्धि-पूर्ण थे। फिर, वह जगह निर्जन थी। वहाँ एक भी अपरिचित जन न था। लोगों का आवागमन वहाँ बिलकुल ही न था—वह एकान्त-स्थल था। चारों तरफ़ कोमल

पल्लवों से आच्छादित लतायें अपनी शोभा अलग ही दिखा रही थी। देवाङ्गनाओं ने इन सब का यथेष्ट उपभोग किया। अतएव इन सभी वस्तुओं का जन्म सार्थक होगया। जन्म उसी का सफल समझना चाहिए जो दूसरो के काम आवे। वह सौन्दर्य्य और वह ऐश्वर्य्य ही किस काम का जिससे किसी को भी लाभ न पहुँचे।

वहीं, सामने ही, चन्दन के बहुत से वृक्ष थे। उन पर बड़े बड़े सर्प लटक रहे थे। वे फुफकार छोड़ रहे थे। उनकी फुफकार से वृक्षो के पत्ते हिल रहे थे। चन्दन के वृक्षो की छाया बहुत ही शीतल होती है। सुराङ्गनाये थकी भी बहुत थी। इस कारण ऐसी छाया मे विश्राम करने से उनकी थकावट बहुत जल्द दूर हो सकती थी। परन्तु उन्होने इन वृक्षो की छाया का—दुर्जनों से घिरे हुए राजा के सदृश—आश्रय न लेकर उसका परिहार ही किया। उन्होने कहा—शीतल हैं तो क्या हुआ, इन्होने बड़े बड़े साँप तो पाल रक्खे हैं। ऐसे सर्प-वेष्टित चन्दन-वृक्षो को दूर ही से नमस्कार! दुष्टो को आश्रय देने वाला राजा यदि गुणवान् भी हुआ तो भी वह त्याज्य ही समझा जाता है।

इस सेना मे जो हाथी थे उनके महावत बड़े ही चतुर थे। वे गज-शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। सवारियों के उतर जाने पर उन्होने अपने अपने हाथियो की पीठ से हौदे, झूले, कवच और ज़ंजीरे खोल कर सब को ज़मीन पर इधर उधर रख दिया। फिर उन्होंने हाथियों को आराम करने के लिए छोड दिया। प्रलय के समय जो झञ्झा-वायु चलती है वह पहले तो पर्वतों के ऊपर के वृक्षो को उखाड़ कर इधर उधर फेक देती है, फिर स्वयं पर्वतो को भी

उखाड़ कर, जहाँ जी चाहता है, पटक देती है। सुर-सेना के खुले हुए हाथी, उस समय, ठीक ऐसे ही पर्वतो के समान मालूम होने लगे।

खोले जाने के बाद थके हुए हाथी विश्राम करने लगे। उनमे से कुछ सो भी गये। एक हाथी के शरीर से मद टपक रहा था। जिस जगह वह सोया था उस जगह दूर तक उस मद-धारा के कीचड की रेखा सी बन गई थी। उसकी गन्ध पाकर बहुत से भौरे आकर उस पर चिपक गये। अतएव वह मत्त गज जो सो कर वहा से हटा तो भूमि पर बैठी हुई वह भ्रमर-पंक्ति क्षण भर ऐसी मालूम हुई जैसे एकाएक उठने के कारण उस हाथी के पैर की जंजीर टूट कर गिर गई हो और वह वैसी ही वहाँ पर अस्त-व्यस्त पड़ी हो।

इस सेना के शिविर गङ्गा के पास ही थे। शिविरो के पास वाले तट पर तो नहीं, पर उस पार वाले तट पर जङ्गली हाथी भी पानी पीने और जल-विहार करने आते थे। उन हाथियों का मदोदक गङ्गा के जल मे मिल कर दूर दूर तक अपनी सुगन्धि फैला देता था। सेना के एक हाथी को जो उसकी गन्ध आई तो वह बेतरह बिगड़ उठा और उसी तरफ को दौडा जिस तरफ से गन्ध आरही थी। जब वह अपनी तरफ के तट पर पहुँचा तब उसने देखा कि गङ्गा की चौड़ी धारा बह रही है। इस प्रकार वह अपनी राह रुकी देख बेतरह क्रुद्ध हो उठा। महावत ने अपनी तीक्ष्ण अंकुश के अनेक प्रहार उसके सिर पर किये और बहुत चेष्टा की

कि वह लौट पड़े, परन्तु उसने उसकी एक न सुनी। वह अपना सिर हिलाता हुआ वहीं घण्टों खड़ा रहा।

एक और हाथी का हाल सुनिए। वह अपने शरीर के अगले भाग को ख़ूब झुका कर अपनी सूँड से पानी पी रहा था। पानी पी चुकने पर सूँड मे जो पानी बच रहा उसे उसने अपने सिर पर छिड़कने की ठानी। पर महावत महाशय उसकी गरदन पर विराज रहे थे। उन पर छींटे पड़ती तो अंकुश के दो एक आघात सहने पडते। इस कारण, उसने बड़ी बुद्धिमानी से वह पीत-शेष जल फेंका। वह गरदन पर न पड़ा, कपोलों पर पड़ा। कपोलो से अरुण रङ्ग का मद झिर रहा था। अतएव वह जल उसके कपोलो को धोता हुआ मदोदक ही के सदृश नीचे गिरने लगा।

एक हाथी अत्यन्त प्यासा था। वह झपटता हुआ गङ्गा-तट पर पहुँचा। वहाँ जल से उसे जङ्गली हाथियों के दानोदक की गन्ध आई। बस फिर क्या था। वह अपनी प्यास भूल गया और क्रोध से पागल हो उठा। मद की गन्ध गङ्गा के उस तट से आ रही थी। इस कारण घूर घूर कर वह उसी तट की तरफ़ देखने लगा। उसका कोप यहाँ तक बढ़ा कि यद्यपि गङ्गा का जल अत्यन्त ठण्ढा था और यद्यपि वह प्यासा भी बहुत था तथापि दानोदक मिले हुए जल को उसने छुवा तक नहीं। वहाँ से वह वैसा ही प्यासा लौट आया।

परन्तु उस सेना मे सभी हाथी इस तरह के न थे। औरों ने गङ्गा मे घुस कर ख़ूब ही जल-क्रीड़ा की। जल-धारा को उन्होंने

अपने दानोदक से सुवासपूर्ण कर दिया। गङ्गा मे कमल बहुत थे और हाथियों के गड-स्थलो से लाल लाल मद बह रहा था। अतएव कमलो के केसर उड उड कर उनके कपोलों पर चिपक गये, उनसे वे बिलकुल ही आच्छादित हो गये। इस कारण जब वे क्रीडा करके जल से बाहर निकले तब उनके कपोलो से कमलो की सुन्दर सुगन्धि आने लगी।

पहाडी प्रदेशो की भूमि बहुधा लाल होती है। इन्द्रकील-पर्वत के आस-पास की भूमि भी ऐसी ही थी। इस कारण सेना के चलने से उड़ी हुई लाल लाल रज से गङ्गा व्याप्त हो गई, उसका जल लाल हो गया। उधर नहाते समय हाथियो के मथने से हिले हुए कमलों के पराग ने गिर गिर कर जल को कुछ कुछ पीला भी कर दिया। सारी सरिता क्षुब्ध हो उठी। बड़ी बडी लहरे उठ उठ कर तटो पर टकराने लगीं। उस समय वह पीतारुण जल, मँजीठ से रँगे हुए सुन्दर वस्त्र के सदृश शोभायमान हुआ।

पिछले पैरों मे जजीरे लगा कर उस सेना के मत्त मातङ्ग जब कृष्णागुरु-चन्दन के बडे बड़े वृक्षो से बाँध दिये गये तब वे अपनी अपनी गरदने और पिछली टाँगें झुका झुका कर जजीरो की बेतरह खीचातानी करने लगे। वे मतवाले तो थे ही, उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग से मद झिर रहा था। अतएव उन्हे इस प्रकार बाँधा जाना बहुत बुरा लगा। वे छूट जाने की चेष्टा करने लगे। इस चेष्टा मे वे ख़ूब हिलने-झुलने लगे। उस समय वे ऐसे शोभाशाली मालूम हुए जैसे किसी पर्वत की शिला पर्वत से टूट कर नीचे गिर पडी हो, वह हिल रही हो और उससे पानी झिर रहा हो।

हाथियों की सातो नाड़ियो से मदोदक की अजस्र धारायें बह रही थीं। उनके प्रवाह से उस वन की सारी रजोराशि शान्त हो गई, जितनी धूल थी सब बैठ गई। वन मे जो नाना प्रकार के फूल खिल रहे थे उन्ही की सुगन्धि वहाँ पर तब तक फैली हुई थी, वायु उसी को चारो तरफ उड़ा रही थी। पर मदोदक की सुगन्धि ने उस सुगन्धि को दबा दिया, वह उस सुगन्धि से भी बढ़िया निकली। इस कारण वायु ने पुष्प-सम्बन्धी सुवास का तिरस्कार करके मदोदक-सम्बन्धी सुवास का ही स्वीकार किया। बात यह है कि अच्छे की सभी कदर करते हैं। फल यह हुआ कि वायु ने इला-यची की फूली हुई लताओं के सदृश सुरभि-सम्पन्न मदोदक की सुगन्धि से सारे वन को सुगन्धित कर दिया। सर्वत्र मदोदक ही की सुगन्धि आने लगी।

देवताओं के दीर्घदन्ती हाथियों की चिग्घार ने गुफाओं मे सोये हुए सिंहों को जगा कर उन्हें क्षुब्ध कर दिया। चिग्घार उनकी ऐसी वैसी न थी। वह इतनी गभीर थी कि मालूम होता था, मेघ-गर्जना हो रही है। इसी से गङ्गा के कछार मे जितने चकोर और मयूर पक्षी थे उन सब को भ्रम हो गया। वे उसे मेघों का गभीर घोष समझ कर चकित हो उठे और अपने अपने सिर उठा कर ऊपर आकाश की ओर उत्कण्ठापूर्वक देखने लगे।

अप्सराओं ने उस वन के वृक्षो की डालियों पर अपने अपने कमनीय वस्त्र-परिच्छद टाँग कर उन्हे उनसे आच्छादित कर दिया। उनके नीचे आराम से रहने के लिए उन्होने पट-मण्डपो और पर्ण-

शालाओं आदि की रचना करा कर उनकी शोभा और भी बढ़ा दी। तदनन्तर, राह के श्रम से थकी हुई अप्सरायें आनन्द से वहीं विश्राम करने लगीं। इस कारण वन के उन पादपों को नगर के समीपवर्ती उपवनों की शोभा प्राप्त हो गई। वह अकृत्रिम वन कृत्रिम उपवन, अर्थात् उद्यान, के सदृश सुन्दर मालूम होने लगा।

———

# आठवाँ सर्ग ।

गन्धर्वों और अप्सराओ की नगरी, अलकापुरी, बहुत पुरानी है। प्राचीनता के सम्बन्ध मे तो उसे सनातन कह सकते हैं। वह अत्यन्त ही रमणीय है। वहाँ जितने भवन हैं, सब माया से रचे हुए हैं। अतएव उनकी सुन्दरता का कहना ही क्या है। वहाँ के निवासियों ने अपनी २ इच्छा के अनुसार मायामय भवन बना रक्खे हैं। उस पुरी मे सब कहीं और सदा ही देदीप्यमान रत्न चमका करते हैं। वहाँ जितने गोपुर—जितने फाटक—हैं सभी इन्द्रधनुष के सदृश शोभाशाली हैं। ऐसी अद्वितीय—ऐसी लोकोत्तर—नगरी को छोड कर, इन्द्रकील-पर्वत के ऊपर, वनों मे विहार करने के इरादे से, अप्सराओ ने अपने अपने निवास-स्थान का त्याग किया। जहाँ वे ठहरी थीं वहाँ से वे वन-विहार के लिए चली। उनके प्रेमपात्र गन्धर्व भी उनके साथ हो लिये। वन में उन कमललोचनी सुरसुन्दरियो का प्रवेश होते ही उनकी शरीर-प्रभा से इन्द्रकील-पर्वत की लताये चमक उठीं। उस समय वे रह रह कर चमकने वाली विद्युल्लता की समता को पहुँच गईं। मेघों मे जैसे बिजली ठहर ठहर कर चमकती है वैसे ही लताओं के बीच बीच वे चमकती हुई मालूम हुईं। आकाश मे वेगगामी रथों पर चलने और वहाँ से पर्वत पर उतरने से उनकी

गोल गोल रानें भर गई थीं और वक्षोज-कुम्भ भी कुम्हला गये थे। पर अब तक विश्राम करने से उनकी थकावट दूर हो गई थी। इस समय उन्हे वन मे चलने-फिरने से कुछ भी कष्ट न होता था। आकाश-यात्रा की अपेक्षा उन्हे भू-भ्रमण अधिक सुखकारक ज्ञात होता था। वे ख़ूब प्रसन्न थीं। अतएव अपने नूपुरो और अन्यान्य आभूषणो का झङ्कार करती हुई वे आनन्दपूर्वक वन-भूमि पर विचरण करने लगीं। उन्होने सामने ही देखा कि सैकडो वन-वृक्ष ऊपर से नीचे तक फूलो से लदे हुए खडे हैं। पुष्प-भार से उनकी डाले इतनी झुक गई हैं कि हाथ से जितने फूल कोई चाहे, बिना उचके, तोड ले। पर उन्होने इन वृक्षों के फूल छुवे तक नहीं। उन्होने कहा—चलो, आगे देखे। सम्भव है, आगे, इनसे भी अच्छे फूल मिले। विषयाभिलाषी जनो की वृत्ति ही कुछ ऐसी होती है। वे सदा गुणातिशय ही की खोज मे रहते हैं। जब उन्हे कोई अच्छी चीज मिल जाती है तब वे उससे भी अच्छी चीज पाने की कामना करने लगते हैं। गुणाधिक्य से उनकी कभी तृप्ति ही नहीं होती।

सुराङ्गनाये जो आगे बढी तो सैकडो भौंरो ने आकर उन्हे घेर लिया। बात यह हुई कि देवाङ्गनाओ ने केशर, कस्तूरी आदि मिला हुआ उबटन लगाया था। उसकी ख़ुशबू उड रही थी। उसी ख़ुशबू से खिंच कर दूर दूर से भौंरे दौड आये थे। अप्सराओं के पतले पतले हाथों पर महावर था। इस कारण उनके हाथ नवल पल्लवो के सदृश मालूम होते थे और उनके शुभ्र नखों की कम्पनशील किरणे मञ्जरी सी जान पड़ती थीं। फल यह हुआ

कि उनके बाहुओं को, लाल लाल पल्लवों और हिलती हुई मञ्ज-रियों से युक्त, लतायें ही समझ कर भ्रमर उन पर टूट पड़े और उनका सेवन करने लगे ।

सुर-सुन्दरियों को एक बड़ी ही मनोहारिणी अशोक-शाखा देख पड़ी । उसके पुष्प-गुच्छों का सारा मधु मधुकरों ने पी लिया था । उसके लाल लाल कोमल पल्लव हिल रहे थे । यह बड़ा ही मनोरञ्जक दृश्य था । अधरोष्ठों को पीड़ा पहुँचने पर स्त्रियाँ अपने हाथ हिला हिला कर पीड़ा पहुँचाने वाले को मना करती हैं—उसका निवारण करती हैं । पूर्वोक्त अशोक-शाखा के लोल पल्लवों का कम्पन इस वधू-व्यापार को भी मात कर रहा था ।

इतने में एक अप्सरा को कल्पलता समझ कर भौंरों की एक बहुत बड़ी भीड़ ने उस पर आक्रमण किया । उन्होंने उसका रस चूसना चाहा । यह दशा देख कर वह बेचारी घबरा उठी और अपने कोमल-पल्लवाकार हाथ हिला हिला कर उन्हें दूर हटाने की चेष्टा करने लगी । इस पर उसके एक साथी को हँसी आ गई । वह बोला—मानिनी, तू पागल तो नहीं ? हाथ नचा नचा कर क्यों व्यर्थ ही परिश्रम कर रही है ? ये भ्रमर तो तुझे कल्प-लता समझ कर तुझ पर बैठना चाहते हैं। तेरे हाथ हिलाने से ये माननेवाले नहीं । लताओं के किसलय-कर हिला ही करते हैं। उनसे ये थोड़े ही डरते हैं ।

एक अप्सरा अपने प्रेमपात्र के साथ वन-विहार तो करना चाहती थी, पर प्रणय-कलह हो जाने के कारण स्वयं ही वह

उसके पास जाकर उपस्थित न हो सकती थी। उसके मन की यह बात उसकी एक सखी ताड गई। वह बड़ी चाणाक्ष थी। वह बोली—अरी तू यह अपना दु:खदायी कोप शान्त कर। मान छोड दे। अपने प्रेमपात्र का अनुगमन कर। चल, उठ। यदि तू अपना हठ न छोडेगी तो तेरा चञ्चल मन तुझे विकल किये बिना न रहेगा। अभी विहारारम्भ ही मे तेरा यह हाल है। यदि तू अन्त तक ऐसी ही कुपित बनी रही तो न मालूम तेरी क्या गति हो—इस प्रकार समझा बुझा कर उसने उसे प्रसन्न कर दिया। उस अप्सरा ने अपनी सखी की सलाह मान ली। वह तो यह चाहती ही थी।

शैल-सरिताओ को बहती देख अप्सराये बहुत प्रसन्न हुईं। उनके तट उन नारियों ही के विशाल नितम्ब-युग्मो के सदृश उन्नत थे। तटों पर जो काश नामक तृण खडा था वह उस समय फूल रहा था। उसके शुभ्र फूलो का समूह उन तटरूपी नितम्बों पर रेशमी वस्त्र के सदृश मालूम हो रहा था और वहीं पर बैठी हुई सशब्द मराल-माला करधनी के सदृश शोभा दे रही थी। ऐसे मनोहारी तटो के योग से उन पहाडी नदियों की सुन्दरता बहुत ही बढ़ गई थी।

पानी के प्रवाह, बहुत ऊँची पहाडी भूमि से नीचे गिरने के कारण, खंड खंड हो रहे थे। उनसे उड़े हुए जल-कण आस-पास दूर दूर तक फैल रहे थे। वे जल-कण—वे वारि-बूँद—शुभ्र मोतियो के सदृश कान्तिमान् और अङ्गनाओं के अङ्ग-सदृश शीतल थे। उन्हे दूर तक उड़ता देख—उनकी सफ़ेद चादर सी बिछी देख—ऐसा जान पडता था मानो वह वन उनके बहाने

हँस सा रहा है। यह दृश्य भी बडा अनोखा था। इससे भी सुराङ्गनाओ को परम प्रमोद हुआ।

लताओ से भी अप्सराओ का बहुत मनोरञ्जन हुआ। वे कुसुम-गुच्छो के बोझ से झुक रही थी। अतएव जान पड़ता था, मानो वे अपनी सखियो का आदरातिथ्य करने के लिए, प्रणाम सा करती हुई, अपने पुष्परूप नेत्रो से उन्हे सप्रेम देख रही हैं। उनकी कुसुमावली ही उनकी बडी बडी आँखे थी और उन पर बैठी हुई निश्चल भ्रमर-पंक्ति ही उनमे कज्जल की रेखा थी।

जिस समय अप्सराये इन्द्रकील-पर्वत के ऊपर सपाट भूमि पर पहुँची उस समय वहाँ पर चन्दन के सैकडो वृक्ष उन्हे दिखाई दिये। वे ऐसे सुन्दर थे और उनसे ऐसी हृदयहारिणी सुगन्धि उड रही थी कि अप्सराओ का हृदय उनके क़ाबू मे न रहा। वह खिच कर वही जा अटका। इन वृक्षो की पेडी पर अपने मस्तक रगड़ रगड कर मतवाले हाथी अपनी कपोल-कडू मिटाते थे। इस कारण उनका मदोदक लग जाने से इन वृक्षो का रङ्ग कुछ अरुणिमा लिये हुए काला काला हो गया था। एक तो चन्दन के वृक्षो से योंं ही सुगन्धि आती है, इन पर तो मत्त गजो का सुवासपूर्ण मद-जल भी लगा हुआ था। फिर भला क्यो न ये सुर-नारियो का मन आकृष्ट कर ले?

वृक्षो पर नाना प्रकार के फूल खिले देख सुर-सुन्दरियों के मन की कली खिल उठी। उन फूलो की शोभा ने उन्हे मोह लिया। फूल कुछ दूर न थे। वे इतने निकट थे कि यदि सुराङ्ग-नाये चाहती तो खड़े ही खड़े हाथ से डलियों फूल तोड़ लेती।

पर उन्होने देखा कि उनके प्रेमपात्र गन्धर्व स्वय ही फूल तोड तोड़ कर उनकी सेवा करने के इच्छुक है। अतएव अप्सराओ ने प्रेम के वशीभूत होकर गन्धर्वों ही के तोड़े हुए फूल लेकर उन्हे प्रसन्न किया, स्वय तोडने का कष्ट उन्होने न उठाया। जो काम अपने प्रेमी को अच्छा लगे वही करना उन्होने अपना कर्तव्य समझा।

गन्धर्व मनमाने फूल तोड तोड कर अप्सराओ को देने लगे। एक गन्धर्व से एक बहुत बडी भूल हो गई। उसने सुन्दर सुन्दर फूलो से अपनी अञ्जलि भर कर उन्हे अपनी प्रियतमा को देने के लिए उसे पुकारा। परन्तु पुकारते समय उसके मुँह से उसकी प्रेयसी की सपत्नी का नाम निकल गया। उस नाम ने तीर की तरह उसकी प्रेयसी के कलेजे को छेद दिया। अतएव वह अप-मान की आग से जलने सी लगी। वह इतनी कुपित हो उठी कि उसके मुँह से उस समय बात तक न निकली। आँखे उसकी डबडबा आई और पैरो की उँगलियो से वह भूमि पर रेखाये खींचती हुई चुपचाप खड़ी रह गई।

एक अन्य अप्सरा का हाल सुनिए। उसका प्रेमी गन्धर्व उससे प्रेमालाप कर रहा था और वह ऊपर को मुँह उठाये इकटक उसकी ओर देख रही थी। उसकी बाते सुनने मे वह इतनी लीन हो गई थी कि उसे अपने तन की भी सुध न रही। ग्रन्थि ढीली हो जाने के कारण यद्यपि उसके वस्त्र अपने स्थान से हट गये तथापि उन्हे फिर यथास्थान करना वह भूल ही गई और अपने प्रेमी की बाते पूर्ववत् सुनती रही। यही नही, फूल तोड़ते समय फूल पर हाथ न रख कर अन्यत्र ही हाथ रक्खे वह खड़ी रही। उसे

इसकी ख़बर ही न हुई कि मैं क्या कर रही हूँ और वस्त्र हट जाने से मेरा शरीर कहाँ पर खुल गया है।

एक गन्धर्व ने अपनी प्रियतमा अप्सरा को फूलो का एक ऐसा गुच्छा दिया जिसमे लाल लाल पल्लव भी थे। अप्सरा ने उसे बड़े प्रेम से ग्रहण किया और ऊपर हाथ उठा कर उसे अपने केश-कलाप मे खोस लिया। खोसते समय हाथ ऊपर उठाने से उसका वक्ष स्थल तन गया। अतएव उसकी शोभा कुछ कम हो गई। यह देख कर उसने अपने विशाल नितम्बो वाले जघन से ही अपने प्रेमी का मन अपनी ओर खीचा। अर्थात् जघन स्थल की मनोहरता दिखा कर ही उसने अपने प्रेमी का अनुराग अक्षुण्ण रक्खा।

एक और अप्सरा की बात सुनिए। उसे अपने प्रेमिक को रिझाने की एक अच्छी युक्ति सूझी। उसने कहा, लावो फूल तोड़ने के बहाने अपने शरीर की सुन्दरता दिखा कर इसके अनुराग की वृद्धि करे। यह निश्चय करके उसने अपना हाथ ऊपर को उठाया। ऐसा करने से उस विशाल-नितम्बिनी की नीवी ढीली पड़ गई, उसके वक्ष स्थल से वस्त्र खिसक गया, उसके त्रिवलीहीन पतले पेट पर रोम-राजी स्पष्ट दिखाई देने लगी, उसके लम्बे लम्बे केश खुल कर सिर पर इधर उधर बिखर गये और उसका कक्ष-प्रदेश दृष्टिगोचर होने लगा। इस प्रकार शरीर-शोभा दिखा कर उसने अपने प्रेमी को अपने ऊपर खूब ही अनुरक्त किया।

फूल तोडते समय एक अप्सरा की आँख मे फूलो के रज:कण चले गये। अतएव उसकी आँख दुखने लगी। यह देख कर उसके प्रेमी गन्धर्व की बन आई। वह अपना मुख उसके मुख के पास

ले गया और अपने मुख की भाफ़ फूँक फूँक कर उसकी आँख की किरकिरी दूर करने लगा। देर तक वह इसी प्रकार फूँके डालता रहा, अपना मुख उस अप्सरा के मुख के पास से उसने हटाया ही नही। तब कही, बडी देर बाद, उसका यह कपट उस अप्सरा के ध्यान मे आया। जब उसे यह मालूम हो गया कि यह अपना मुख मेरे मुख के पास और ही मतलब से किये है तब उत्कण्ठित होकर उसने दृढ़ालिङ्गनपूर्वक उसके हृदय-स्थल पर अपने हृदय-स्थल से चोट की—दोनो को खूब संलग्न कर दिया।

इस कोमल पल्लव को तोड लो, उस सुन्दर सुमन को मुझे दे दो—इस प्रकार कह कह कर अप्सराओ ने अच्छे अच्छे सारे फूल और सारे पत्ते यथेच्छ तोड लिये। धीरे धीरे उन्होंने उन वृक्षो को पत्र पुष्पों से बिलकुल ही सूना कर दिया। उनका सारा सार निकल गया। वे शोभाहीन हो गये। अतएव वन-सम्बन्धिनी शोभा को तरुओ का आश्रय न रहा। आश्रयहीन सदा ही आश्रय ढूँढ़ा करते हैं। वन-शोभा ने भी अपने लिए एक नया ही आश्रय ढूँढ निकाला। पेड़ों से परित्यक्त होने पर उसने उन अप्सराओ ही को अपना आश्रय बनाया। वह उन अप्सराओ ही के शरीर पर प्रकट हो गई। जो शोभा पेडों को प्राप्त थी वह अप्सराओ को प्राप्त हो गई। फूलो के गहने पहनने और उन्हे अपने केश-पाशो मे खोंसने के कारण उनके शरीर से पुष्प-सुगन्धि आने लगी, लाल लाल कोमल पल्लव तोड़ने से उनका रस लग जाने के कारण उनकी करांगुलियाँ लाल हो गईं; पुष्पो का पराग उड़ उड़ कर पड़ने के कारण उनका उरो-देश पाण्डुर-रङ्ग से रञ्जित हो गया। अतएव

ऐसा मालूम होने लगा जैसे उन्होने अपने शरीर की शोभा-वृद्धि की समस्त सामग्री पेड़ों ही से प्राप्त कर ली हो—पेड़ों ही की कृपा से उनकी शरीर-शोभा बढ गई हो।

वन-विहार करते करते अप्सरायें बहुत थक गईं। अतएव पर्वत के शिखरो के ऊपर चलने मे उन्हे बहुत कष्ट होने लगा। उनकी जघाये हाथियों की सूँड़ के समान मांसल और चढ़ाव-उतार वाली थी। उनका भार सँभालना अप्सराओं के लिए कठिन हो गया। एक तो देर तक चलने से श्रम हुआ, दूसरे जंघाओं का बोझ सँभालना पड़ा। फल यह हुआ कि उनके, नये निकले हुए पल्लवो के समान, कोमल पैरों के तलवे लाल हो गये और सम भूमि पर भी उनके लिए चलना दुस्तर हो गया। यदि कही उन्हें नीची-ऊँची भूमि पर चलना पडता तो उनकी और भी दुर्गति होती। चलते चलते अप्सराये यहाँ तक थक गई कि उनके पैर डगमगाने लगे। वे कभी इधर पडते कभी उधर। उनकी लड़खडाती हुई चाल से ऐसा सूचित होने लगा मानो उन्होने मद्य पिया है। क्योकि मतवालो ही की चाल ऐसी हुआ करती है।

अप्सराओ ने कमर मे करधनी पहन रक्खी थी। उसमे मणियाँ पोही हुई थी। उन मणियो की कान्ति उनके नितम्बो पर पडती थी। नितम्ब उनके योंही बड़े बडे थे। मणियों की आभा पडने से उनका विस्तार और भी अधिक हो गया सा जान पड़ने लगा। अतएव उनके सुन्दर और समुन्नत नितम्ब—चमकती हुई नवीन वालुका से पूर्ण, नदी के कगारों के सदृश—बहुत ही शोभा-यमान हुए। अत्यन्त श्रम से उत्पन्न हुई थकावट के कारण, सुराङ्ग-

नाओं के ये शोभाशाली जघन इतने जड हो गये से प्रतीत हुए जिसका ठिकाना नहीं । एक तो जंघाओं का बोझ, दूसरे नितम्बों और जघनो का बोझ । फिर, भला, उनके पैर उठे कैसे ?

देवाङ्गनाओ की नाभियाँ कमल की विकसनशील कलियों के सदृश सुन्दर थीं । उनके कारण, वसन-ग्रन्थि ( नीवी ) के पास, देवाङ्गनाओ के त्रिवली-धारी उदरों की शोभा बहुत ही बढ़ गई । उनकी कटि अत्यन्त क्षीण थी । अतएव पयोधर-भार से वे झुक सी रहो थी—उनके शरीर का मध्य-भाग भङ्ग होने के से लक्षण दिखा रहा था । उनकी आँखों का यह हाल था कि उन पर चारों तरफ पसीने के कण छा जाने से वे बन्द सी हो रही थीं। अतएव उनके मुख—जिनकी पत्र-पक्ति विकसित नही हुई और जिन पर हिम के कण छाये हुए हैं ऐसे—सरोरुहो की समता करने लगे ।

सुराङ्गनाओ की ऐसी अलौकिक शोभा देख कर उनके प्रेम-भाजन गन्धर्व मोह गये। उन्होने उनके अवयवो का घण्टो विस्मय-पूर्वक वर्णन किया । उनके उस विस्मयसूचक वर्णन को सुन कर ऐसा बोध होने लगा जैसे उन्होने उन सुराङ्गनाओ का पहले ही पहल दर्शन किया हो। यह बात ठीक हो या न हो, पर इसमे सन्देह नही कि गन्धर्वों ने सुराङ्गनाओ का ऐसा अनोखा रूप इसके पहले कभी न देखा था । इसी से उन्हे इतना कौतुक हुआ ।

सुराङ्गनायें थकी तो थी ही। सौभाग्य से उन्हें सामने ही बहती हुई गङ्गा देख पड़ी। उसमे मछलियाँ कलोले कर रही थी। उनके इधर से उधर तैरते समय, उनके शरीराघात से कमल हिल रहे थे। जल अत्यन्त निर्म्मल था । तट-प्रान्त मे कही कीच का नाम न था ।

तरंगें उठ उठ कर तटों पर टकरा रही थी। कलहंसों के समूह मधुर और मनोहर शब्द कर रहे थे। इस प्रकार कमलो के कम्पन, तटों तक तरङ्गो के आगमन और हसों के निनाद के बहाने गङ्गा मानों सुराङ्गनाओ को स्नान करने के लिए बुला सी रही थी।

गंगा-तट पर पहुँचते ही सुखकारक वायु, आगे बढ़ कर, उनसे मिली। वह मन्द मन्द चल रही थी। गंगा की तरग-मालाओं के भीतरी भाग तक घुस जाने के कारण जल के कणो से वह व्याप्त थी। अतएव उसमे अत्यन्त शीतलता आ गई थी—इतनी शीतलता कि उष्णता-सम्बन्धिनी सारी बाधा उसने बिलकुल ही दूर कर दी थी। उसमे एक गुण और भी था। वह यह कि कमलो का स्पर्श करने के कारण उसमे सुगन्धि भी आ गई थी। ऐसी शीतल, मन्द और सुगन्ध वायु ने आकर सुरांगनाओ का प्रेमपूर्वक आलिङ्गन सा किया।

गंगा के हसों, कगारों और कमलों मे जो गुण थे, अप्सराओं मे वे गुण उनसे भी बढ कर विद्यमान थे। कलहंस अपनी चारु गति के लिए प्रसिद्ध हैं। हाव-भावपूर्ण चाल मे अप्सराये उनसे भी बढ कर थीं। शुभ्र वालुका से पूर्ण गगा के कगार अपनी ऊँचाई और सुन्दरता के लिए ख्यात हैं। अप्सराओ के विशाल नितम्बो वाले जघन उनसे भी अधिक उन्नत और सुन्दर थे। गंगा मे खिले हुए कमल शोभा पा रहे थे। अप्सराओ के आकर्ण-नेत्र-धारी मुख खिले हुए कमलों से भी अधिक शोभाशाली थे। इस कारण अप्सराओ ने अपने गज-गमन, अपने नितम्ब और अपने मुख दिखा कर गंगा के राजहंसों, उसके कगारों

और उसके कमलों की समानता ही न की, उन्हे लज्जित भी कर दिया।

गंगा की धारा मे मछलियो की पॉतियाँ की पॉतियाँ तैर रही थी। वे यों तो बराबर एक सीध मे चलती थी, पर किनारे के पास पहुॅच कर उनकी पॉति टूट जाती थी और वे इधर उधर मनमानी दिशा मे चल देती थी। कुछ देर तक यह तमाशा देख कर अप्सराओं और गन्धर्वों ने जल-विहार करने का निश्चय किया। पर अप्सराये पानी मे प्रवेश करते डरी। उन्होने कहा—न मालूम कहाँ पर कितना जल है, कही मगर तो नही पडे। यह देख कर, उन्हे विश्वास दिलाने के लिए, गन्धर्वों ने ही पानी मे पहले प्रवेश किया। गंगा के भीतर उनके उतर जाने पर, डरते डरते, किसी तरह, अप्सराओं ने भी प्रवेश किया। बात यह थी कि पहली ही दफे अप्सराओं को गंगा स्नान करने का यह मौक़ा मिला था। इसी से वे जल मे घुसते डरती थी। अस्तु। मोटी मोटी मासल जंघाओ वाले अपने पैरो को धीरे धीरे उठा कर बड़े प्रयत्न से वे सारी अप्सराये गंगा मे घुस पडी। जल मे उनके एक ही साथ प्रवेश करने पर गगा की ऊँची ऊँची लहरे जगह जगह से टूट गई। छिन्न-भिन्न होकर वे तटो तक जा पहुँची। उनके आघात से तट पर बैठे हुए सारस पक्षी उड गये। फिर वे लहरे वहां दूर दूर तक फैल कर लौट पड़ी। लहरों के टूटने और तटो तक आने मे एक बात और भी कारणीभूत हुई। जल मे गन्धर्वों और अप्सराओं के छाती तक घुस जाने पर गन्धर्वों से शिला-सदृश उरों और अप्सराओं के उन्नत वक्ष.स्थलो पर भी लहरें

टकराईं । इससे भी वे अधिक ऊँची हो गईं, साथ ही उनका वेग भी बढ़ गया । फल यह हुआ कि वे तटों से भी कुछ दूर आगे निकल गईं और वहाँ की वालुकापूर्ण मिट्टी को अपने साथ ले आईं । इससे कुछ दूर तक गंगा का जल गँदला हो गया और ऐसा मालूम होने लगा मानो अपना अन्त:क्षोभ दिखाने—अपना क्रोध प्रकट करने—के लिए ही गंगा ने कलुषत्व—मैलापन—धारण किया है ।

जल-विहार आरम्भ हो गया । गंगा की उत्तुङ्ग तरंगों ने अप्सराओं के केश-कलाप अस्त-व्यस्त कर दिये, उनकी पुष्प-मालाओं को हिला-झुला डाला, उनके शरीर पर लगे हुए चन्दन के लेप को धोकर साफ़ कर दिया । बहुत समय तक इन वस्तुओं को धारण करने के कारण इन पर देवांगनाओं का विशेष प्रेम हो गया था । उनकी इन्हीं प्रेमपात्र वस्तुओं के साथ ऐसा बुरा व्यवहार करने वाली तरंगों पर सुरांगनाओं का अप्रसन्न होना स्वाभाविक ही था । अतएव, अपने को अपराधिनी समझ कर, मानों अप्सराओं के भय से ही, गंगा की तरंगें बार बार कम्पायमान होने लगीं ।

सुर-नारियों के शरीर पर नखक्षत थे । उनका सम्बन्ध उनके प्राणाधार पतियों से होने के कारण वे उनके आदर की चीज़ थे । परन्तु वही उनकी सपत्नियों के लिए उत्कट व्यथादायक थे । वे क्षत, अब तक, केशर आदि सुगन्धित वस्तुओं के लेप से ढके हुए थे । स्नान करने से वह लेप धो गया । अतएव वे क्षत खुल गये; वे दिखाई देने लगे । परन्तु अप्सराओं ने उनको ढकने की चेष्टा

न की। वे उनको इस तरह धारण किये रहीं जैसे वे धोने से बचे हुए पूर्वोक्त लेप की रेखायें हो। ऐसी रेखाओं और नख-क्षतो मे समता होती है। इस कारण उन्होने कहा—इन्हे लोग शायद ही पहचाने। देखने पर ये केशर आदि की लकीर ही के सदृश मालूम होंगे। अतएव क्यो इनको ढकने का झंझट किया जाय।

गंगा मे कमलो की अधिकता थी ही। उनके बीच एक अप्सरा जा छिपी। उसका मुख मात्र कुछ कुछ दिखाई देता रहा। उसे देख उसकी सखियों को बड़े बड़े भ्रम हुए। उन्होने कहा—भ्रमरों से युक्त ये दो कमल हैं अथवा हमारी चञ्चलाक्षी सखी के नेत्र? गुञ्जार न करने वाले चुपचाप बैठे हुए भ्रमरो के ये वृन्द हैं अथवा हमारी सखी के, झुकी हुई बरोनियो वाले, मुख पर पड़ा हुआ उसका केश-कलाप? खूब खिला हुआ, अतएव कमनीय केसरो को स्पष्ट प्रकट करने वाला, यह कमल है अथवा हँसते समय जिसके दाँत, कमल-केसर के सदृश, साफ़ दिखाई दे रहे हैं ऐसा हमारी सखी का मुख? इस तरह के भ्रमो मे पड़ी हुई देवाग-नाओं ने उस कमल-कानन मे छिपी हुई अपनी सखी को, बड़ी देर मे, पहचान पाया।

एक गन्धर्व ने अपने ही हाथ से गूँथ कर एक माला अपनी प्रियतमा को, उसकी सपत्नी के सामने ही, पहनाई थी। स्नान करते समय भी वह उसे अपने उन्नत वक्ष.स्थल पर सादर धारण किये हुए थी। पानी से भीग कर यद्यपि वह ख़राब हो गई थी—जल की हिलोरों से यद्यपि वह कुचल सी गई थी—तथापि उसे वह अपने हृदय से अलग न कर सकी। बात यह है कि प्रेम ही मे

गुण रहते हैं, वस्तु विशेष मे नही। चीज़ चाहे बुरी ही क्यो न हो, यदि उस पर प्रेम है तो वही सारे गुणो की खान मालूम होती है। प्रेम की लीला ही कुछ निराली है।

अप्सराओ ने अपनी आँखो मे काजल लगा रक्खा था। पर यह इसलिए नहीं कि उनकी शोभा बढ़ जाय। काजल उन्होने इसलिए लगाया था जिससे आँखो के प्रान्त-भाग की—आंखों के कोनों की—अरुणता छिप जाय और वह बढ कर आँखों की शुभ्रता पर अधिकार न जमा ले। काजल लगाने का कारण निस्सन्देह यही था, दूसरा नही। क्योंकि स्नान-समय काजल के धुल जाने पर आँखों की अरुणता ने उनकी सफ़ेदी को तो अवश्य दूर कर दिया, पर कज्जलहीनता के कारण आँखो की शोभा रत्ती भर भी कम न हुई। अतएव यह निश्चित समझिए कि काजल अप्सराओं की आँखों की शोभा-वृद्धि के लिए न था। वे तो योंही, स्वभाव ही से, सुन्दर थीं। वह बेचारा उनकी सुन्दरता को भला क्या बढ़ाता! उनके लिए तो वह रक्तिमा भी अलङ्कार-सदृश ही शोभा-वर्द्धक थी।

राजमन्त्री जब तक अपने पद पर अधिष्ठित रहता है तब तक उसका सभी आदर-सत्कार करते हैं और सभी कही उसकी प्रतिष्ठा होती है। पर लोभग्रस्त जड़ जनो के सम्पर्क और झोंक मे पड़ कर जब यह पद-च्युत हो जाता है तब उसी की सर्वत्र निन्दा और दुर्दशा होती है। अप्सराओ ने अपने केश-पाशो मे जो गजरे गूँथ रक्खे थे उनकी गति ऐसे ही अधिकार-भ्रष्ट राज-मन्त्रियों के सदृश हुई। जब तक वे उनके कबरी-कलाप पर आसीन रहे तब तक बड़े

मज़े में रहे—तब तक उनकी अच्छी सेवा-शूश्रूषा हुई। जब उन पर गङ्गा के प्रवाही जल की ठोकरें बडे जोर से लगी तब वे टूट टूट कर गिर गये श्रौर पानी से भीग कर इधर उधर मारे मारे फिरने लगे। अतएव बहुत कुछ सुख भोगने के बाद मोहमुग्ध ( जड-मनुष्यवत् ) जल के समुदाय की मूर्खता के कारण वें बहुत ही शोचनीय स्थिति को प्राप्त हो गये।

अप्सराश्रो ने अपने शरीर पर केशर श्रौर कस्तूरी आदि के जो बेल-बूटे बना रक्खे थे वे सब धो गये, श्रोठें पर लगाया हुआ लाचा रस भी छूट गया, आँखें मे आँजा गया अञ्जन भी न मालूम कहाँ चला गया। पर इन उपकरणों के न रहने पर भी उनकी सुन्दरता कम न हुई। वह पूर्ववत् ज्यो की त्यों बनी रही। उस समय गन्धर्वों ने जो उन्हे ध्यान से देखा ता उनको एक अपूर्व बात मालूम हुई। उन्हे मालूम हुआ कि उनकी प्रियतमा अप्सराश्रों के शरीर की शोभा का कारण अलङ्कार नहीं, उलटा अलङ्कारों को ही उनकी शरीर-कान्ति से शोभा प्राप्त होती है। उन्हे तब यह ज्ञात हुआ कि जो जन्म ही से सुन्दर है उसे अल-ङ्कारों की आवश्यकता नहीं।

अपने प्रेमियों को प्रसन्न करने के लिए अप्सराश्रो ने, स्नान करने से पहले, अच्छे अच्छे आभूषण, बड़े यत्न से, धारण किये थे। उन्हे पहने देख उनकी सपत्नियों के हृदय मे विषम वेदना उत्पन्न हुई थी—उनकी आँखों मे आग सी लग गई थी। परन्तु जल-क्रीड़ा करते समय वह वेदना—वह आग—श्रौर भी भीषण हो गई। कारण यह हुआ कि भीग जाने के कारण वस्त्र उनके

शरीर में लग्न से हो गये और शरीर का अधिकाश दूर से दिखाई देने लगा। साथ ही शरीर पर किये गये नखक्षत भी दिखाई देने लगे। उन्हे देखते ही सपत्नियो की हृदय-व्यथा— उनकी दृष्टि-ज्वाला—पहले से भी अधिक हो गई। अपने प्रेमियो की प्रीति का सम्पादन करने के लिए पहने गये आभूषणो से सपत्नियो का जी जितना जला था उससे भी अधिक इनके भीगे हुए शरीर पर नखक्षत देख कर जला। आर्द्र वस्तु के सयोग से आग बुझ नहीं जाती, तो उसका दाह कुछ न कुछ कम अवश्य हो जाता है। परन्तु यहाँ बिलकुल ही उलटी बात हुई। गीले नखक्षतों ने नेत्र-दाह कम करने के बदले अधिक कर दिया!

उधर गङ्गा की तरङ्गे खिले हुए कमलो के योग से बहुत ही भली मालूम होती थी, इधर शुभाननी अप्सराओ के मुखारविन्द भी बड़े ही सुन्दर थे। उधर तरङ्गो के ऊपर चलायमान फेन की पङ्क्तियाँ शोभा दे रही थीं, इधर अप्सराओ के कण्ठ मे पड़े हुए मोतियों के शुभ्र हार भी वैसे ही हृदयहारी थे। उधर अप्सराओ के शरीर पर लगा हुआ कुकुम धुलने से तरङ्गो का रङ्ग किञ्चित् आरक्त दिखाई देता था, इधर अप्सराओ के शरीर का वर्ण स्वभाव ही से तप्त काञ्चन के सदृश अरुणता लिये हुए गोरा था। इस प्रकार दोनो मे गुणो की समता होने के कारण गङ्गा की तरङ्गो मे अप्सराओ को कुछ भी विशेषता न मालूम हुई। अतएव उनको तरङ्गो से ग्रहण करने योग्य एक भी गुण न मिला।

देवाङ्गनाओ ने ख़ूब ही स्नान किया—ख़ूब ही जल क्रीडा की। वे घण्टो खेलती और कलोलें करती रहीं। गहरे कुण्ड मे

प्रविष्ट होकर अपने कराघात से जब वे पानी को ऊपर उछालने और फिर दूसरे कर से उसे काट देने लगी तब उससे ऐसी गम्भीर ध्वनि निकलने लगी जैसे मृदंग बज रहा हो। उस समय उनके किसी किसी अवयव के हिलने से ऐसा मालूम होने लगा जैसे वह ताल दे रहा हो। अतएव वह दृश्य मनोमोहक नृत्य की समता को पहुँच गया। देखने से मालूम होने लगा कि यह जल-क्रीडा नहीं, यह तो नाच हो रहा है।

अपनी शोभा से खिले हुए कमलो की शोभा को भी मात करने वाले, सुराङ्गनाओं के मुसकराते हुए मुखों ने, गङ्गा के स्वच्छ प्रवाह मे प्रतिबिम्बित होकर, उसकी जल-राशि के सौन्दर्य्य को बहुत ही बढा दिया। अतएव सुराङ्गनाओ के जल-विहार मे साहाय्य करने के कारण गङ्गा ने अपने जल की निर्म्मलता को सार्थक समझा। उसने मन ही मन मानो कहा—यदि मेरा जल स्वच्छ न होता—यदि वह गँदला होता—तो क्यों ये उसमे स्नान करती और क्यों इनके विहसनशील मुख-कमलों के प्रतिबिम्ब पड़ने से उसकी इतनी शोभा-वृद्धि होती। बात यह है कि जिनका अन्तःकरण स्वच्छ होता है वही दूसरो पर उपकार करते हैं और उन्ही पर दूसरे भी उपकार करते हैं।

गगा मे मछलियां की अधिकता थी। देवागनाओं के वारि-विहार के समय भी वे पानी मे इधर उधर दौड रही थी। इस कारण कभी कभी वे अपने शरीर को देवागनाओ की जाँघों से रगडते हुए निकल जाती थी। उनकी रगड़ लगते ही देवांगनाये घबरा जाती थी। अतएव वे अपनी आँखे चञ्चल करके, डर के मारे,

अपने पाणि-पल्लव हिलाने लगती थीं। इस दशा को प्राप्त होने पर उनका रूप बहुत ही अवलोकनीय हो जाता था—यहाँ तक अव-लोकनीय कि उनकी सखियों तक को यही मालूम होता था कि उन्हें इकटक देखती ही रहें। फिर भला उनके पतियों को जो ऐसा मालूम हो तो क्या आश्चर्य? उन्हें तो अपनी प्रियतमाओं का वह रूप और भी हृदयहारी मालूम होता था।

एक अप्सरा का हाल सुनिए। उसे अपनी रूप-राशि का बड़ा गर्व था। ज़रा ज़रा सी बात पर वह अपने पति से रूठ कर मानिनी बन बैठती थी। वारि-विहार के समय भी वह मान के मद से मत्त थी। इतने में एक घटना हो गई। जहाँ पर वह नहा रही थी वहीं अकस्मात् एक बड़ा सा मत्स्य दिखाई दिया। वह अपनी पूँछ के पतवार से पानी को जोर जोर उछालने लगा। यह देख कर उस मानिनी ने ऐसा भाव दिखाया जैसे वह बहुत ही डर गई हो। बस, इसी बहाने लपक कर वह पास ही खड़े हुए अपने पति से लिपट गई। उसके इस व्यवहार से उसके पति को परमा-नन्द हुआ। स्त्रियों की बनावटी चेष्टायें भी, यदि वे स्वाभाविक प्रेम-रस से उत्पन्न हुई हैं तो, पुरुषों का हृदय हर लेती हैं। स्त्रियाँ यदि आगन्तुक भय की प्रेरणा से भी, सच्चे प्रेम की सूचक कोई चेष्टा करती हैं तो वह भी मनोहर, अतएव आनन्द-जनक, ही होती है।

गले तक जल में घुस कर सुर-नारियों ने अपनी अपनी वेणियाँ खोल दीं। इस कारण उनके लम्बे लम्बे केश मुख पर बिखर गये। उनसे उनके मुख प्राय ढक गये। अतएव वे, अलियों से आच्छादित

वारिज-वृन्दो की समता को पहुँच गये—उन्हे देख कर ऐसा मालूम होने लगा जैसे कमलों पर भौंरे छाये हो ।

नहाते नहाते एक अप्सरा बहुत गहरे पानी मे चली गई । उसे डर लगा कि कही मैं डूब न जाऊँ । इस कारण उसके नव-पल्लवाकृति कर थर थर कॉपने लगे । रूठ जाने—मान करने—मे वह भी बड़ी निपुण थी । पर उस समय वह इतनी भयभीत हो गई कि उसका मान न मालूम कहॉ चला गया । उसे उस समय और कुछ न सूझा, अपने दोनों बाहुओ से अपने पति का आलिङ्गन करके ही उसने उस भय से अपनी रक्षा की । परन्तु, मौके के लिहाज़ से, ऐसा करने के लिए उस पर धृष्टता का दोष न लगा । औरों की तो बात ही नही, उसकी सखियों तक ने उसे इस कारण दोषी न ठहराया । प्राण जाने का भय उपस्थित होने पर लोक-लज्जा का ख़याल नही किया जाता ।

जल-विहार करते करते गन्धर्वों को भी खेलने की सूझी । वे भी कराघात से पानी उछाल उछाल कर उसे अप्सराओ पर फौवारे की तरह छोड़ने लगे । फल यह हुआ कि छींटो की मार से अप्सरायें अकुला उठीं । सॉस जल्दी जल्दी चलने के कारण उनका उरोदेश कॉपने लगा । अतएव, वे अपने कर-पल्लव हिला हिला कर गन्धर्वों को और छींटे मारने से मना करने लगीं । उस समय उनका "विलासवती" नाम, अपने अवयवो को इस प्रकार हाव-भाव-पूर्वक हिलाने झुलाने के कारण, यथार्थता को पहुँच गया—नामानुसार ही विलासपूर्ण लीला दिखाने से वे सचमुच ही विलासवती बन गईं ।

एक गन्धर्व की प्रेमिका अप्सरा कारणवश उससे अप्रसन्न हो

गई थी। बड़ी मुश्किलों से उसे उसने प्रसन्न कर पाया था। अत-एव उसे कोई काम ऐसा न करना था जो उसकी प्रियतमा के कोप का कारण होता। परन्तु और गन्धर्वों को अपनी अपनी नायिकाओं पर छींटे बरसाते देख उससे भी न रहा गया। उसका धैर्य्य छूट गया। उसने हाथ से उछाल कर पानी के छींटे जो उसके मुख पर मारे तो उसने आँखे बन्द कर ली। उस समय उसके मुख पर जो शोभा दिखाई दी वह मानों उसकी सपत्नी के मुख से ही मिली थी—उस समय उसका मुख उसकी सपत्नी के मुख के सदृश ही मलिन और कोप-व्यञ्जक होगया था।

यह न समझिए कि गन्धर्वों ने ही छींटे उड़ा उडा कर अप्स-राओं को सिक्त किया। अप्सराओं ने भी उन पर छींटो की वर्षा की। एक अप्सरा ने अपनी अञ्जलि मे पानी भर कर उसे अपने प्रेमपात्र गन्धर्व पर फेकना चाहा। पर ज्योंही उसने अपना हाथ उठाया त्योंही उस गन्धर्व ने हँस कर उस अप्सरा का हाथ पकड़ लिया, वह पानी न डालने पाई। गन्धर्व के हाथ का स्पर्श होते ही उसके मन मे एक और ही भाव का उदय हो गया। उसका हृदय उच्छ्-वसित हो उठा। फल यह हुआ कि प्रेमवश उसकी कमर की वसनग्रन्थि शिथिल पड़ गई। बात यहाँ तक पहुँचने पर उसकी मेखला—उसकी करधनी—ने, सखी के सदृश, उसकी लज्जा रख ली। किसी स्त्री के आपद्ग्रस्त होने पर जैसे उसकी सखी उसकी सहायता करती है वैसे ही मेखला ने उस अप्सरा की सहायता की। बात यह हुई कि भीगने से मेखला कड़ी हो गई थी। अतएव, उसके कड़ेपन के कारण, वस्त्र गिर जाने से बच गया। ग्रन्थि ढीली

हो जाने पर भी वस्त्र वहीं, अपने स्थान पर ही, लिपटा रह गया। मेखला उसे सँभाले सा रही।

मज्जन करने से अमर-नारियों के शरीर की चारुता न घटी। उनके अञ्जनहीन नेत्रों की शोभा कटाक्षों ने बनी रक्खी, उनके धुले हुए लाक्षारस वाले अधरों की शोभा कँपकँपी ने बनी रक्खी, और उनके तिलकरहित ललाटों की शोभा रेखाओं ने बनी रक्खी। स्नान करने से अञ्जन, यावक-रस और तिलक यद्यपि धो गये, तथापि वक्र-विलोकन, अधर-कम्पन और ललाट-रेखाओं ने उनकी शरीर-शोभा कम न होने दी। यद्यपि उस समय उन नारियों के शरीर पर बनावटी अलङ्कार नष्ट हो गये थे, तथापि उनके हाव-भाव ही उनके शरीर पर अलङ्कारों का काम दे रहे थे।

अपने अपने प्रेमपात्र गन्धर्वों के पास ही मज्जन करने वाली उन सुरांगनाओं की शोभा अवर्णनीय थी। उनका शरीर कँप रहा था। श्वासोच्छ्वास के कारण उनका उन्नत उर धक् धक् कर रहा था—वह ऊँचा-नीचा हो रहा था। उनके आधे खुले और आधे बन्द नेत्र चञ्चलता दिखा रहे थे। उनके शरीर की यह दशा देख कर मन में सन्देह होता था कि उनके इन विकारों का कारण श्रम है अथवा प्रेम-सम्भूत औत्सुक्य? क्योंकि श्रम से भी पूर्वोक्त बातें हो सकती हैं और शृङ्गारिक भावों के उदय से भी।

एक गन्धर्व ने पहले तो अपनी नायिका की सपत्नी पर पानी फेंका, फिर स्वयं नायिका पर। इस कारण उस नायिका के कोप का ठिकाना न रहा। उसने मन ही मन कहा—पहले मुझ से हास्य-विनोद न करके मेरी सपत्नी से किया! यह अपराध अक्षम्य

है । उसे इस तरह अत्यन्त कुपित देख गन्धर्व ने उसकी बहुत ख़ुशामद की—उसे बहुत मनाया पथाया—पर सब व्यर्थ हुआ । वह अप्सरा किसी तरह भी प्रसन्न न हुई । होती कैसे ? प्राणोपम प्रणयी के सम्बन्ध मे उत्पन्न हुई मनोवेदना अनुनय-विनय करने से घटती नही, उलटा बढती है । और स्थलो मे मनाने से वह शान्त होती है, यहाँ बढ़ जाती है । इसका क्या कारण है, कुछ समझ मे नही आता ।

जितनी सुराङ्गनाये थी सबके जघन, उरु और उरोज अत्यन्त परिपुष्ट थे । इन अवयवो की विशालता के कारण वे बहुत देर तक वारि विहार न कर सकी । उनका बोझ सँभालना उनके लिए दुस्तर हो गया । अतएव वे सब एक ही साथ गङ्गा-प्रवाह से निकल कर किनारे की ओर चल पड़ी । उनके चलने से उठी हुई बडी २ लहरे बढ़ कर तट-प्रदेश से कुछ दूर आगे निकल गई । उनके इस प्रकार आगे बढ़ने से ऐसा सूचित होने लगा जैसे, उन देवाङ्गनाओ का वियोग सहन न होने के कारण ही, वे लहरे, आत्मीयजनों के सदृश, उनके साथ कुछ दूर तक चली आई । जल से निकल आने पर अप्सराये तारका-समूह से प्रकाशवती रात्रि की समता को पहुँच गई । वह इस तरह—रात को चक्रवाक् और चक्रवाकी, वियुक्त होकर, एक पक्षी नदी के इस तट पर और दूसरा उस तट पर हो जाता है । अप्सराओं के जल-विहार के कारण भी चक्रवाक् युग्म ने भयभीत होकर उनका सान्निध्य छोड़ दिया, वह तट पर दूर दूर जा बैठा । रात को सूर्य्यास्त हो जाने पर सरोरुह समुदाय की शोभा तिरोहित हो जाती है । सुराङ्गनाओ के वारि-विहार के कारण भी

पद्म-पुञ्ज, बेतरह हिलने डुलने और झकझोरे जाने से, शोभाहीन होगया। रात को नक्षत्र-माला का प्रकाश पडता है। देवाङ्गनाओ के भी कंठ पर पडा हुआ मुक्ताहार, धो जाने के कारण, नक्षत्र-माला ही के सदृश समुज्वल दिखाई दिया।

देवाङ्गनाओ के द्वारा उपभोग करके छोडा गया गङ्गा का जल परित्यक्त शय्या के सदृश शोभायमान हुआ। सोनेवाले के शरीर पर लगा हुआ उबटन आदि छूटने से प्रात काल शय्या का रङ्ग कुछ का कुछ हो जाता है। देवाङ्गनाओ के अङ्ग पर लगे हुए चन्दन के छूटने से गङ्गा के जल का रङ्ग भी बदल गया था। आभूषणों के टूटने से उनके रत्न—मणि, मोती आदि—गिर कर शय्या पर बिखर जाते हैं और पड़े चमका करते हैं। गङ्गा के जल मे भी देवाङ्गनाओ के टूटे हुए आभरणों के चित्र-विचित्र रत्नों की किरणे यत्र तत्र चमक रही थीं। शय्या पर प्रात काल शिकन पड़े हुए दिखाई देते हैं। गङ्गा के जल मे भी बँधी हुई लहरे, शिकनों के समान ही, दिखाई दे रही थीं। अतएव प्रात.काल छोडी गई शय्या मे जो बातें होती हैं वे सभी उस समय गङ्गा के जल मे दिखाई दीं।

# नवाँ सर्ग।

वारि-विहार के अनन्तर सुर-नारियों ने उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण धारण किये। तब तक दिन डूबने का समय भी आ गया। इस कारण उनके हृदय मे अपने अपने प्रेमियों से मिलने की इच्छा जागृत हो गई। यह देख कर सूर्य्य ने मानों कहा—इनके इस काम मे विघ्न डालना ठीक नही। मुझे अब यहाँ से खिसक ही जाना चाहिए। अतएव उनकी सहायता करने के इरादे से ही मानो सूर्य्य पश्चिम-समुद्र के पास पहुँच गया—वह अस्तोन्मुख हो गया। उस समय आकाश ने बडी ही मनोहारिणी शोभा धारण की। उसके एक तरफ़ सूर्य्य की किरणे लम्बी होकर दूर तक तिरछी फैल गई; और सूर्य्य, एक बहुत बड़े पन्ने के समान, उस तिरछी किरण-माला के पीछे, खिसकता हुआ दिखाई दिया। अतएव ऐसा मालूम हुआ जैसे व्योम-बाला ने, दिन की सायङ्कालीन शोभा के बहाने, लालिमा लिये हुए एक रत्न-हार धारण किया है—ऐसा रत्न-हार जिसके बीच का सबसे बडा रत्न हिल रहा है।

इसके कुछ ही देर बाद सूर्य्य का लाल लाल बिम्ब क्षितिज को छूता हुआ सा दिखाई दिया। सूर्य्य के उस डगमगाते हुए अस्तोन्मुख बिम्ब को देख कर ऐसा ज्ञात होने लगा जैसे उसने अत्यन्त

तृषार्त सा होकर अपने किरण-करों से कमलो का मधु आकण्ठ पी लिया हो। अतएव मतवाला सा होकर वह क्षिति पर पड़ा लोट रहा हो। पहले तो, दीप्ति की अधिकता के कारण, सूर्य्य की तरफ़ आँख उठाना असम्भव था। पर, अब, दीप्ति कम हो जाने पर, उसका आरक्त बिम्ब बहुत ही सुहावना हो गया; वह आँखों से अच्छी तरह देखने योग्य हो गया। इस समय एक बात और हुई। वह यह कि अभिताप ने भूतल से बिदा होकर चक्रवाक नामक पक्षियों के हृदयो का आश्रम लिया। अर्थात् (सूर्य्य की प्रखर किरणो से उत्पन्न हुआ) ताप पृथ्वी को छोड़ कर चक्रवाक-दम्पती के हृदयों मे दहकने लगा—सायङ्काल होने पर वे वियोगा-तप से सन्तप्त हो उठे।

जब कोई आश्रित जन अपने मूल आश्रयदाता से अलग होकर अपना पूर्व स्थान छोड़ देता है और किसी अन्य नीच स्थान का आश्रय लेता है तब उसकी बुरी दशा होती है। उसके मुख पर मलिनता छा जाती है और दुःख तथा दैन्य से वह खिन्न हो जाता है। सूर्य्य का बिम्ब आधा डूब जाने पर उसके किरण-समूह का भी ठीक ठीक यही हाल हुआ। अपने मूल आश्रय-स्थान सूर्य्य से पृथक् होकर और पूर्व-दिशा का परित्याग करके उसने पश्चिम-दिशा रूप नीच स्थान का आश्रय लिया। फल यह हुआ कि वह पहले की अपेक्षा हलका ही न हो गया, उसमे अत्यन्त मलिनता भी आ गई। मतलब यह कि सूर्य्यास्त के समय सूर्य्य की अवशिष्ट मयूख-माला फीकी पड़ गई।

सायङ्काल समीप आया जान सुर-सुन्दरियाँ तत्कालोचित

शरीर मण्डन—अलङ्कार आदि धारण—करने के लिए जल्दी करने लगी। इतने ही मे सूर्य की कुङ कुम-सदृश लाल लाल किरणे—पति-प्रेषित सखियों के समान—उनके निवास-भवनो की खिडकियो से प्रविष्ट हुई दिखाई दी। उनके दर्शन से सुराङ्गनाओं को बहुत सुख मिला। उन्होने उन किरणों का बडे ही प्रेम और बड़े ही आदर से अवलोकन किया।

चलते समय चीण-बल मनुष्य के पैर काँपते हैं। उसे डर लगता है कि कही गिर न पड़ूँ। अतएव वह छडी या लाठी टेक कर चलता है। अस्त होने के समय बूढे सूर्य्य का भी बल चीण हो गया था, उसकी तेजस्विता जाती रही थी। चढ़ना उसे ऊँचे अस्ताचल पर था। इस कारण वह अपने अरुणिमा-मिश्रित पीले पीले मृदु (निर्मल) करो (किरणो) से अस्ताचल के शिखरवर्ती पेड़ों की चोटियाँ थाँम कर या तो वहाँ के गहन वनों मे घुस गया, या चितिज के पास वाली पृथ्वी के पेट मे चला गया, या वहीं नीचे बहते हुए पश्चिम-पयोधि मे ग़ोता लगा गया। ठीक तो मालूम नही कि वह कहाँ गया, पर गया कही वह अवश्य, क्योंकि फिर उसका मण्डल जरा भी न दिखाई दिया। सूर्य्यास्त होते ही पत्ती कलरव-रत हुए अपने अपने घोसलों की ओर चल दिये। सूर्य्य का बिम्ब तो तिरोहित हो गया था, पर तब तक अन्धकार का उदय न हुआ था। अतएव वह सायङ्काल प्रात काल की तुल्यता को पहुँच गया। सूर्य्योदय के घड़ी आध घड़ी पहले का समय जैसा बहुत सुहावना होता है वैसा ही अन्धकार फैलने के पहले का समय भी बहुत सुहावना मालूम हुआ। बात यह थी कि उस समय न तो

अरुण राग ही रह गया था, और न सान्ध्य तम का ही आविर्भाव हुआ था। इसी से सन्ध्या होने पर भी प्रातःकाल का सा दृश्य दिखाई दिया।

आकाश के पश्चिमी भाग पर नीचे तो सन्ध्याकालीन लालिमा थी, ऊपर मेघो की पंक्ति छाई हुई थी। अतएव वह भाग, रक्त-वर्ण मूँगों के समुदाय के ऊपर तरङ्गमाला धारण करने वाले सागर के समान शोभायमान हुआ।

दुर्जनो की मैत्री स्थिर नही रहती। वह चञ्चल होती है, आज है तो कल नही। सन्ध्या ने इस तरह की दुर्जन-मैत्री का अच्छा उदाहरण दिखाया। सन्ध्योपासन के समय जो लोग नमस्कार-पूर्वक अञ्जलि बाँध कर सन्ध्या पर अपना प्रेम प्रकट कर रहे थे उनकी नम्रता, भक्ति और प्रीति की उसने कुछ भी परवा न की। अपने चञ्चल स्वभाव के कारण उसने ऐसे श्रद्धालु जनो को भी छोड़ दिया। वह चली गई, अधिक देर तक न ठहरी।

जब तक सूर्य्य का प्रकाश था—जब तक दिन का आतप विद्यमान था—तब तक अन्धकार न मालूम कहाँ छिपा पड़ा था; तब तक उस बेचारे को अपना मुँह दिखाने का साहस ही नहीं हुआ। पर दिन द्युति का तिरोभाव होते ही उसमे बल सा आ गया। अतएव उसने प्रकट होने की पटुता दिखाई। नीची जगहों से निकल कर धीरे धीरे वह सारे समतल स्थानों पर क्रम क्रम से फैल गया—ऊँची जगहे छोड़ कर अन्यत्र सब कही वह व्याप्त हो गया।

अन्धकार का राज्य होने पर अविवेक की बन आई। छोटे बडे का भेद दूर हो गया; उनके विषय का विवेक ही जाता रहा। अन्ध-

था; पर उसके पास न पहुँच सकने के कारण वह छटपटा रहा था। वहीं जलाशय मे खडी सरोजिनी इन पक्षियो की दुर्दशा देख रही थी। उस पर इनकी इस दुर्गति का बड़ा असर हुआ। अतएव उसने अत्यन्त दुखी होकर अपना कमलरूपी मुख नत कर दिया। मुरझाये हुए कमल-फूल के बहाने सिर झुका कर वह रह गई। बात यह है कि स्त्रियाँ स्वभाव ही से कोमल-हृदय होती हैं। उनसे दूसरे का दुःख नहीं देखा जाता। दूसरे के वियोग-दुःख को देख कर तो वे और भी अधिक कातर हो जाती हैं।

अन्धकार के अखंड शासन ने सबको अपने अधिकार के अन्तर्गत कर लिया। छोटो की तो बात ही नहीं, बड़े बड़े वृक्षों और शैल-शृङ्गो तक को देख कर यह शङ्का होने लगी कि क्या अन्धकार ने इन्हे अपने रङ्ग में रँग दिया है? अथवा क्या उसने इन सबको काला कर डाला है? आकाश को देख कर यह सन्देह होने लगा कि क्या वह झुक कर पृथ्वी का आलिङ्गन करने लगा है? अथवा क्या उस पर अन्धकार का आच्छादन (गिलाफ़) चढ़ा दिया गया है? दिशाओ की ओर दृष्टिपात करने से यह संशय होने लगा कि निबिड़ अन्धकार मे क्या वे कहीं चली गई हैं? अथवा क्या वे वहीं लुप्त हो गई हैं? क्योकि यदि वे होतीं तो अवश्य ही दिखाई देती। पृथ्वी को देख कर मन मे यह कल्पना होने लगी कि क्या वह समतल है? अथवा क्या उसकी ऊँचाई निचाई बिलकुल ही जाती रही है? अन्धकार में सारे संसार के समा जाने से मनुष्यो के मन मे ऐसी ही ऐसी अनेक शङ्काओं का उदय हुआ।

बेचारे कमलो की दुर्दशा का हाल कुछ न पूछिए। उनका खिलना तो बन्द ही होगया; अन्धकार से आवृत हो जाने के कारण उन पर मलिनता भी छागई। अतएव शोभा ने उन्हे छोड़ दिया। बुरे दिन आने पर कौन किसका साथ देता है? शोभा—सुन्दरता—ने कहा, अब कमलो मे रक्खा ही क्या है? चलो इन्हे छोड़ कर किसी और सौभाग्यशाली का आश्रय ढूँढे। इस प्रकार सोच कर वह स्पष्ट उदित तारकाओं वाले रुचिर आकाश के पास चली गई। उसकी बदौलत आकाश शोभायमान हो गया। बात यह है कि निरापद स्थान मे ही रहना सब कोई पसन्द करता है, आपद्ग्रस्तों की ओर कोई आँख उठा कर भी नही देखता।

इतने मे चन्द्रोदय होगया। चन्द्र ने केतकी के कुसुम-केसरों के सदृश शुभ्र और कान्तिमान् किरणों का समूह, पूर्व दिशा मे, छोड़ दिया। वहाँ वह सर्वत्र फैल गया। इस दृश्य को देख कर ऐसा मालूम होने लगा जैसे चन्द्रमा ने अपनी श्वेत किरणो के समुदाय के बहाने कपूर का चूर्ण, मुट्ठी मे लेकर, पूर्व-दिशा-रूपिणी नायिका के मुख पर मार दिया हो।

तारकाधिप चन्द्रमा को अपने पास पहुँच गया देख पूर्व-दिशा आनन्द से उछल पड़ी। तमो-राशि को उसने, वियोग-व्यथा की तरह, तत्काल ही छोड़ दिया। उसके प्रसन्नता-पूर्ण मुख पर, रश्मि-जाल-रूप विशद हँसी विराजने लगी। बहुकालोपरान्त पति के आने पर पत्नी प्रसन्न हो जाती है, उसकी मलिनता—उसकी उदासीनता—जाती रहती है, उसके मुख पर हँसी खेलने लगती है। निशानाथ चन्द्रमा के प्रकट होने पर पूर्व-दिशा की भी वही दशा

हुई। उसके चेहरे पर वही लावण्य, वही प्रसन्नता, वही हँसी दिखाई देने लगी।

उदयाचल की आड़ से निकले हुए चन्द्रमा की तुषार-धवल किरणो का समूह जब नीलोत्पल-सदृश नीले आकाश मे गिरने लगा तब बड़ा ही अद्भुत दृश्य दिखाई दिया—तब ऐसा मालूम हुआ जैसे भागीरथी का शुभ्र सलिल-प्रवाह सागर के नील-नीरज-निभ जल मे गिर रहा हो।

जब तक चन्द्रोदय न हुआ था तब तक नील नीरद के समान काले काले अन्धकार ने आकाश को व्याप्त कर रक्खा था। परन्तु चन्द्रमा ने, उदित होते ही, सामने फैले हुए उस घने अन्धकार को, अपने उदीयमान श्वेत करो ( किरणो ) से, तत्काल ही दूर हटा दिया। उस समय ऐसा मालूम हुआ जैसे महादेवजी ने अपने ओढने के काले काले गज-चर्म को सामने से दूर फेक दिया हो।

कुछ ही क्षणों मे चन्द्रमा और ऊपर उठ आया। धीरे धीरे वह दिगन्त (क्षितिज) के बहुत पास पहुँच गया। अब तक उसकी किरणें तिरछी पड़ रही थी। अब वे सीधी पड़ने लगी। फल यह हुआ कि निशानाथ की रश्मि-राशि ने तमोजाल को छिन्न भिन्न कर दिया। फिर क्या था, अन्धकार का अवरोध दूर होते ही पूर्व दिशा आनन्द से उच्छ्वसित हो उठी—वह उस समय बहुत ही शोभायमान हुई।

आदि-वराह ने, सोने की टाँकी के सदृश, अपनी अरुणिमा-मिश्रित उज्ज्वल डाढ़ो से जिस तरह भू-मण्डल को नीले नीले सागर से निकाल कर ऊपर उछाल दिया था उसी तरह कलाधर ने, विमल

विद्रुम के सदृश, अपनी उज्ज्वल कला से तिमिर के घनीभूत पटल को नीले नीले आकाश से उठा कर दूर फेंक दिया। चन्द्रमा की कौमुदी सर्वत्र फैल गई। अतएव, अन्धकार का नाश हो जाने से दिशाओं ने स्वच्छता धारण कर ली।

अब तक चन्द्रमा का पूरा बिम्ब न निकला था। पर अब धीरे धीरे वह पूरा निकल आया। कुंकुम लगे हुए अरुण पयोधर के आकार का स्वच्छ चन्द्रमा, अपनी किरणों से आकाश को दीप्तिमान् करता हुआ, पूर्वी समुद्र से, सोने के घड़े के सदृश, पूर्व दिशा से बाहर निकल पडा।

इस समय यद्यपि चन्द्रमा सम्पूर्ण-भाव से निकल आया था, तथापि तिमिर की कुछ कुछ छाया फिर भी बनी थी। अतएव पूरे चन्द्र-बिम्ब के प्रकट होने पर भी रात कुछ कुछ मलिन दिखाई देती थी। पर यह मलिनता उद्वेगजनक न थी, यह तो और भी मनोरञ्जक और कुतूहल-वर्द्धक थी। क्योकि, उस समय रात उस नवोढ़ा वधू की समता को पहुँच गई थी जिसने घूँघट उठा कर मुँह तो अपना खोल दिया है, पर लज्जा के कारण उसके मुख से प्रसन्नता नहीं, मलिनता, झलक रही है। चन्द्रोदय होने पर रात को, ऐसी ही वधू के सदृश, देर तक देखने पर भी लोगो की तृप्ति न हुई। यद्यपि उस समय चन्द्रालोक से आकाश पूर्ण पुलकित न था, यद्यपि पर्वतो और वनो के भीतर से तिमिर अच्छी तरह तिरोहित न हुआ था, यद्यपि दिशाओं के मुख चन्द्रच्छटा से यथेष्ट आच्छादित न थे—तथापि चन्द्रमा के योग से रजनी फिर भी गहने पहने सी ही मालूम हुई। बात यह है कि पति ही स्त्री का सब से बड़ा

भूषण है। यही कारण है जो और मण्डनो मे कुछ कमी रह जाने पर भी, चन्द्रमा के कारण, रजनी बड़ी सुन्दर और सुभग दिखाई दी।

जब तक चन्द्रोदय न हुआ था तभी तक मानिनी महिलाओं की खैर थी। चन्द्रोदय होते ही उनका मान भङ्ग हो गया। इस कारण चन्द्रमा को देखते ही उन्होने उस पर विरह-ताप से तप्त आँसू बहानेवाले अपने नेत्रों के कुटिल कटाक्षों की बाण-वर्षा आरम्भ कर दी। उनके कटाक्ष-शरों के कारण ही चन्द्रदेव मानो भयभीत से होकर, बहुत धीरे धीरे आकाश मे उदित हो सके।

शीतरश्मि चन्द्रमा ने अपने किरण-रूपी लम्बे लम्बे हाथ फैला कर बड़े प्रेम से अपनी तारकारूपिणी प्रिय वधुओ का आलिङ्गन किया। अतएव अनुराग-वृद्धि के कारण, उसकी रश्मि-राशि की रक्तिमा—उसकी ललाई—अङ्ग-राग ( शरीर पर लगाये गये लेप या उबटन ) की तरह, छूट कर आकाश मे चारों तरफ़ फैल गई। इससे आकाश की शोभा बहुत ही बढ़ गई।

मन्दराचल से मथे जाने पर क्षीर-सागर उमड चला था। उस समय दूर दूर तक फैले हुए उसके क्षीर-रूपी शुभ्र सलिल ने, घने और ऊँचे ऊँचे पेड़ों वाले, अन्धकार-पूर्ण, वनों को ढक लिया था। उन्हे सफ़ेद बना दिया था। चन्द्रमा ने भी कुछ कुछ इसी तरह का दृश्य दिखा दिया। उसने भी अपनी श्वेत किरणों के समूह को दूर दूर तक फैला कर उससे, एकत्र हुए घने अन्धकार को ढक लिया—उस पर सफेद ग़िलाफ़ सा चढ़ा दिया। उसने और भी ऐसे ही तमाशे दिखाये। पेड़ों की डालियो और पत्तों के बीच बीच

ख़ाली जगहो मे उसने अपनी मनोहारिणी मरीचि-माला भर दी । अतएव भूमि पर पड़ी हुई तरुच्छाया में बीच बीच श्वेत वर्ण के चित्र-विचित्र बेल-बूटे और फूल-पत्ते से दिखाई दिये । उन्हें देख कर ऐसा मालूम होने लगा जैसे मनुष्यों के निवास-भवनों के आँगन की भूमि पर पूजा के सफेद सफेद फूल बडे ही अनोखे ढंग से बखेरे पडे हो ।

पत्नी पास होने के कारण चक्रवाक ने दिन को—सन्तापकारी समय मे भी—सूर्य्य की प्रचण्ड धूप सह ली । पर उस रात्रि-वियोगी पक्षी को, अपनी प्रियतमा चक्रवाकी से जुदा हो जाने पर, शीतमयूख चन्द्रमा की शीतल किरणे भी असह्य हो गईं । बात यह है कि मन दुखी होने पर सभी पदार्थ दु खदायी हो जाते हैं—सुन्दर और सुखद पदार्थ भी उस समय अच्छे नहीं लगते । पत्नी के पास होने के कारण जब चक्रवाक का मन मुदित था तब सूर्य्य की कड़ी धूप भी कुछ न मालूम होती थी । पर पत्नी का वियोग होने के कारण उसी चक्रवाक का मन जब दु.ख से अभि-भूत हो गया तब शशि की शीतल और सुखकारिणी चाँदनी भी उसे कष्टदायिनी हो गई । इससे स्पष्ट है कि किसी वस्तु की सुख-दु.ख-कारकता पात्र के मन की स्थिति पर ही अवलम्बित रहती है, उस वस्तु पर अवलम्बित नही रहती ।

इतने मे, पूर्ण चन्द्रोदय हो जाने पर, पानी के कणो को अपने साथ लानेवाली और विकसनशील कुमुदो के सैारभ और पराग को इधर उधर फैलानेवाली, निशा-सम्बन्धिनी शीतल और सुगन्धिपूर्ण समीर चलने लगी । उसने बसेरा लिये हुए विहंगो से

लीन वनो को धीरे धीरे हिलाना आरम्भ कर दिया। वह मन्द ही मन्द चली। उसने सोचा, वेग से चलने से ऐसा न हो जो ये सोये हुए पक्षी जाग पडे । क्योकि भले आदमी किसी के सुख मे कभी बाधा नही डालते ।

समय की अनुकूलता देख कर अब रजनीरूपिणी रमणी ने, त्रिभुवन जीतने की यात्रा के लिए उद्यत, भगवान् कुसुमशायक, का अभिषेक करना चाहा। अभिषेक के लिए कलश दरकार होता है, जल भी दरकार होता है और कलश मे डालने के लिए कमल आदि के फूल भी दरकार होते हैं। चन्द्रमा मे उसे यह सभी सामग्री मिल गई। स्वय सुधांशु को तो उसने चाँदी का कलश बनाया, उसके हिमवर्षी ज्योत्स्ना-जाल को जल बनाया और उसके काले काले कलङ्क को नील कमल बनाया। इस प्रकार निशा-नारी ने, सब सामग्री से पूर्ण, चमकते हुए कलाधर को ही, आकाश मे, कौतूहल-पूर्वक कलशवत् उठा लिया—उसे कलश के सदृश धारण किया। इस प्रकार काम की विजय-यात्रा की घोषणा हुई ।

राजनीति-विशारदो का कहना है कि समर्थ और तेजस्वी होने पर भी बिना अच्छा सहायक—बिना अच्छा साथी—पाये जीत नही होती। विजय-प्राप्ति की इच्छा रखनेवाले राजा के लिए तो अच्छे मित्र की और भी आवश्यकता होती है । क्योंकि राजत्व के सात अङ्गों मे "सुहृद्" भी एक अङ्ग है। यह नियम राजा ही के लिए नहीं, विजय चाहनेवाले सभी लोगो के लिए है। देखिए, भगवान् पञ्चायुध की क्षमता और शक्ति मे किसी को सन्देह नही। उसका बल-पौरुष त्रिभुवन मे विख्यात है । उसके धनुष से

छूटा हुआ शर कभी निष्फल नहीं जाता। तिस पर भी उसे चन्द्रमा को अपना सहायक बनाना ही पडा। उसके उदय-द्वारा उद्दीपन की सामग्री प्रस्तुत करके ही उसने अपना धन्वा उठाने का साहस किया।

सुरागनाओ के विलास का समय समीप आ गया। इसके लिए उन्होने पहले ही से तैयारी कर रक्खी थी—पहले ही से उन्होने अपने अपने मकान खूब सजा रक्खे थे। तथापि उन सजे सजाये मकानो को उन्होने फिर भी सजाना चाहा। उन्हे अपने अपने पतियों के जी की बाते पहले ही ज्ञात हो गई थी—उनके मानसिक भावो का हाल उन्हे पहले ही मालूम हो गया था। तथापि, अनावश्यक होने पर भी, उन्होंने उनके पास, दूत-कार्य के लिए, अपनी अपनी चेटियो को भेजना चाहा। इसी तरह यद्यपि उन्होने पहले से ही सब शृङ्गार कर रक्खे थे—अच्छे अच्छे वस्त्राभूषण धारण कर रक्खे थे—तथापि उन्होंने फिर भी दुबारा शृंगार करना चाहा। उनकी उत्सुकता इतनी बढ रही थी कि जो काम वे कर चुकी थी उनको भी उन्होने फिर से करना चाहा।

जिन सुराङ्गनाओं के पति उनके पास न थे—जो वियोगिनी थीं—उन बेचारियों को न पुष्प-मालायें अच्छी लगीं, न चन्दन आदि का लेप ही रुचिकर हुआ और न मदिरापान ही सुख-कारक जान पडा। ये सभी उद्दीपक वस्तुयें उनको उलटा सन्ताप-जनक मालूम हुईं। बात यह है कि मदिरा और मालाये आदि जितने साधन विलास-विधि के हैं वे सब सयोग ही मे रमणीय मालूम होते हैं। वियोग मे तो वही विषवत् हो जाते हैं।

जो सुराङ्गनायें किसी कारण से मानिनी बनी बैठी थीं—जो कुपित थीं—वे भी अपने अपने पतियों के घर जाने की तैयारी करने लगीं। यह देख कर उनकी सखियों ने उन्हें बहुत समझाया बुझाया। उन्होंने कहा—बिना बुलाये जाना अच्छा नहीं, जाने से तुम्हारी लघुता सिद्ध होगी। पर सुराङ्गनाओं ने सखियों की हित-शिक्षा न सुनी। कारण यह हुआ कि उन्होंने यथेच्छ मद्यपान किया था। अतएव नशे के कारण यद्यपि उनके मन और शरीर, दोनों, को कुछ कुछ कष्ट पहुँचा—दोनों कुछ कुछ विकृत हो गये—तथापि उनका मान छूट गया और वे अधीर हो उठीं। पतियों के पास जाने के लिए उनको मद्यपान बहाना भी हो गया। उन्होंने अपने मन में कहा—हम तो नशे में हैं। इस दशा में चली जाने से मानहानि नहीं। हम कह देंगी कि हम होश ही में न थीं। होश में होतीं तो कभी न आतीं।

नाना प्रकार के आलाप करती और हँसती खेलती हुई अप्सरायें घर से चल दीं। बातों के कारण अन्यमनस्क होने पर भी वे मार्ग न भूलीं। वे अपने अपने प्रेमपात्र गन्धर्वों के घर पहुँच ही गईं। विलास की इच्छा जब बहुत बढ़ जाती है तब बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। तथापि, प्रेम की कुछ ऐसी महिमा है कि विरुद्धाचरण करने पर भी प्रायः उपकार ही होता है। ऐसे मौक़ों पर भ्रम हो जाने पर भी भगवान् पञ्चशायक के प्रसाद से परिणाम प्रायः अच्छा ही होता है।

अपने अपने प्रेमास्पदों के पास जाते समय, श्रम के कारण उत्पन्न हुए पसीने से, अप्सराओं के कपोलों पर बने हुए केसर-

कस्तूरी आदि के बेल-बूटे, और ललाट पर लगे हुए तिलक, खण्डित हो गये—वे कहीं कहीं धुल गये। परन्तु उत्साह और आनन्द के कारण उनके कपोलों पर पुलकावलि छा गई। अतएव वे बहुत ही मनोहारी हो गये। इस कारण, खण्डित पत्र-रचना और तिलक वाले भी उनके मुखों ने अपनी कान्ति से अखण्डित चन्द्रमा की कान्ति को जीत लिया। वे पूर्णिमा के चन्द्रमा से भी अधिक शोभायमान हुए।

कुछ सुरागनाओं मे मान की मात्रा बहुत ही अधिक थी। इस कारण वे अपने अपने प्रेमपात्रों के पास न गईं। इस विषय मे उनमें और उनकी सखियों मे परस्पर बहुत बातें हुईं। उनके नमूने सुनिए—

नायिका—"उस धूर्तराट् से सब बातें साफ़ साफ़ कह देना। ज़रा भी मुलाहज़ा न करना। उसकी खूब खबर लेना।"

सखी—"यह ठीक नहीं। पति ईश्वरवत् मान्य है। वह अपना स्वामी है। उसके साथ कठोरता का व्यवहार न करना चाहिए। परुषता अच्छी नहीं होती।"

नायिका—"अच्छा, तो किसी तरह मना-पथा कर उसे यहाँ ले ही आना।"

सखी—"यह भी नहीं हो सकता। जिसने तुम्हारे साथ ऐसा बुरा व्यवहार किया उसकी खुशामद करना भी तो उचित नहीं।"

नायिका—"तो फिर उसके पास न जाना ही उचित है। जाने से लाभ ही क्या?"

सखी—"मेरी राय तो यह है कि तुम्हारा जैसा पति मिलना दुर्लभ है। ऐसे पुरुष-रत्न से तुम्हे रूठना ही न चाहिए। तुम मान करना ही छोड दो।"

इस प्रकार आपस मे बाते हो हो रही थी कि इन मानिनी अप्सराओं के प्रेमपात्र पति स्वय ही आकर वहाँ अकस्मात् उपस्थित हो गये। उन्होने इनकी बाते सुन कर अद्भुत आनन्द प्राप्त किया। उन्हे इनकी बातों मे जो रस मिला वह वर्णन का विषय नही।

पतियों से मिलाप होने पर सुरनारियो के शरीर पर पसीना बह निकला। वह उनके रोमाञ्चो तक मे व्याप्त हो गया; उनके सारे रोमकूप पसीने से भर गये। इस कारण सुराङ्गनाओं के शरीर-मण्डन—लेप और पत्र-रचना आदि शृङ्गार—सब बिगड गये। पर इससे उनकी शरीर-शोभा कम न हुई। उनका बिगड जाना—उनका धुल जाना—ही एक प्रकार का शृङ्गार हो गया। क्योकि ऐसे अवसर पर आभूषणो का अस्त-व्यस्त हो जाना और केशर, कस्तूरी तथा चन्दन आदि की पत्रावली का बिगड जाना भी अच्छा ही लगता है।

मद्यपान से मतवाली सुराङ्गनाओ का मान छूटते देर न लगी; वह न मालूम कहाँ छू हो गया। पतियो से समागम होने पर उन मानिनी महिलाओ का मान ही न जाता रहा, उनका सङ्कोच-भाव भी दूर हो गया। नही कह सकते, यह परिवर्तन मदन ने किया या मद ने। क्योकि ये बाते मदन-महीप की प्रेरणा से भी हो सकती हैं और मद के प्रभाव से भी—नशे से भी सङ्कोच जाता

रहता है और मान छूट जाता है; और शृङ्गारिक भावो के अतिरेक से भी।

देवाङ्गनाओं के साथ उनकी सखियाँ भी थीं। उन्होने नमक-मिर्च लगा लगा कर प्रसङ्गानुकूल बाते आरम्भ कर दी। उन्होंने सुराङ्गनाओं के प्रेमियों से कहा—"हमारी सखी द्वार पर दृष्टि लगाये तुम्हारी राह घण्टों देखती रही है। हाथो पर कपोल रक्खे हुए दिन दिन रात रात तुम्हारी ही चिन्ता करती रही है। अधिक क्या कहे, यह तो तुम्हें अपने प्राणों से भी अधिक समझती है—तुम्हारे बिना तो यह जी ही नहीं सकती। जिसकी उत्सुकता, चिन्ता और गाढ अनुरक्ति का यह हाल है भला उससे भी तुम्हे कलह करना चाहिए!" इस तरह की बातें सुन सुन कर वे लोग बहुत ही प्रसन्न हुए। उनका प्रेम दूना हो गया। उनको इन बातों में अपूर्व नवीनत्व— अपूर्व भाव—भरा मालूम हुआ।

जिस सङ्कोच के कारण देवाङ्गनायें अपने प्रेमियों की ओर सीधे देख भी न सकती थी—यदि देखती भी थी तो तिरछी दृष्टि करके कनखियों से देखती थी, और जिसके कारण कोई अभिलषित बात होने पर भी उसमे वे रुकावट पैदा करने लगती थी—वही सङ्कोच उन सुनयनी नारियों के लिए भूषण हो गया, उससे उनके हाव भावो का मूल्य और भी बढ़ गया। पर यह सङ्कोच-भाव बहुत देर तक न रहा। धीरे धीरे वह समग्र लोप हो गया।

एक देवाङ्गना के प्रेमी से कोई बात न बनी। इस कारण उसकी प्रेमपात्रिणी अप्सरा ने उसे खूब फटकार बताई। इस पर वह खिन्न सा हो गया और कुपित होने का बहाना करके वहाँ से उठ जाने

लगा। यह देख कर उस अप्सरा के होश ठिकाने आ गये। भावी वियोग का ख़याल करके वह व्याकुल हो उठी। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली। उस अश्रुधारा से बिगड़ी बात बन गई। अप्सरा की आँखों मे आँसू देख कर उसका प्रेमी वहीं रुक गया। उस अश्रु-समूह ने मित्र के सदृश काम किया। अपने क्रुद्ध सुहृद् को उठ जाते देख उसका मित्र जिस तरह उसका हाथ पकड़ कर उसे जाने से रोक देता है उसी तरह उस अप्सरा के अश्रु-पुञ्ज ने भी उसके प्रेमी को जाने से रोक दिया।

एक अप्सरा, ईर्ष्या के कारण, अपने प्रेमास्पद गन्धर्व पर कुपित थी। वह उसकी विमुखता कर रही थी। उसके मन की वह एक भी बात न होने देती थी। उसके कोप का यह हाल था कि वह धड़ाधड़ आँसू बहा रही थी परन्तु कुछ ही देर मे उसकी दशा आपही आप बदल गई। उसका मन और का और हो गया। कहाँ तो वह अपने प्रेम-पात्र के सामने आँख तक न करती थी, कहाँ वह उसकी तरफ़ टकटकी बाँध कर देखने लगी। यहाँ तक कि उसके शरीर पर रोमाञ्च हो आया। उसकी यह दशा देख कर उसके नायक की शङ्का जाती रही। वह समझ रहा था कि यह अब तक मानिनी ही बनी हुई है—अब तक रूठी ही है। पर शरीर पर रोमाञ्च देखते ही वह समझ गया कि इसका कोप जाता रहा; अब तो यह मुझ पर अच्छी तरह अनुरक्त है। अतएव अब परस्पर हास, परिहास और विलास होने लगे। धीरे धीरे शृङ्गार-रस का उत्कर्ष बढ़ा। फल यह हुआ कि सङ्कोच के साथ ही वस्त्र भी शिथिल हो गये। उनको शिथिल होते देख, तागड़ों ने उन्हें पकड़

रक्खा। तागड़ी और परिधान-वस्त्रों मे परस्पर मैत्री होती है; क्योंकि दोनों साथ ही रहते हैं। इस कारण उसने वस्त्रो का अवरोध किया। पर उसकी कुछ न चली। वस्त्रों को स्थानच्युत होना ही पड़ा। इस पर अप्सराओं को लज्जा मालूम हुई। तब उन्होने अपने प्रेमियों का दृढ़ आलिङ्गन करके अपने अंगों का संगोपन किया।

भगवान् अनङ्ग सुकुमारता के लिए प्रसिद्ध हैं। कहते हैं, सुकुमारता के कारण उन्होने बहुत कीर्ति कमाई है। उनकी सभी सामग्री सुकुमार, कोमल और कान्त है। परन्तु ये सब कहने की बाते हैं। वियोग ही में नहीं, संयोग मे भी वे क्रूरता का व्यवहार करते हैं। बिना थोडो बहुत क्रूरता और कठोरता का अनुभव कराये वे अपनी सुकुमार सामग्री से कुछ भी आनन्द नहीं प्राप्त होने देते। यही कारण है जो उनकी आज्ञा के परिपालन में नख-चिह्नों और दन्त-क्षतो का क्लेश सहना पड़ता है। बिना ऐसे किये यथेष्ट सुखानुभव ही नही होता। एकान्त में पाणि-पल्लव नचवाना, सीत्कार कराना, आँखों का अर्द्धांश मिचवा लेना और स्खलित वचन कहाना — यही उनके अस्त्र हैं। इन्ही क्रियाओ से वे काट करते हैं—इन्ही से वे वह काम लेते हैं जो अस्त्रों से लिया जाता है। तब कहीं उनके आदेश की पूर्ति होती है और तब कहीं उस पूर्ति से सुख की प्राप्ति। प्रेमोद्दीपन यों ही नही हो जाता।

अब सुर-नारियों और उनके प्रेमास्पदों ने मद्य-पान की ठानी। मद्य है भी अद्भुत वस्तु। उससे अनुराग की वृद्धि होती है; बार बार पीने पर भी उससे अरुचि नही होती, हर बार उसमें नया ही

स्वाद मिलता है । यदि मद्य के प्याले मे कमल-कली पड़ी हो, तो फिर कहना ही क्या है । फिर तो कोई उसे चाहे जितनी दफ़े पिये, तृप्ति ही नही होती । सुराङ्गनाओ के प्रेम-पात्र युवा गन्धर्वों के सौभाग्य से उन्हे ऐसी ही मदिरा प्राप्य थी । अतएव उन्होंने स्मित युक्त वधू-वदनों को और साथ ही उस मदिरा को भी पीने का उपक्रम किया । फिर क्या था, मधु पान आरम्भ हो गया । कान्त सङ्गम होने से मानिनी महिलाओं का रोष तो शान्त ही हो चुका था । उलाहने और विवाद की बाते कुछ रह गई थी । मधु-पान से उनकी भी शान्ति हो गई । अतएव मनोभव ने अपने धनुष पर शर-सन्धान करने की ज़रूरत ही न समझी । उसने सोचा, इन लोगों ने परस्पर सन्धि कर ली । जो बात मैं चाहता था वह हो गई । साध्य सिद्ध हो गया । अब व्यर्थ बाण चलाने से क्या लाभ ?

मतवाले बहुधा असङ्गत ही बाते कहते हैं; जो कुछ उनके मुँह से निकलता है, अनाप-शनाप बकते हैं । मधुपान के समय अप्सराओं ने भी मनमाना प्रलाप किया । किसी ने कहा—"हमारे अमुक अप्रसन्न हो जायँगे तो कुछ परवा नही । उन्होंने किया क्यों ऐसा काम ?" दूसरी ने कहा—"नही नहीं, तुम्हें ऐसा न कहना चाहिए । तुम शीघ्र ही अनुकूल होकर उनकी इच्छा-पूर्ति करो ।" तीसरी ने कहा—"यदि वे सचमुच ही कुपित हो गये हों तो तुम तत्काल ही उनकी सेवा-शुश्रूषा करके उनका कोप दूर करो ।" इसी तरह के अनेकानेक उपदेशो की झड़ी लग गई । बार बार कही गई इस तरह की बातों—इस तरह के उप-

देशों—को सुन कर अप्सराओं को जैसे तृप्ति न हुई उसी तरह, उस समय, प्याले पर प्याला मद्य पीकर भी उन्हें तृप्ति न हुई। हर प्याले में उन्हे नया ही नया स्वाद मिला। उन्हे उनके प्रेमियों ने बड़े प्रेम और बड़े आदर से मद्य पिलाया। एक तो वह मद्य स्वयं ही बहुत अच्छा था, फिर प्रेम से पिलाया गया था। अतएव वह और भी स्वादिष्ट मालूम हुआ। उसे यथेष्ट पीने पर अप्सरायें कुछ की कुछ हो गईं। मद ने उनका लज्जा-भाव और जाड्य बिलकुल ही दूर कर दिया। उनकी उस समय की चेष्टायें देख कर यह शङ्का होने लगी कि या तो उनका हृदय ही बदल गया है या जो बदला नहीं तो उनमे विलक्षण चातुर्य्य का प्रादुर्भाव हो गया है। दो मे से एक बात अवश्य है। अन्यथा उनसे ऐसी ऐसी बातें न हो सकतीं।

पहले जब अप्सराओं ने अपने ही हाथ से मधु पिया तब उन्हे एक प्रकार का स्वाद मालूम हुआ। उन्हे पीते देख उनके प्रेमियों ने कहा—लावो अब हम पिलावें। यह कह कर उन्होंने अप्सराओं के हाथ से प्याले ले लिये और सम्मान तथा प्रेमपूर्वक उन्हे अपने हाथ से मधु पिलाया। तब अप्सराओ को और ही तरह का स्वाद मिला। इसके बाद नायको और नायिकाओं ने मिल कर एक ही पात्र मे एक ही साथ मधु-पान किया। तब और ही तरह का स्वाद मिला। इस प्रकार हर दफ़े उन्हे, क्रिया-भेद के साथ ही, स्वाद मे भी भेद जान पड़ा। बात यह कि प्रेम-वृद्धि के साथ ही साथ स्वाद-वृद्धि भी होती गई।

प्यालों में भरी हुई मदिरा मे नील कमल पड़े थे। उनकी

पँखुड़ियाँ धीरे धीरे हिल रही थी। प्याले उठा कर ज्यों ही अप्स-राये उन्हे अपने मुँह के पास ले गई त्यो ही कमलों की दृष्टि उनकी आँखों और भौंहों पर पडी। उन्होने देखा कि विलासपूर्ण भौंहो के कारण आँखों की सुन्दरता बहुत बढ़ रही है। आँखें स्थिर नही, वे कटाक्षपूर्ण हैं। यह दृश्य देख कर कमलों के जी मे आया कि लाओ इन आँखो की बराबरी करे। उनकी पँखुड़ियाँ हिल रही थी। अतएव वे अप्सराओं की भौंहो के चाञ्चल्य की बराबरी अवश्य ही कर सकते थे। पर आँखो मे बङ्क विलोकन भी थी। कमलो मे इस बात की कमी थी। अतएव मद्य की लहरो के आघात से कमल कँपने लगे। तब कहीं वे उन अप्स-राओं की टेढ़ी भ्रुकुटी वाले कटाक्षपूर्ण नेत्रों की समता कर पाये।

मद्य के प्यालो पर कमल-पुष्प तैर रहे थे। अप्सराओं के मुखरूपी प्यालो पर भी विलोल-लोचन-रूपी सरोज शोभमान थे। सुराङ्गनाओं के स्नेहियों को पहले प्रकार के प्याले जितने रोचक थे, दूसरे प्रकार के उससे भी अधिक रोचक थे। अतएव उन्होंने इन दूसरे प्रकार के प्यालो से बार बार मधु-पान करके और भी अधिक मनोमोद प्राप्त किया। इसका कारण था। वस्तु चाहे जितनी गुणवती हो, अच्छा साहाय्य अथवा अच्छा आश्रय पाने पर, उसके स्वाभाविक गुण और भी विशेष हो जाते हैं—वे और भी खुलते दिखाई देते हैं। मधु यद्यपि स्वयं ही गुण वाला था—यद्यपि वह स्वयं ही खूब रोचक था—तथापि उन दूसरे प्रकार के प्यालों का आश्रय पाने पर उसकी रोचकता और भी अधिक हो गई। उसका स्वादु बढ़ गया, उसमें अपूर्व रस आ गया।

मद्य-पान करने से अप्सराओं के अधरों मे लगा हुआ लाक्षा-रस छूट गया। रँगे हुए ही अधर अच्छे लगते हैं, पर इस समय बात उलटी हुई। अप्सराओं को अपने यावकहीन, फीके फीके, अधर ही भले मालूम हुए। कारण यह हुआ कि कृत्रिम लालिमा दूर हो जाने पर अधरों के क्षत साफ़ साफ़ दिखाई देने लगे। अतएव मद्य से लबालब भरे हुए प्यालों मे उन क्षत-विक्षत अधरों का प्रतिबिम्ब देख कर अप्सराओं ने मन ही मन मधुपान की बडी प्रशंसा की। उन्होने कहा—यदि हम इस प्रकार मधु का सेवन न करतीं तो इन सौभाग्य-सूचक चिह्नो से अलङ्कृत अधरों का ऐसा सुन्दर दृश्य कैसे देखने को मिलता।

मदिरा ने कुछ अनोखी बातें कर दिखाईं। उसने आँखो मे तो अरुणिमा उत्पन्न कर दी और अधरों की अरुणिमा हर ली। उधर मुखो को तो अपने सुवास से सुवासित कर दिया और अपने को मुखों की सुगन्धि से सुरभित कर लिया। अब इसे विनिमय कहें या व्यत्यय? यदि उसने अरुणिमा और सुवास का बदला जान बूझ कर किया हो तो विनिमय हुआ, और यदि भूल से किया हो तो व्यत्यय।

अप्सराओं के कानों से नील कमल लटक रहे थे। उनका रङ्ग वैसा ही था जैसा कि आँखों का था। अतएव कानों पर उनका रहना प्रायः व्यर्थ था। क्योंकि कानो तक तो काली काली आँखें ही फैल रही थीं। यह देख कर, मद-राग (मद्य पीने से उत्पन्न आरुण्य) ने नील कमलों के साथ मित्रवत् व्यवहार किया। उसने आँखों को अरुण करके उनका नीलापन दूर कर दिया। इस प्रकार

उनका रङ्ग नील कमलों के रङ्ग से जुदा रङ्ग का हो गया । मनुष्य का धर्म्म है कि मित्र पर आया हुआ सङ्कट टाल दे । मद-राग ने कमलरूपी भूमिकों को व्यर्थ होता देख आँखों का रङ्ग बदल कर अपने मित्र कमलो का अस्तित्व सार्थक बना रक्खा । इस प्रकार उसने उन पर आने वाली विपत्ति की शङ्का दूर कर दी । यदि वह ऐसा न करता तो, सम्भव था, वे कर्णोत्पल निकाल फेके जाते ।

बहुत अधिक मद्य पीने से सुराङ्गनाओ के अधरो पर लगा हुआ यावक-रस छूट गया । पर इससे उनकी कुछ भी हानि न हुई । अधरो के क्षत साफ़ दिखाई देने लगे । अतएव उनकी शोभा दूनी हो गई । यही नहीं, किन्तु क्षतों के कारण रुधिर झलक आने से यावक-रस की अरुणिमा से भी अधिक घनी अरुणिमा उन पर प्रकट हो गई ।

मद्य-पान के प्रभाव से सुर-नारियो के नयन, और विद्रुम के सदृश कपोल, रागारुण हो गये । अतएव उनके मुख ख़ूब ही चमक उठे । यद्यपि उनके सर्वांग से मद-शोभा झलकने लगी, तथापि मुख पर वह इस तरह साफ़ साफ़ दिखाई दी जैसे कोई वस्तु आईने में साफ़ दिखाई देती है । अन्य अङ्गों की अपेक्षा उनके मुख बहुत ही सुन्दर हो गये ।

अनेक अप्सरायें किसी कारण से उस समय कुपित थी । कोप से मुख-चर्य्या कुछ न कुछ विकृत अवश्य ही हो जाती है । परन्तु सुन्दरता अद्भुत वस्तु है । कोप-विकृत होने पर भी, अपनी सुन्दरता के कारण, अप्सरायें अपने प्रेमपात्रों को अच्छी मालूम हुईं । उन्हे उस दशा मे भी उनके प्रेमियों ने पसन्द किया ।

सुन्दरता ठहरी स्त्री । अतएव उसने अपने वर्ग वाली अप्सराओं का हितसाधन किया । उधर पुँल्लिङ्ग मधु-मद ने अप्सराओ को वशीभूत करा कर अपने वर्ग वाले प्रेमी गन्धर्वों की मनचीती की । बात यह हुई कि स्त्री ने स्त्री की और पुरुष ने पुरुष की सहायता की । सुन्दरता ने अप्सराओं की विकृति को ढक लिया और मद ने उन्हे उनके प्रेमियों के वश मे कर दिया । पहली से अप्सराओ को लाभ पहुँचा, दूसरे से गन्धर्वों को ।

स्त्रियों को कुछ बातें न करनी चाहिए । न उन्हें अपनी नाभि खुली रखनी चाहिए, न निर्लज्जता का व्यवहार करना चाहिए, और न व्यर्थ कुपित ही होना चाहिए, परन्तु उस समय उन्होंने यह सभी कुछ करके आचार-भङ्ग कर दिया । उनकी नाभि के पास वस्त्र भी शिथिल हो गया, वे निर्लज्ज भी बन गईं, और अकारण कोप भी उन्होने किया । परन्तु मदिरा के प्रभाव से उनके ये दोष भी गुण हो गये । अतएव वे निन्दा की पात्र न हुईं । क्योंकि आचार-भङ्ग करने से एक तो मतवालों पर योंही दोष नहीं आता, दूसरे ऐसे मौक़े पर उक्त आचार-भङ्ग से ही स्त्रियों की शोभा मानी जाती है । इस कारण, यह अच्छा ही हुआ जो अप्सराओ ने उस समय सलज्जता आदि का स्वीकार न किया ।

अप्सरायें नशे मे चूर थीं ही । वे अपनी सखियों के सामने ही अपने पतियों पर गिरने पड़ने लगीं । अतएव उनकी लज्जा विफल हो गई । न वह उनके हृदयो में ठहर ही सकी और न वह वहाँ से चली ही जा सकी । क्योंकि जो वस्तु विफल है उसका रहना न रहना बराबर है । उसके लिए यह नहीं कहा जा सकता

कि वह है । परन्तु अप्सराओं के हृदय मे लज्जा के वैफल्य का कारण स्वय अप्सरायें न थीं, किन्तु मदिरा थी । इस कारण यह भी नही कहा जा सकता कि वह वहाँ से बिलकुल चली ही गई। इस विषय मे यदि कुछ कहा जा सकता है तो यही कहा जा सकता है कि न उसका ठीक ठीक रहना ही निश्चित है, और न चला जाना ही । इन उक्तियो मे विरोध के लिए जगह नहीं ।

लज्जा के आवेग मे आँखें झेप जाती हैँ और मुँह से बात बहुत कम निकलती है—न आँखे ही सामने होती हैं और न बहुत बोलने ही का साहस होता है । उस समय चाहे कोई छेड़ छाड़ ही क्यो न करे, उसे रोकने के लिए हाथ बहुत कम उठता है । मत्तता, अर्थात् मतवालेपन, का भी यही हाल है । मत्त होने से भी न हाथ अच्छी तरह फैलते हैं, न आँखें अच्छी तरह खुलती हैं, और न बहुत बातें ही मुँह से निकलती हैं । इस विषय मे लज्जा और मत्तता दोनों मे समता है । अप्सरायें प्रायः सब की सब मत्त थी । अतएव मतवालेपन के कारण उनमें वही सब लक्षण दिखाई देने लगे जो लज्जा के कारण दिखाई देते हैं । इससे सिद्ध हुआ कि मत्तता ने लज्जा के बहुत से गुण सीख लिये हैं । यदि ऐसा न होता तो अप्सराओ के शृङ्गारिक विलास कदापि वैसा रूप धारण न कर सकते ।

अनुराग अधिक होने पर सुराङ्गनाओं की उत्सुकता और भी बढ़ गई । उनमे से जो मानवती थीं—जो किसी कारण से रूठी हुई थीं—उन सब के मान छूट गये । उन्होंने अत्यन्त अनुरक्त होकर अपने अपने अङ्ग अर्पण कर दिये । वे करतीं क्या? अनुराग

के सामने मान की कुछ भी न चली, क्योंकि मान से अनुराग अधिक बली निकला। अतएव इसमे देवाङ्गनाओं का कुछ भी दोष नही। इसके सिवा एक बात और भी है। आप चञ्चला मदिरा को थोड़ा न समझिए। सच पूछिए तो इस घटना की जड़ वही है। वह न किसी के गुण की परवा करती है, न दोष की। जो उसके पंजे मे फँस जाते हैं वे चाहे जितना प्रयत्न छिपाने का करे उनके गुण-दोष वह प्रकाशित ही कर देती है। उसके वशीभूत होते ही गुप्त से भी गुप्त बाते प्रकट हो जाती हैं, अप्सराओ के अङ्गार्पण की बात तो कोई चीज़ ही नही।

मद्य-प्राशन से अप्सराओं की चेष्टाओ मे माधुर्य्य आ गया। जिनमें यह गुण पहले ही से था उनमे वह अधिक विकाश को प्राप्त हो गया। अनुराग-वृद्धि के साथ ही साथ माधुर्य्य की वृद्धि होती गई। यहाँ तक कि वह चरम सीमा को पहुँच गया। सुराङ्गनायें यद्यपि प्रौढ़ा थी, तथापि उनकी चेष्टायें और उनकी क्रीड़ाये देख कर यह भाव होने लगा मानों उन्हें हास-विलास का यह प्रसङ्ग नया ही प्राप्त हुआ हो। उनकी प्रत्येक बात मे नवीनता सी आ गई।

अप्सराओ के प्रेमियों ने बहुत चाहा कि वे और मद्यपान करे; परन्तु देवाङ्गनाओं ने उनका कहना न माना। उन्हे यह सन्देह हुआ कि और अधिक मदिरा पीकर यदि हम बेहोश हो जायँगी तो ये लोग हमे छोड़ कर कही दूसरी जगह चले जायँगे। प्रेम की लीला ही कुछ न्यारी है। जहाँ भय की कुछ भी सम्भावना नहीं वहाँ भी प्रेमियों को भय का कारण दिखाई देता है और जिससे

अनिष्ट होने का कुछ भी डर नहीं उससे भी अहित हो जाने का डर लगता है ।

एक तो चित्त को शान्ति देने वाला सुखकर एकान्त स्थान, दूसरे मन्मथ महाराज की अखण्ड सत्ता, तीसरे मद्य के प्रभाव से उत्पन्न हुआ मद, चौथे चन्द्रमा की शीतल चन्द्रिका, पाँचवे अपने प्रेमियो के पास होने का अवसर—इन सब साधनों ने सुराङ्गनाओ के प्रेमानुराग को अत्यन्त ही उत्तेजित करके उसे विलास की सीमा पर पहुँचा दिया । हास-विलास की पहुँच जहाँ तक हो सकती है वहाँ तक उन्होने तत्सम्बन्धिनी ललित लीलायें कर दिखाईं ।

अप्सरायें तो मत्त थी हीं, मदन के व्यवहार भी मतवाले ही के सदृश होने लगे । उसकी करामातो से यही ज्ञात होने लगा कि उसके भी होश-हवास ठिकाने नहीं—अपने विभ्रमों से उसने भी मतवाले होने का साक्ष्य सा दे दिया । ढिठाई इतनी बढ़ गई कि मर्य्यादा का अतिक्रमण हो गया । फूल मालाओ को कुचलने और बालों को बिखराने में बड़ी ही निर्दयता से काम लिया गया । अप्सराओं की क्रीड़ाओं और विलास-लीलाओं मे इन सब बातों को देखने से मदन महीप का मद-मत्त होना सिद्ध सा होगया ।

मद्य पान से मतवाली अप्सरायें धीरे धीरे विह्वल हो गईं । उनके अङ्ग उनके क़ाबू मे न रहे; वे उन अप्सराओं के प्रेमियों के अधीन हो गये । उनके इस प्रकार प्रिय-पराधीन हो जाने से प्रेमियों की बन आई । उन्होने उन अङ्गों के साथ मनमाना व्यवहार किया; यहाँ तक कि उनका दुरुपयोग भी किया । जिस अङ्ग के जिस स्थान पर जैसी

चेष्टा होनी चाहिए वैसी चेष्टा उन्होंने उस स्थान पर न करके अन्यत्र ही की। उन्होने स्थान की योग्यता अयोग्यता का ख़याल ही न किया। वे लक्ष्यभ्रष्ट हो गये। पर उनका लक्ष्यभ्रष्ट होना भी बुरा न मालूम हुआ। बात यह है कि किसी विशेष वस्तु की प्राप्ति के लिए अपने कार्य्य साधन मे तन्मनस्क होने वालो से, गौण बातो मे उलट-फेर हो जाना भी अच्छा ही लगता है।

अप्सराओं और उनके प्रेमी गन्धर्वों ने, परस्पर अत्यन्त अनुरक्त होकर, मनोजन्मा अनङ्ग की आज्ञाओं का पालन बहुत ही विधिपूर्वक किया। उसमे उन्होने कुछ भी कसर न होने दी। उसके आदेश की पूर्ति करते करते उन्होने प्रायः सारी रात काट दी—काट क्या दी, छोटी सी होकर रात स्वय ही शीघ्र बीत गई। उन्हे यह बात वैतालिकों के मङ्गल-गान से मालूम हुई। उनका गाना सुन कर अप्सराओं और गन्धर्वों ने जाना कि प्रात काल हो गया। अच्छा हुआ, तब तक गन्धर्व-युवक कुछ सो चुके थे। इस कारण उनकी थकावट बहुत कुछ दूर हो गई थी। वैतालिको की भैरवी सुन कर जो वे जागे तो उन्होंने देखा कि रात प्रायः बीत गई है और उनकी प्रियतमायें भावी विरह का विचार करके व्याकुल हो रही हैं। अतएव उस समय उन्होने उनके साथ जो हास-विलास किया वह उन्हे बिलकुल ही नया सा मालूम हुआ—ऐसा मालूम हुआ जैसे वह पहले ही पहल हुआ हो। मतलब यह कि भावी वियोग के विचार से उनका अनुराग बहुत बढ़ गया। इस कारण उन्हे नवीनता का अनुभव हुआ। जो बात बहुत समय के लिए छूटने वाली होती है उसमें मन अधिक लीन हो जाता

है और उस पर प्रेम बढ़ जाता है। अतएव नवीनत्व मालूम हुआ हो चाहे।

प्रात:कालीन वायु ने देखा कि बहुत अधिक परिश्रम पडने से थकी हुई अप्सरायें आँखे बन्द किये पडी हैं। अतएव वह उनकी थकावट दूर करने—उनके अङ्ग-मर्दन करके उनकी सेवा सी करने—के लिए धीरे धीरे आकर उन भवनो मे उपस्थित हो गई जिनमें अप्सराये लेटी हुई थीं। वहाँ आकर उसने मदिरा, कुसुम-मालाओ और भोग की अन्यान्य वस्तुओं के सौरभ को ख़ूब ही फैलाया। वायु चलते ही इन वस्तुओं की सुगन्धि से वे भवन ख़ूब ही सुगन्धित हो गये। उस समय महिलाओं के मुख बहुत ही दर्शनीय हो गये। मदिरा के मद का प्रभाव तब तक बहुत कुछ दूर हो गया था, उसके कुछ ही चिह्न रह गये थे। यथा—अप्सराओं के मुख से सुगन्धि आ रही थी, उनके क्षत-विक्षत अधर-पल्लव काँप रहे थे; उनकी अलसाई हुई आँखों पर अरुणता छा रही थी; उनके कपोलों पर रचे गये बेल बूटे (पत्र-रचना) और ललाट पर लगे हुए तिलक पुँछ गये थे। मदावशेष के इन चिह्नों ने उनके मुखों की शोभा मे अपूर्वता उत्पन्न कर दी।

प्रभात हो गया। रात बीत गई। रात की बातें रात ही के साथ गईं। हाँ मद्य-मद के चिह्नों की तरह उनके भी कुछ चिह्न-मात्र, अप्सराओं के शरीर पर, रह गये—निर्दयतापूर्वक पीड़ित किये गये बिम्बाधरो पर लालिमा रह गई और नख-क्षतों की जगह चिपके हुए अङ्गराग (उबटन) का कुछ अंश रह गया। दिन मे होने वाले वियोग का स्मरण करके व्यथित हुए उनके हृदयों को

इन चिह्नों से बहुत शान्ति मिली। अपनी दुःखित-हृदया सखी का साथ जैसे उसकी हितैषिणी सखी नहीं छोड़ती—विपत्ति मे भी उसके साथ रह कर बराबर उसका आश्वासन करती रहती है—वैसे ही, पूर्वोक्त चिह्नों के रूप में, निशा-सम्बन्धिनी विलास-शोभा ने भी, अप्सराओं का साथ न छोड़ा। वह सुख-समय की याद दिला दिला कर उन्हें धीरज देती रही।

———

# दसवाँ सर्ग ।

इन्द्र ने जिस काम के लिए सुराङ्गनाओं की योजना की थी उसे करने के लिए वे तैयार हो गईं। अर्जुन को लुभाने के लिए उन्होंने अपने निवास-स्थान से प्रस्थान किया। स्वभाव ही से वे अतिशय सौन्दर्य्यवती थीं; उनके हाव-भाव भी बहुत ही रम्य थे। गत रात्रि के भोग-विलास के कारण तो उनकी शरीर शोभा और भी बढ़ गई थी। उनके प्रत्येक अवयव से सुन्दरता और कान्ति टपक रही थी। आभूषणों और पत्र रचना, तिलक, अञ्जन, उबटन आदि मण्डनों से शरीर की शोभा बढ़ती है; परन्तु सुराङ्गनाओं के अवयव इतने कान्तिमान् और लावण्य-पूर्ण थे कि उनसे उलटा उनके आभूषणों और मण्डनों ही को शोभा प्राप्त हुई थी। इस प्रकार की अद्‌भुत रूप-वती सुर-नारियों ने इन्द्रकील पर्वत के उस शिखर की राह ली जिस पर अर्जुन तपस्या कर रहे थे। उन्होंने जी से तो यही चाहा कि आकाश-मार्ग से उड़ कर तुरन्त ही वहाँ पहुँच जायँ। परन्तु उड़ने की वहाँ ज़रूरत ही न थी, क्योंकि अर्जुन का तपोवन पास ही था। इस कारण वे पृथ्वी पर ही चलने और बहुत जल्दी जल्दी पैर उठाने की चेष्टा करने लगीं। परन्तु जल्द चलना उनके वश के बाहर की बात थी। उनके नितम्ब और वक्षोज इतने

विशाल थे कि उनके बोझ से वे बेचारी दबी सी जाती थी। अतएव शीघ्र चलने के लिए जी-जान से प्रयत्न करने पर भी उनके पैर जल्द न उठते थे। उनके पैरो को पृथ्वी बड़ी देर तक पकड़ सा रखती थी।

अप्सराओ के पैरो के तलुवों पर महावर लगा था। उसे लगा कर तत्काल ही घर से निकलने के कारण वह सूखने न पाया था, तब तक वह गीला ही था। इस कारण जहाँ जहाँ वे पृथ्वी पर पैर रखती थीं वहाँ वहाँ महावर के लाल लाल बूँद टपक पडते थे। इससे ऐसा मालूम होता था मानो मार्ग मे उगी हुई नीली नीली दूब और उशीर नामक घास पर लाल लाल वीर-बहूटियाँ फैली हुई हैं। अप्सरायें कमरों मे बडी बड़ी तागडियाँ पहने थी। पैरों मे उनके नूपुर थे। तागडियों के दानो की ध्वनि से मिश्रित होकर नूपुरो की झङ्कार उस पर्वत की गुफाओं के भीतर तक प्रवेश कर गई। अतएव उसकी प्रतिध्वनि से वह सारा का सारा वन मुखरित हो उठा। हसों और सारसो के कान मे उस नूपुर-झङ्कार की प्रतिध्वनि पडते ही वे अत्यन्त उत्सुक हो कर बोलने लगे। उन्हे यह भ्रम हुआ कि उन्हीं के सजाति हंस और सारस कहीं बोल रहे हैं। अतएव वे भी उत्सुकता-पूर्वक बोलने लगे।

कुछ दूर और चलने पर अप्सराओ ने देखा कि सिंह और मृग साथ हो साथ घूम रहे हैं। जगह जगह पर फल और फूल तोड़े गये हैं। तोड़ते समय जो फल और फूल नीचे गिर गये हैं वे वैसे ही पड़े हुए हैं। इसके सिवा उन्हे अनायास ही भय सा मालूम हुआ और उनका मन डावाँ-डोल होने लगा। इन चिह्नो से

अप्सराओं को मालूम हो गया कि महामुनि अर्जुन का आश्रम कहीं पास ही है। उनका यह अनुमान बहुत ठीक था। वे उस समय अर्जुन के तपोवन की सीमा के भीतर पहुँच गई थीं। वहाँ पहुँचते ही अर्जुन की तपस्या के प्रभाव से उन गन्धर्वों और अप्सराओं का तेज क्षीण हो गया—तपोभूमि ने उनके तेज को खींच सा लिया। इसमे आश्चर्य की कोई बात नहीं। परम-प्रभावशाली और महा-तेजस्वी तपस्वियों के लिए कुछ भी असाध्य नहीं। वे अपने तपोबल से क्या नहीं कर सकते? वे सब कुछ करने का सामर्थ्य रखते हैं।

थोड़ी ही दूर और जाने पर भागीरथी की शुभ्र बालू पर उन्हे अर्जुन के अमानुष चरणों के चिह्न दिखाई दिये। उन बड़े बड़े पद-चिह्नों मे रेखा-रूप ध्वज और चक्र के चिह्न देख कर अप्सरायें विस्मय से विकल हो गईं। चकित होकर कुछ देर तक वे उन चरण चिह्नों को देखती वहीं खड़ी रहीं। तदनन्तर जब वे वहाँ से चलीं तब उन्हे एक और भी अद्भुत दृश्य दिखाई दिया। उस समय तक उन्होंने जितने वन देखे थे उनमे से एक भी उतना शोभाशाली न था जितना कि वह वन था जिसके भीतर से वे जा रही थीं। उसमे अद्भुत बात यह थी कि फल और फूल तोड़ लेने पर भी उस वन के वृक्ष और लतापुञ्ज तत्काल ही नवीन फूलों और फलों से लद जाते थे। यह बात अर्जुन के तपोबल की सूचक थी। उनकी तपस्या के प्रभाव से ऋतु उनके सेवक से हो रहे थे, अथवा यह कहना चाहिए कि ऋतुओं का सब काम अर्जुन की तपस्या के प्रभाव से आपही आप हो रहा था। चाहे जिस ऋतु के फल-फूल

तोड़े जायँ, वे तत्काल ही फिर उत्पन्न हो जाते थे। वे इस बात की अपेक्षा न करते थे कि वर्तमान ऋतु हमारी उत्पत्ति के अनुकूल है या नहीं। यह दृश्य देख कर अप्सराओं ने समझ लिया कि अर्जुन का तपोबल बहुत ही बढ़ा चढा है।

अशोक वृक्ष पर अप्सराओं का प्रेम पहले ही से था। परन्तु अर्जुन के तपोवन में एक अशोक को देख कर उस जाति के वृक्षों के विषय में उनकी श्रद्धा और भी बढ गई। उस वृक्ष की डालों पर पडा हुआ गीला वल्कल सूख रहा था। उसके बोझ से उस वृक्ष की वे डाले झुक रही थी और उनके कोमल कोमल पत्ते दब रहे थे। उसे देख कर सुराङ्गनाओं ने कहा—सज्जन की सेवा करने वाला यह अशोक धन्य है। यह न समझिएगा कि सेवकों की प्रशसा ही क्या? सच तो यह है कि सद्गुणी महात्माओ के सेवक भी वन्दनीय होते हैं। सद्गुणियो और सज्जनों की सेवा भी सौभाग्य से ही प्राप्त होती है।

इतने मे सामने ही अर्जुन अप्सराओ को आसनासीन देख पड़े। योग-शास्त्र मे कहे गये यमों और नियमों के पालन से यद्यपि उनका शरीर दुबला हो गया था तथापि उनके सारे अग-प्रत्यंग स्थिर थे। वे ज़रा भी हिलते डुलते न थे। उनके शरीर से शान्ति-रस टपक सा रहा था, तथापि उनमें तेजस्विता की मात्रा भी कम न थी। शस्त्र उनके साथ थे। इस कारण वे और भी तेजस्वी दिखाई देते थे। उनके दीप्तिमान् और शान्त शरीर को देख कर ऐसा मालूम होता था जैसे महामुनि वसिष्ठ के द्वारा रचा गया पद-पंक्ति वाला अथर्ववेद, अर्जुन का रूप धारण करके, आसन पर विराज

रहा हो । क्योंकि इस वेद के मन्त्रों मे शान्ति भी है और उग्रता भी है ।

आकाश के किसी एक ही अंश मे उदित होकर शीत रश्मि चन्द्रमा जिस प्रकार अपनी नयनाभिराम किरणो से सारे आकाश को व्याप्त कर लेता है उसी तरह इन्द्रकील पर्वत के एक ही शिखर पर आसन लगाये हुए अर्जुन भी अपने तेज की ऊर्ध्वगामिनी किरणो की राशि से उस पर्वत के सारे शिखर-समूह को व्याप्त कर रहे थे । अर्जुन का आश्रम भगवती भागीरथी के ठीक तट पर था । तट ऊँचा था । सिर पर पीत वर्ण की बडी बडी जटाओ का समूह धारण किये हुए अर्जुन उस ऊँचे तट पर, तपस्या के फल की प्राप्ति के लिए, इस तरह बैठे हुए थे जिस तरह अग्नि अपनी शिखाओ के समूह को धारण किये हुए हव्य-प्राप्ति के लिए वेदी पर बैठता है । अर्जुन का वह पीला पीला और लम्बा जटा-कलाप अग्नि के शिखा समूहो के सदृश ही जाज्वल्यमान था । उनकी आकृति जैसी विशाल थी, प्रयत्न भी उनका उसी के अनुसार विशाल था । जैसा उनका प्रयत्न था, वैसी ही क्रिया भी थी—क्रिया तो ऐसी थी जैसी उनके सिवा ससार मे और किसी से हो ही नहीं सकती । जैसी क्रिया थी, तपस्या भी उनकी सर्वथा उस क्रिया के अनुरूप ही थी । रही तपस्या की समृद्धि सो वह भी बहुत ऐश्वर्य-शालिनी थी; जैसी तपस्या थी वैसी ही उसकी समृद्धि भी थी । उनके सभी काम उनके आकार और उनके गुणों के अनुरूप थे । उनका आकार जैसा था, प्रयत्न भी वैसा ही था । प्रयत्न जैसा था क्रिया भी वैसी ही थी । क्रिया जैसी थी तपस्या

भी वैसी ही थी। और तपस्या जैसी थी समृद्धि भी उसकी वैसी ही थी। अतएव यह स्पष्ट सूचित हो रहा था कि उन्हे अपनी अभिलाष-पूर्ति मे अवश्य ही सफलता प्राप्ति होगी।

चिरकाल से यम-नियम-पूर्वक रहने के कारण शरीर से कृश हो जाने पर भी उनका बल कम न हुआ था। क्षीण-देह हो जाने पर भी वे शैल-समान दृढ-देह और शक्ति शाली थे। शान्त होने पर भी—योग के शम नामक अङ्ग के साधन मे रत होने पर भी—स्वभाव से वे अत्यन्त दुर्धर्ष थे। निर्जन वन मे रहने पर भी वे अपने सचिवो और कुटुम्बियो से परिवेष्टित से थे, ऐश्वर्य्यहीन मुनि के वेश मे होने पर भी सुरेन्द्र के समान कान्तिमान् थे। साराश यह कि तेजस्विता और बल पैारुष मे उनकी बराबरी करने वाला त्रिलोक मे कोई न था। यह बात उनके शरीर को देखते ही मालूम हो जाती थी। उनकी शक्ति-शालिनी और तेज.पुञ्ज मूर्ति मानों यह कह रही थी कि वह त्रिभुवन की रक्षा सहज ही कर सकती है। ऐसे बली, ऐसे तेजस्वी, और ऐसे शक्ति-सम्पन्न अर्जुन को देखते ही सुर-नारियों ने मन ही मन कहा—यह पुरुष-रत्न इतनी कठिन तपस्या करके न मालूम कौन सा फल प्राप्त करना चाहता है। हम तो इसके इस तप को व्यर्थ ही समझती हैं। यह तो बिना कुछ भी तप किये अपने शरीर-सामर्थ्य से ही यथेच्छ विजय-प्राप्ति कर सकता है। ऐसे बली और ऐसे तेजस्वी के लिए त्रिभुवन मे कौन सी वस्तु अप्राप्य हो सकती है? जो त्रैलोक्य के अधीश्वर होने का सामर्थ्य रखता है उसका किसी तुच्छ फल की प्राप्ति के लिए तपस्या करना सर्वथा विफल है।

अब तक उन अप्सराओं ने अल्प-बलिष्ठ दैत्यों और साधारण तपस्वी मुनियों को ही लुभा कर उन्हे अपने वश मे किया था। उन्हे अपने वशीभूत करने मे उनको कुछ भी देरी न लगी थी। अर्जुन को देख कर उन्हे अपनी वे कृतपूर्व बाते याद आ गईं। अतएव उन्होने मन ही मन इन्द्र की आज्ञा को अपने लिए बहुत ही सम्मानवर्द्धक समझा। उन्होने कहा—सुरेन्द्र ने बहुत अच्छा किया जो इस महा तपस्वी और परम-तेजस्वी नर-श्रेष्ठ को लुभाने के लिए हमे भेजा। यदि हम इसे अपने वश मे कर सकी तो हमारा यह काम पहले कामो की अपेक्षा बहुत अधिक महत्व-सूचक समझा जायगा। अतएव अपने स्वामी इन्द्र की दृष्टि मे हमारा मान विशेष बढ़ जायगा।

इस प्रकार का विचार करके उन अप्सराओं ने अर्जुन को लुभाने का प्रयत्न आरम्भ करना चाहा। उनके मन मे यह विचार आते ही मनोभव का अंकुर उनके हृदय-क्षेत्र मे बलात् उग आया। अर्जुन का सुन्दर रूप देखते ही वे स्वय ही मोहित हो गईं। मनोहर यौवन किसका मन नही हरता? कहाँ तो अप्सराये तपोरत अर्जुन कि वञ्चना करने गई थीं, कहाँ उन्हे स्वय ही वञ्चित होना पड़ा! अर्जुन को मोहना तो दूर रहा, वे स्वय ही अर्जुन को देख कर मोहित हो गईं। यह उलटी गति देखिए!

निदान अप्सराओं ने गन्धर्वों को आज्ञा दी कि कार्य का आरम्भ किया जाय। इस आज्ञा का उन्होने तत्काल ही पालन किया। उधर उनकी वीणाओं और मृदंगो का मनोरम स्वर आकाश में गूँज उठा; इधर, वन मे, एक ही साथ, छहों ऋतुओं का

प्रादुर्भाव हो गया। जिस ऋतु का बाजा बजने लगा उसी ऋतु ने प्रकट होकर वन मे अपना प्रभाव दिखाया। पहले वर्षा-ऋतु की करामाते सुनिए। बाजा बजते ही आकाश मे सजल जलद घिर आये। बिजली रह रह कर खूब चमकने लगी। दिग्-दिगन्त मे काले काले मेघो की गरज सुनाई देने लगी। वर्षा का यह साज-समान देख कर और मेघों की गर्जना सुन कर मानिनी नायिकाओ का मान छूट गया और प्रणय-सम्बन्धी कलह न मालूम कहाँ चला गया। अर्जुन के तपोवन मे तो एक दम ही अपूर्व परिवर्तन हो गया। उनके आश्रम के आसपास मालती की लताओं मे कलियों के गुच्छे ही गुच्छे दिखाई देने लगे। मेघ बडे बड़े बूँदों से विरल वर्षा करने लगे। फल यह हुआ कि उस आश्रम मे जितनी धूल थी सब जगह की जगह बैठ गई। जहाँ क्षण भर पहले उष्णता थी वहाँ शीतलता विराजने लगी।

अर्जुन नामक वृक्ष के विकसित कुसुमों की सुगन्धि से सुगन्धित वायु चारों तरफ़ चलने लगी। उसके चलते ही जितने जीव-जन्तु थे सब अनुराग-रस के सागर मे डूब गये। उनका धैर्य्य छूट गया और वे अत्यन्त आकुल-चित्त हो गये। उन सब मे एक अभूत-पूर्व नवीनता का आविर्भाव होगया। वे सब नये से हो गये—सब के हृदय नवीन विकार से व्याप्त हो गये। पके हुए जामुन खा खा कर प्रसन्न हुई कोकिल-कामिनी नये नये मनोहरी राग अलापने लगी। उसकी मधुर और मनोहर तान सुन कर व्यथित-हृदयों के भी हृदय मुदित हो गये। वे भी अनुरक्त हो कर शृङ्गारिक चेष्टायें करने लगे। कदम्ब के कुसुमों को छूकर आई हुई वायु

और मदमत्त मयूरों के मधुर निनाद ने यद्यपि सब के मन हर लिये तथापि अर्जुन पूर्ववत् अपने आसन पर स्थिर रहे। उनका चित्त जरा भी चलायमान न हुआ। वे औरों की तरह कोई साधारण पुरुष थोड़े ही थे, जो इस उद्दीपक सामग्री के प्रभाव से चलचित्त हो जाते। वे असाधारण पुरुष थे। वे महात्मा थे, और महात्माओं की समाधि भङ्ग करना सहज काम नहीं।

वर्षा के आविर्भाव के साथ ही शरद् का भी आविर्भाव हो गया। वह नवविवाहिता वधू के सदृश उस तपोवन मे आकर उपस्थित हो गई। कुमुद की कलिकाओं को उसने अपनी शुभ्र साड़ी बनाया, और मृणाल-तन्तुओ के कङ्कन धारण किये। बाण नामक वृक्ष के फूलो को उसने बाणवत् अपने हाथ मे लिया। ऐसी सुभग-वेशधारिणी क्षत्रिय-कुलोत्पन्ना ( क्योकि बाण हाथ मे लेने की चाल क्षत्रियों ही मे है ) वधू के समान आई हुई शरद्-ऋतु को वर्षा-काल ने अपने कमलरूपी अमल कर से पकड लिया—वर के समान उसने वधूवत् शरदृतु का सप्रेम पाणि-ग्रहण किया।

हंसो के कर्ण-मधुर नाद से मिश्रित हो कर मदमत्त मयूरो की केका और भी मनोहारिणी हो गई। उसी तरह तटवर्ती कदम्ब-कुसुमों के गिरने से सरोवर के कुसुमों की कमनीयता पहले से बहुत विशेष होगई। क्योकि अधिक गुणवाले पदार्थों के परस्पर समागम से उनके गुण और भी उत्कर्ष को प्राप्त हो जाते हैं।

मधु के लोभी मधुप केतकी के फूलों पर बैठ कर मधु-पान करने लगे। केतकी मे स्वय ही पराग-रेणु अधिक होती है; कदम्बों

ने उस रेणु की वृद्धि कर दी । पास ही फूले हुए कदम्ब-कुसुमों की रेणु उड़ उड कर उन पर जो गिरी तो केतकी के फूल पराग से बिलकुल ही पट गये । अतएव भौरो को घबरा कर वहाँ से भागना पड़ा । वे जो वहाँ से उडे तो नीले डण्ठुल वाले प्रियक नामक वृक्षो के फूलो पर जा बैठे और उनका मधुर मधु पीने लगे । इन फूलों के वृन्त ( डण्ठुल ) तो पहले ही से नीले थे, पर अन्य अश नीला न था । भौरो के बैठने पर वह अश भी नीला हो गया । अतएव वे सब के सब काले काले दिखाई देने लगे ।

ओस के बडे बडे बूँदों से व्याप्त हरी हरी भूमि पर बहुत बडी बडी वीर-बहूटियाँ दिखाई दी । वे देखने मे बहुत ही मनोहारिणी थी । उनकी शोभा के सामने दोपहरिया के खिले हुए फूलो की शोभा क्षीण हो गई । वे पलाश के फूले हुए लाल लाल फूलो की सदृशता करने लगी । उन्हे एक ही जगह बैठे देख ऐसा मालूम होने लगा जैसे पलाश के बहुत से फूल इकट्ठे रक्खे हो । पलाश यद्यपि वसन्त ही मे खिलता है तथापि उस समय सभी ऋतुओ के एक ही साथ प्रकट होने के कारण वह भी खिल उठा था । इसी से वीर बहूटियो को देख कर उसके फूलो की याद आ गई ।

शरद्-ऋतु के साथ ही हेमन्त का भी प्रादुर्भाव हो गया । तुषार के विरल कणो वाले हेमन्त के प्रभाव से वन की जो शोभा होती है वह तो हुई ही, पर कुछ बाते ऐसी भी हुई जो इस ऋतु मे नही होती । हुआ क्या कि कुन्द के फूल खिल उठे । प्रियङ्गु-लताओं पर भी कलियों के गुच्छे प्रकट हो गये । कुन्द-

कुसुमों के स्पर्श से सुगन्धित हुई वायु चलने लगी। हेमन्त के इस अकालिक आविर्भाव के कारण लवली-लतायें भी फूल उठी। लोध के फूलों के ऊपर से आने के कारण उनकी सुगन्धि से सना हुआ समीरण सब को हर्षित करने लगा। परन्तु ऋतु-सम्बन्धिनी इतनी उद्दीपक सामग्री के होने पर भी पाण्डु पुत्र अर्जुन का मन पूर्ववत् ही निश्चल बना रहा। उसमे विकार का एक भी लक्षण न दिखाई दिया। यह कोई आश्चर्य की बात नही। विजय-प्राप्ति की इच्छा रखने वाले महात्माओ का चित्त नीति मार्ग से कदापि विचलित नहीं होता।

हेमन्त के साथ ही वसन्त के प्रारम्भ की सूचक और हेमन्त के अवसान की निदर्शक शिशिर ऋतु का भी आगमन हो गया। इस ऋतु मे अपने गुणों के सिवा हेमन्त और वसन्त के भी कुछ कुछ गुण रहते हैं। इस कारण इस पर भगवान् रति-नायक की विशेष प्रीति है। यह ऋतु उसकी सहायता भी बहुत करती है। इसके प्रकट होते ही जहाँ तहाँ आम के पेड़ों पर मौर आ गये। निर्गुण्डी के फूल भी जहाँ तहाँ थोड़े थोड़े फूलने लगे। तुहिन-पात बहुत कम हो गया।

शिशिर के समकाल ही वसन्त की शोभा भी, इन्द्रकील पर्वत के उस शिखर पर, आ पहुँची। आम की कोमल कोमल कोंपल की छड़ी हाथ मे लिये और गुञ्जायमान भौरों का नूपुर-नाद सुनाती हुई उसने उस पर्वत के फूल-बागो मे प्रवेश करने के इरादे से पहले पहल कमल काननों मे पैर रक्खा। वहाँ से वासन्ती शोभा धीरे धीरे सर्वत्र फैल गई। उसके प्रभाव से उस वन की दशा ही कुछ

जितेन्द्रियता तत्पर होती है उन्हे शत्रुओं से कुछ भी डर नहीं रहता । शत्रु उनका कुछ नही कर सकते । वे उन्हे कदापि नहीं जीत सकते । वसन्त का पाला ऐसे ही जितेन्द्रिय तपस्वी से पडा । वसन्त को आप ऐसा वैसा न समझिए । वह त्रैलोक्य-विजयी है। कोई लोक—कोई प्राणी—ऐसा नही जिस पर उसे विजय-प्राप्ति न हुई हो । परन्तु इतने बडे विकट विजेता वसन्त को अर्जुन से हार ही खानी पडी । वह उन्हे न जीत सका । यह दशा देख कर ग्रीष्म-काल वहाँ आ पहुँचा । वह मल्लिका के विशद कुसुम विकसित करके उनके विकास के बहाने वसन्तऋतु का परिहाससा करने लगा । उसने मानो कहा—अपने सहचर अन्य ऋतुओ के सदृश आपने भी इस मुनि से अच्छा सत्कार पाया! खूब रही! ससार मे सब लोग अब आपकी ख़ूब ही प्रशसा करेगे! भाई, वाह, आपने तो मैदान मार ही लिया ।

सेना चाहे कितनी ही बलवती क्यो न हो, यदि उसमे परस्पर विरोध उत्पन्न हो गया तो वह अपने प्रतिपक्षी को कदापि नही जीत सकती । अप्सराओ के लिए छहो ऋतुओ का समूह भी सेना ही के सदृश था। वर्षा और वसन्त आदि ऋतु पृथक् पृथक् बहुत कुछ विजय-प्राप्ति कर सकते है । परन्तु उनमे परस्पर विरोध होने के कारण, सबके एक साथ मिल कर चढ़ाई करने पर भी, उनका किया कुछ न हुआ । उन्होने बहुत प्रयत्न किया और भर-सक बहुत जोर लगाया; परन्तु अर्जुन का मन, अधिक तो क्या एक क्षण के लिए भी, विचलित न हुआ । परस्पर विरोध-भाव होने से संसार मे कभी सफलता नही होती । वर्षा काल में वसन्त का

क्या काम ? अथवा वसन्त के आविर्भाव मे शिशिर की क्या आवश्यकता ? इस विरोध का ख़याल ऋतुओं ने न रक्खा । वे सब एक ही साथ उतर पड़ीं और अपने अपने परस्पर विरोधी प्रभाव डालने लगीं । फल यह हुआ कि उनकी सारी टॉय टॉय फिस हो गई ।

कहॉ तो अप्सराओ ने यह सारा प्रबन्ध अर्जुन को उत्कण्ठित करने के लिए किया था, कहॉ वे स्वयं ही उत्कण्ठित हो गईं । गन्धर्वों के श्रुति-सुखद वीणा-वादन और षड् ऋतुओ की पत्र, पुष्प और फल-रूपिणी सम्पदाओं का किया कुछ भी न हुआ । ये सब बाते अर्जुन के हृदय मे विकार का अंकुर तक न उत्पन्न कर सकी। उलटा अप्सराओ के हृदयो मे उन्होंने प्रबल विकार अवश्य जागृत कर दिया । वे, सब की सब, मन्मथ महीप के बाणो का निशाना हो गईं । अर्जुन के प्रत्येक अवयव को वे टकटकी लगा कर देखने लगी । उनके विलोल लोचन अर्जुन के अंगों मे गड़ से गये । उन्हे प्रेम-पूर्वक देखने से जितना सुखानुभव अप्सराओं को हुआ उतना न खिले हुए कमलो के कुसुम-कलाप को देख कर ही हुआ और न सप्तपर्ण नामक वृक्षों और मल्लिका नामक लताओं के कुसुम-गुच्छों ही को देख कर हुआ । कहॉ तो वे अपने अंग-प्रत्यंगो की कमनीयता और अपने शरीर की सुन्दरता से अर्जुन को अनुरक्त करने की इच्छा से वहॉ गई थी, कहॉ महामुनि अर्जुन को देख कर वे स्वयं ही उन पर अनुरक्त हो गईं । इस विपरीत भाव को तो देखिए ! कभी कभी संसार मे कुछ का कुछ हो जाता है । जिस उद्देश से जो काम किया जाता है वह तो सफल होता नहीं,

उलटा उसका विपरीत प्रभाव स्वयं अपने ही ऊपर पडता है । अतएव कहना चाहिए कि उद्देशो की गति बहुत ही दुरधिगम्य है, उसे जानना अत्यन्त कठिन है । क्योकि, कभी कभी उस गति का परिणाम उलटा होता है और उसे मनुष्य को स्वय ही भोगना पडता है।

अर्जुन पर देवागनाओं की विलास-पूर्ण दृष्टि पडते ही वह वही चुभ सी रही । प्रयत्न करने पर भी वे उसे वहॉ से न खीच सकी। अर्जुन को लुभाने के लिए उन्होने नृत्य आरम्भ किया था । परन्तु नेत्रो द्वारा रस, भाव आदि के व्यञ्जक व्यापार ही उनसे न हो सके । आँखों से रस-सञ्चारी विलास करना तो दूर रहा, वे अपने पाणि-पल्लवो की उँगलियॉ उठा कर भाव बताना तक भूल गई ।

अर्जुन को अपना हृदयहारी अभिनय दिखाने की इच्छा रखने वाली देवागनाओं ने अपने पैरों पर लाक्षारस लगा कर उनकी सुन्दरता बढा दी थी। इससे पैरों का रंग लाल हो गया था । अतएव जहॉ जहॉ पर वे अपने लाल लाल पैर रखती थी वहॉ वहॉ भौंरो को यह धोखा हो जाता था कि ये नये खिले हुए लाल कमल हैं । अतएव वे दौड दौड कर उन पर जा बैठते थे । भ्रमरो के इस आक्रमण के कारण उन्हे अर्जुन को जी भर कर देखने मे भी बाधा उपस्थित होती थी। यह विघ्न मानों उन्हे इस बात की सूचना देता था कि तुम्हारा कार्य सिद्ध होने वाला नही ।

अर्जुन के उस आश्रम मे पूजा के लिए तोड़े गये कदम्ब के फूल जहॉ तहॉ बिखरे पडे थे । उन्ही पर पैर रखती हुई अप्सरायें नाच रही थी । मन उनका अर्जुन मे लगा हुआ था । इस कारण उनके पैर जल्दी जल्दी न उठते थे । उनके पैरों मे लगा हुआ लाल

लाल लाचारस टपक टपक कर उन कदम्ब-कुसुमों पर गिरता जाता था। अतएव ऐसा मालूम होता था जैसे लाक्षारस के बूँदो के बहाने अप्सरायें अपने मनोऽनुराग को प्रत्यक्ष प्रकट करके दिखा रही हैं।

उनमे से एक अप्सरा बहुत ही उत्कण्ठित हो गई। उसने अपने अनुराग को और भी साफ़ साफ़ प्रकट कर दिखाया। वह अपनी सखी के पीछे खड़ी हो गई और बड़े ही हाव-भावपूर्वक अपने अङ्गो को छिपाने की लीला करने लगी। अङ्ग-गोपन-सम्बन्धिनी इस लीला ने उसके आन्तरिक अनुराग को खोल कर स्पष्ट दिखा सा दिया। क्योकि ऐसी ही चेष्टाओ से अनुराग-वृद्धि का प्रमाण मिलता है।

एक और अप्सरा का हाल सुनिए। वायु के वेग से उसका जघन-वस्त्र अपने स्थान से हट गया। अतएव उस लज्जावती के उरु-द्वय का कुछ अंश खुल गया। उसे इस प्रकार निर्वस्त्र देख कर औरों की तो बात ही नही, उसकी सपत्नी तक को बड़ा विस्मय हुआ। वह उसकी तरफ़ आँख उठा कर चकित हुई सी खडी देखती रही।

एक और अप्सरा, मृणाल-तन्तुओ के कङ्कनो से शोभित अपने हाथो पर चन्दन-चर्चित पाण्डु-कपोलो वाले अपने मुख को रख कर, निर्निमेष दृष्टि से अर्जुन को देखने लगी। उस समय अत्यन्त अनुरक्त होने के कारण, मधु-मद-रहित होने पर भी उसके अलसाये हुए लोचन बहुत ही शोभमान हुए। अपने उन अलस लोचनों से वह बड़ी देर तक अर्जुन को देखती रही।

इस प्रकार अपने हाव-भाव का प्रदर्शन निष्फल जान उन

अप्सराओं ने अर्जुन के पास अपनी एक सखी को भेजा। उसने जाकर नीचे लिखे अनुसार अप्सराओं का सन्देश सुनाया—

"मन्मथ से सन्तप्त हुई मेरी सखी ने मुझे आपके पास इस लिए भेजा है कि मैं आपको उसके स्थान पर लेजाकर उसे प्रसन्न करूँ। परन्तु उसके होस-हवास तो ठिकाने ही नहीं। वह तो बिलकुल ही हृदयहीन हो रही है। इस कारण उसे ख़बर ही नहीं कि उसका हृदय तो पहले ही आपके पास पहुँच गया है। इस दशा में आपको उसके पास लेजाने से क्या लाभ होगा? क्योंकि जो हृदयहीन है उसके पास उसके प्रेमी का जाना और न जाना दोनों ही बराबर हैं।

"मेरी सखी ने आप से निवेदन करने के लिए न मालूम कितनी बातें सोच रक्खी थीं, परन्तु सन्देश कहने का समय उपस्थित होने पर सन्ताप से उसका मुँह इतना सूख गया कि उन चिरकाल से याद कर रक्खी गई बातों में से एक भी बात उसके मुख से न निकली। हे निर्दय! आपके कारण मेरी सखी की बहुत ही बुरी दशा है। आप उसे असह्य दुःख दे रहे हैं। आपकी याद में उसके नयन-युग्म ही आर्द्र नहीं, उसका मन भी आर्द्र हो रहा है। आपने उसकी दोनों आँखों से ही आँसू नहीं बहाये, आपने तो उसके हृदय को भी पानी पानी कर दिया है। यह दुर्गति अकेली मेरी सखी ही की नहीं, औरों का भी यही हाल है। भला कोई इतनी भी निर्दयता करता है?

"मेरी सखी सन्ताप से इतनी तप्त हो रही है कि कोमल और सुगन्धिपूर्ण कुसुम-शय्या पर भी उसे जब चैन नहीं पड़ती तब वह

कोमल कोमल पल्लव बिछी हुई पृथ्वी पर लेट जाती है। परन्तु जब उससे भी उसका सन्ताप कम नहीं होता—जब सपल्लवा पृथ्वी पर लेटने से भी उसकी वियोग-ज्वाला कम नहीं होती—तब वह आप के सुखद और शीतल अङ्क की प्राप्ति की कामना करती है। क्या ऐसी दुःखिनी पर भी आपको दया नहीं आती ? हे पुण्य-पुरुष ! ऐसी व्यथित-हृदया बाला पर तो अवश्य ही आपको कृपा करनी चाहिए। मैं सच कहती हूँ, उसके शरीर की बहुत ही बुरी दशा है। वह अत्यन्त ही दुबली हो रही है। उसका अभिलाष आप कृपापूर्वक अवश्य ही पूर्ण करें। आपके वियोग में यदि वह प्राणों से हाथ धो बैठेगी तो फिर वैसी अनुरागिणी प्रेयसी आपको कहीं न मिलेगी। तपस्या तो आप कुछ काल के अनन्तर फिर भी कर सकेंगे, वह तो आपको सदा ही प्राप्य है। पर वैसा नारी-रत्न आप को सदा प्राप्य नहीं। यदि आप उसका तिरस्कार ही करते जायँगे तो, याद रखिए, आप पर उसकी हत्या का पाप आरूढ हुए बिना न रहेगा। इस बात को सभी जानते हैं कि अनुरूप स्त्री की प्राप्ति संसार में दुर्लभ है। अतएव निर्दयता छोड़िए। अपने हृदय की कठिनता को कम कर दीजिए। कुछ तो उत्तर दीजिए। मुनि-जन तो बहुत ही दयालु होते हैं। उनका हृदय करुणा-पूर्ण होता है। अपने इन गुणों का परिचय दीजिए। अभागी मनुष्य ही प्राप्त हुई अच्छी वस्तु का तिरस्कार करते हैं। आप की चेष्टायें और आप का रूप तो यही सूचित कर रहा है कि आप बड़े ही सौभाग्यशाली हैं। अतएव अनुरक्त रमणी का तिरस्कार करना आपको शोभा नहीं देता। बहुत हो चुका। बस अब और अधिक निर्दयता न कीजिए।"

इस तरह उस स्त्री ने यद्यपि बहुत कुछ कहा सुना—अर्जुन को लुभाने के लिए यद्यपि उसने अनेक युक्तियाँ लड़ाई—तथापि उसका सारा प्रयत्न निष्फल गया। तब एक और अप्सरा ने अर्जुन को लुभाने का यत्न आरम्भ किया। उसने अपने सुन्दर शरीर के मध्यभाग को लचा कर अपने खुले हुए बालों को एक हाथ से पकड़ लिया। इस प्रकार विलास-पूर्वक खड़ी होकर वह अर्जुन पर अपने बड़े ही तीखे कटाक्षों की वर्षा करने लगी। वे कटाक्ष क्या थे, मनोज के महा-विजयी शर-समूह ही से थे। इधर वह इस प्रकार कटाक्ष बाणों की वर्षा करने लगी उधर एक और अप्सरा ने एक और ही लीला रची। वह थी यद्यपि बहुत दुबली-पतली, तथापि उसके कुछ अवयव बहुत ही पीन और पृथु थे। उनके बोझ से वह दबी सी जा रही थी। पास ही आम की एक शाखा फूली हुई मञ्जरी से झुक रही थी। उसे उसने उचक कर पकड़ लिया और उसे पकडे हुए वह अर्जुन के सामने ही अपना अङ्ग तोड़ने-मरोड़ने लगी। उस समय वह प्रत्यञ्चा चढ़े हुए मनोज के धनुष के समान मालूम हुई।

एक और अप्सरा का नीला वस्त्र नीवी के पास ही शिथिल हो गया। उसे उसने झट हाथ से थाम लिया और वहाँ से चला जाना चाहा। इतने ही में उसकी करधनी का डोरा टूट गया। अतएव वह उसे सँभालने लगी और वही खडी रह गई। यद्यपि वह अपनी चेष्टाओं से यह सूचित कर रही थी कि इन घटनाओं के कारण मैं संकुचित-चित्त और भयभीत हो गई हूँ, तथापि यथार्थ बात ऐसी न थी। वह जान बूझ कर ही वहाँ उस प्रकार भाव-

भङ्गी दिखलाती हुई खडी रहना चाहती थी। केवल दिखाने के लिए वह यह सूचित कर रही थी कि मुझे इस करधनी ने ही टूट कर बलात् यहाँ रोक रक्खा है।

इतने मे एक और अप्सरा ने अर्जुन को इस प्रकार फटकार बताई। वह बोली—यदि आप सच्चे शान्त हैं—यदि आपके मन मे शान्ति का सच्चा वास है—तो यह चाप आपने अपने पास क्यों रक्खा है? इससे तो यही सिद्ध होता है कि आपको विषय-वासना ही अधिक प्यारी है, मुक्ति प्यारी नही। विषयी लोग ही अपने पास धनुष बाण रखते हैं। इन बातो से आपका शान्त भाव तो नही प्रकट होता, उलटा शठत्व ही प्रकट होता है। आप शायद यह कहेगे कि यदि मैं विषयी होता तो तुम्हारा अङ्गीकार क्यों न करता। परन्तु इसका कारण है। वह यह है कि आपके हृदय पर किसी और ही ने अधिकार कर रक्खा है। इसीसे वह हम लोगो मे से किसी को वहाँ रहने के लिए जगह नही देती। आपकी तपस्या—आपकी शान्ति—इसमे कारणीभूत नही। कारणीभूत वही आपकी हृदयेश्वरी है। इस प्रकार अपने अधरोष्ठ स्फुरण करती और तिरछी दृष्टि मे अर्जुन को देखती हुई उस अप्सरा ने उनकी ख़ूब ही खबर ली। बोलते बोलते वह मत्सर से विचलित हो उठी। तब अभिमान, लज्जा और गुरुजनों के मान की कुछ भी परवा न करके उसने अर्जुन के हृदय पर, अपने कानों पर रक्खा हुआ, कमल खींच कर बड़े ज़ोर से मारा।

इसके अनन्तर एक अप्सरा बड़े ही विनीत भाव और बड़ी ही लीला-ललाम गति से अर्जुन के पास पहुँची। पहुँच कर वह मन्द मन्द

मुसकाने लगी। उसकी उस विशद मुसकान के कारण उसके कपोलों की शोभा दूनी हो गई। आँखें उसकी बहुत बड़ी बड़ी थीं। वे कानों तक पहुँच गई थी। उन दीर्घ लोचनो के एक ही कटाक्ष से वह अर्जुन के सारे शरीर को पी सा गई। अद्‌भुत-भाव प्रदर्शन द्वारा उसने अपनी आँख के एक ही कटाक्ष से अर्जुन के सर्वाङ्ग को छेद सा दिया।

इसी तरह सब ने अपनी अपनी करामातें दिखाईं। जिससे जो यत्न करते बना उसने वही किया। उपाय भर उन्होंने अर्जुन को लुभाने के लिए कोर-कसर न रक्खी। उन्होंने लज्जा छोड दी। करुण वचन कह कर उन्होंने अपना अनुराग स्पष्टता-पूर्वक प्रकट किया। यहाँ तक कि अर्जुन के सामने उन्होने घण्टो आँसू तक बहाये। इस के सिवा वे बेचारी कर ही क्या सकती थीं। कुपित हुए प्रेमी को मनाने और उसे प्रसन्न करने के लिए इन बातों के सिवा उनके पास और था ही क्या। अपने प्रेमपात्र को अनुकूल करने के लिए जितने साधन उनके पास थे वे सभी उन्होंने खर्च कर डाले। पर फल कुछ भी न हुआ। उन्होंने अपने असम्पूर्ण नयनों से यथेष्ट कटाक्ष पात किये। अर्जुन के सामने अलसयुक्त मन्द गमन भी किया। निर्लज्जता भी दिखाई। इस पर भी जब उन्होंने देखा कि सफलता के कोई लक्षण नहीं, तब पहले तो उनके मुख पीले पड़ गये। फिर उन पर विषाद के चिह्न स्पष्ट दिखाई देने लगे। इस प्रकार उनके शरीर पर अनेक प्रकार के विकारों का आविर्भाव हुआ। पर इन विकारो—इन चेष्टाओं—के कारण उनके शरीर और उनकी वेश-भूषा की शोभा क्षीण न हुई। उलटा प्रत्येक चेष्टा से एक अपूर्व ही शोभा का प्रादुर्भाव सा हुआ दिखाई

दिया। मदन-महीप की महिमा ही कुछ न्यारी है। विकारों का आविर्भाव कर के वह स्त्रियों की सुन्दरता कम नहीं होने देता। उसके प्रभाव से विकृत चेष्टायें भी सौन्दर्य्यवर्द्धक हो जाती हैं।

अप्सरायें स्वभाव ही से मन्द मन्द चलने वाली थी। उनकी मनोहर चाल देख कर कलहंसों की कामिनियाँ भी लज्जित होती थीं। अपनी मनोहारिणी चाल उन्होने बड़ी देर तक अर्जुन को दिखाई। चलते समय उरुओं और जघनो के बोझ से उन्हें बहुत परिश्रम होता था। अतएव परिश्रम के कारण उनकी आँखें अच्छी तरह न खुलती थी। उन्ही अधखुली आँखो से अर्जुन पर उन्होंने घण्टों कटाक्ष-वर्षा की। तिरछी चितवन से उन्होंने उन्हे लुभाने का भर मक प्रयत्न किया। अत्यन्त अनुरक्त होने के कारण उनकी बुद्धि ठिकाने न थी। इस कारण उस समय जो बात वे मुँह से कहती थीं वह साफ़ साफ़ न निकलती थी। कभी तो वे गाढ़ अनुराग-सूचक अस्फुट-शब्दोच्चारण करती थी, कभी बड़ी बड़ी आँखे फैला कर अर्जुन की तरफ़ प्रेम-पूर्वक देखती थी; कभी अपनी भौंहो को ऊपर खीच कर उनकी सुन्दरता अर्जुन को दिखाती थीं। इस प्रकार अर्जुन को लुभाने के लिए सैकड़ों रुचिकर चेष्टायें करके वे हार गईं, पर अर्जुन की समाधि भङ्ग न हुई। वे अपने आसन पर निर्विकार-भाव से पूर्ववत् बैठे रहे। बात यह है कि रौद्र और शृङ्गार-रस का परस्पर विरोध है। अर्जुन के हृदय मे उस समय रौद्र-रस का प्रवाह बह रहा था। वे अपने शत्रुओं के ऊपर क्रोध से जल से रहे थे। इस दशा में बेचारे विषयाभिलाष को उनके हृदय में किस तरह स्थान मिलता? उसका वहाँ प्रवेश होना ही असम्भव था।

इधर तो अखण्ड तपस्या द्वारा इन्द्र की आराधना करके अपने शत्रुओं का संहार करने के लिए अर्जुन पूर्ववत् समाधिस्थ रहे। उधर विफल-मनोरथ सुराङ्गनायें, गन्धर्वों को साथ लिये हुए, अपने अपने घर लौट गईं। उस समय उन बेचारियों के मन की बुरी दशा थी। मन तो उनका दुःख और उद्वेग से मलिन हो रहा था और कान्ति इस कारण क्षीण हो रही थी कि अर्जुन ने उनकी कामना विफल कर दी थी। मन और शरीर की ऐसी दशा होने पर, उन अप्सराओं पर जो बीती होगी उसे बताने की आवश्यकता नहीं। उसका हाल अनुमान ही से अच्छी तरह जाना जा सकता है।

---

# ग्यारहवाँ सर्ग।

अप्सराओं ने लौट कर इन्द्र से कहा—महाराज, वह मुनि बहुत ही घोर तपश्चर्य्या कर रहा है। वह स्वभाव ही से जितेन्द्रिय है। अपने शत्रुओं पर विजय पाने के लिए वह इस समय कुपित भी हो रहा है। अतएव, कोप के कारण, उसकी जितेन्द्रियता और भी बढ़ गई है। ऐसे जितेन्द्रिय पुरुष पर हम लोग अपना कुछ भी प्रभाव न डाल सकीं। हम प्रयत्न करके थक गईं पर उसका मन न डिगा और हमें विवश होकर वहाँ से निष्फल लौट आना पड़ा।

अप्सराओं के मुख से ये बातें सुन कर इन्द्र को मन ही मन बहुत सन्तोष हुआ। उसने अप्सराओं को तो बिदा कर दिया और आप स्वयं ही अर्जुन के आश्रम में जाकर उपस्थित हुआ। अर्जुन, मुनि का रूप धारण किये, तपस्या कर रहे थे। यह सोच कर इन्द्र ने भी मुनि का ही रूप धारण किया। वह शीघ्र ही अर्जुन के आश्रम में पहुँच गया। अर्जुन ने देखा कि एक बहुत बूढ़ा तपस्वी चला आ रहा है। दूर से आने के कारण वह थका हुआ है। उसके सिर से सफ़ेद बालों की जटायें लटक रही हैं। जटा-पटलों से उसका सारा सिर आच्छादित है। अतएव वह ऐसा मालूम हो रहा है जैसे चन्द्रमा की किरणों से संयुक्त

और सन्ध्या की अरुणिमा से शोभित दिन का अवसान-समय, अर्थात् सायङ्काल, मालूम होता है। बुढापे के कारण उसके नेत्रो के कोनों के पास सिकुड़न पड़ गई है। उस सिकुड़न पर भौंहों के शुभ्र केश छाये हुए हैं। अतएव उसके नेत्र ऐसे मालूम हो रहे हैं जैसे बर्फ पड़ने के कारण मलिन दलों वाले कमलो से ढका हुआ सरोवर मालूम होता है। उसका सर्वाङ्ग अत्यन्त क्षीण है। अपने ही बोझ से उसका शरीर झुका हुआ है। बड़े पेट वाला मनुष्य जिस प्रकार अपनी सुशीला पत्नी का हाथ पकड़ कर किसी तरह खड़ा होता है उसी तरह वह भी छड़ी के सहारे—अपने शरीर का सारा भार उसी पर डाल कर—अपने आपको सँभाले हुए है।

इन्द्र ने यद्यपि मुनि का वेश धारण किया था—यद्यपि उसने अपने असली रूप को छिपा डाला था—तथापि पतले पतले मेघ-पटल से छाये हुए सूर्य की तरह वह अलौकिक तेज से देदीप्यमान था। वार्द्धक्य के कारण यद्यपि उसका शरीर अत्यन्त जीर्ण था तथापि उसकी आकृति अत्यन्त ही भव्य—अत्यन्त ही अलोक-सामान्य—थी।

वृद्ध मुनि के वेश मे इन्द्र के पहुँचते ही अर्जुन के आश्रम की शोभा संकुचित सी हो गई। वह सारा तपोवन भयभीत और चकित सा दिखाई देने लगा। इन्द्र को देखते ही अर्जुन का हृदय उच्छ्वसित हो उठा। उनके हृदय मे स्नेह का सञ्चार हो आया। यद्यपि उन्हे यह न मालुम था कि आगत व्यक्ति कौन है, तथापि उनका मन, आप ही आप, स्नेह से सिञ्चित हो गया। बात यह

है कि अपने कुटुम्बी—अपने बन्धु—को देखने पर मन बलात् उसकी तरफ़ आकृष्ट हो जाता है और अनुपम आनन्द का अनुभव होने लगता है।

अर्जुन ने मुनि वेश धारी समागत इन्द्र की यथाविधि पूजा की। इन्द्र ने भी अर्जुन की पूजा का सादर स्वीकार किया। तदनन्तर आसन पर बैठ कर कुछ देर तक उसने विश्राम किया। स्वस्थ होने पर इन्द्र ने अर्जुन से इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

"तेरी उम्र तो अभी कुछ भी नहीं। तिस पर भी तू ने, इस नई उम्र मे ही, इतनी कठिन तपश्चर्य्या का आरम्भ किया है। अतएव तेरे इस सत्कार्य्य की मैं कहाँ तक प्रशसा करूँ। मेरे सदृश अत्यन्त वृद्ध मनुष्य भी विषय-जाल मे फँसे रहते हैं। तपस्साधन करने मे वे भी समर्थ नही होते। तू तो अभी युवा है। अतएव तू धन्य है। सबसे अधिक आनन्द की बात तो यह है कि तेरी आकृति जैसी रमणीय है, वैसा ही रमणीय और कल्याण-कारक कार्य्य भी तू कर रहा है। रमणीय आकृति संसार मे दुर्लभ नहीं; वह सुलभ है। बहुत लोगों के शरीर सुन्दर होते हैं। परन्तु गुणों की प्राप्ति सुलभ नहीं। वह अत्यन्त ही दुर्लभ है। रम्यरूप होकर गुणवान् भी होने का सौभाग्य किसी विरले ही को प्राप्त होता है। तुझ मे तो रम्यता और गुण दोनों ही विद्यमान हैं। अतएव इन दोनों का संयोग सोने मे सुगन्ध हो रहा है।

"यौवन बहुत ही चञ्चल है। शरत्काल के मेघों को उत्पन्न होकर नष्ट होते जैसे देर नही लगती वैसे ही यौवन को भी क्षय-प्राप्ति होते देर नहीं लगती। जितने विषय हैं, एक भी सदा सुख-

दायक नहीं। वे सभी आपात-रम्य हैं। पहले तो वे सुख-कारक मालूम होते हैं, पर अन्त मे उनसे दुःख ही दुःख मिलता है। जब से प्राणी जन्म लेता है तब से ही उसे नाना प्रकार के क्लेश उठाने पड़ते हैं। फिर, ऐसा एक भी प्राणी नहीं जिसे मृत्यु के मुँह मे न जाना पड़े। जन्म लेने पर मृत्यु अनिवार्य है। इस कारण, यह संसार सर्वथा त्याज्य है। ऐसे दु'ख, शोक और सन्ताप-कारक भवसागर से पार होने की इच्छा से, विरले ही सौभाग्य-शाली जन मोक्ष-साधन के लिए उद्योग कर सकते हैं। औरों से यह बात नही हो सकती।

"तेरा हृदय बहुत ही उदार मालूम होता है। तेरे चित्त की वृत्ति सर्वथा प्रशसनीय है। यदि तेरी मनोवृत्ति निर्मल न होती तो इस कल्याणकारी तप की साधना मे तेरा मन ही न लगता। यह सब तो ठीक है, किन्तु तेरे इस विरुद्ध-वेश को देख कर मुझे सन्देह हो रहा है। साधन तो तेरे तपस्वियों के जैसे हैं, पर वेश तेरा वीरों का है। तपस्वी लोग अपने शरीर पर केवल अजिन और वल्कल ही धारण करते हैं। इसके विपरीत तू ने अपने शरीर पर कवच धारण कर रक्खा है। यह क्यो? यह तो तपस्वियों के योग्य नहीं। कवच तो युद्ध की इच्छा रखने वाले ही धारण करते हैं। एक बात और भी है। तू तो मोक्ष-प्राप्ति का इच्छुक है। अतएव इस भौतिक शरीर पर तेरी ममता न होनी चाहिए। इस दशा मे यदि यह कहें कि हिंस्र प्राणियों से अपने शरीर की रक्षा के लिए ही तू ने शस्त्र धारण किये हैं तो यह सम्भावना ठीक न होगी। क्योंकि तपस्वी तो शरीर को तुच्छ समझते हैं। उसकी

रक्षा की उन्हें क्या फ़िक्र ? अतएव तेरे ये बड़े बडे दो तूणीर, तेरा यह विशाल धनुष, मृत्यु के द्वितीय भुज के सदृश तेरा यह भयङ्कर खड्ग है किस लिए ? इनसे तो तेरी शान्ति का साद्य नहीं मिलता। शान्त पुरुष अपने पास कभी शस्त्र नहीं रखते। मेरा मन तो यही कहता है कि तू निश्चय ही शत्रुओ पर विजय पाने का अभिलाषी है। अन्यथा कहाँ ये कोप-सूचक आयुध और कहाँ क्षमाशील तपस्वियो की शान्ति ! तेरे वीर वेश को देख कर यही कहना पडता है कि तेरी यह तपस्या शत्रु के विजयार्थ है, मोक्षार्थ नहीं।

"यदि यह सच है तो मुझे कुछ कहना है। कहना यही है कि तपस्या कोई ऐसी वैसी चीज़ नहीं। उससे सर्व-श्रेष्ठ कल्याण-साधन हो सकता है और मुक्ति की प्राप्ति भी हो सकती है। ऐसी श्रेयस्करी क्रिया को हिंसा-जनक कार्य-साधन के लिए प्रयुक्त करना बहुत बुरी बात है। जिस क्रिया से मुक्ति-प्राप्ति हो सकती है उसकी सहायता से शत्रुओं का संहार करके उनकी हिंसा का पाप कमाना बुद्धिमानी नहीं। जो मूढ मनुष्य ऐसी क्रिया का प्रयोग ऐसे अनुचित फल की प्राप्ति के लिए करता है वह मनोग्लानि और प्यास-दोष के नाशक निर्म्मल जल को पङ्क-पूर्ण सा करता है। महा फलो के साधक तप का विनियोग तुच्छ फलों की प्राप्ति के लिए करना स्वच्छ सलिल को कीचड बनाना नहीं तो क्या है ? अर्थ और काम की प्राप्ति के लिए हिंसा करना कोई अच्छा पुरुषार्थ नहीं। ये अर्थ और काम, हिंसा आदि दोषों की जड़ हैं। अतएव इन दोनो के पोषण की कामना तू छोड़ दे। ये दोनो ही बड़े घातक हैं। इनका आश्रय लेने से मनुष्य को तत्व-ज्ञान की

प्राप्ति से हताश होना पड़ता है। तात्त्विक बोधोदय के मार्ग मे ये दुरन्त प्रतिबन्धक हैं।

"याद रख, सम्पदायें बहुत ही चञ्चल हैं। अतएव जो प्राणी प्राणि-हिंसा के द्वारा इन महा चञ्चल सम्पदाओ का अर्जन करना चाहता है उसे आपदाओ की राशियाँ उसी तरह प्राप्त होती हैं जिस तरह कि सागर को नदियों के समूह प्राप्त होते हैं। ऐसा प्राणी आपत्ति-ग्रस्त होने से कभी बच ही नही सकता। सम्पदाओं को लोग सुखकारिणी समझते हैं, परन्तु यह उनकी सरासर भूल है। सम्पदायें भी विपदाओ ही की तरह दु.ख दायिनी हैं। किस तरह, सो मैं बताता हूँ। अच्छे साधनों का आश्रय लिये बिना जैसे सम्पदायें नही प्राप्त होती वैसे ही अच्छे साधनो के आश्रय बिना विपदायें भी नही जाती। दोनों ही के लिए साधन और साहाय्य की आवश्यकता है। प्राप्त होने पर सम्पदाओं की रक्षा के लिए बहुत कुछ क्लेश उठाना पडता है। विपदायें तो स्वयं ही क्लेश-कारिणी हैं। अनेक अनर्थों का मूल होने के कारण सम्पदाओं से सदा भय लगा रहता है। विपदाओं का तो कहना ही क्या। वे तो स्वरूप ही से भयोत्पादक हैं। अतएव, जिन सम्पदाओं की प्राप्ति के लिए लोग इतना यत्न करते हैं उनमे मुझे तो दुःख ही दुःख दिखाई देता है। मैं तो यही समझता हूँ कि जैसे सम्पदायें दुःख-दायिनी हैं वैसे ही विपदायें भी हैं।

"विषय-भोग बहुत ही दुःख-जनक है। यह दुष्प्राप्य भी है। यह विश्वास-जनित सन्तोष का पूरा पूरा शत्रु है। भोगियों के लिए विश्वास-सुख का वह अत्यन्त प्रतिबन्धक है। भोगी मनुष्य को

शम, सन्तोष और विश्रम्भ कभी नहीं प्राप्त होते। विषय-भोग को तू साँप का भोग (फन) समझ। साँप का फन पकड़ना जैसे कठिन काम है वैसे ही भोग प्राप्त करना भी कठिन काम है। साँप का फन पकड़ने वालो को जैसे विपत्ति-ग्रस्त होने का डर लगा रहता है वैसे ही विषयोपभोग के इच्छुकों को भी विपत्तिग्रस्त होने का डर लगा रहता है। अतएव, भोगियों को पद पद पर आपदायें भोग करनी पडती हैं। अनर्थकारी भोगों का उपभोग करने से मनुष्य विपत्ति ग्रस्त हुए बिना नहीं रहता।

"सम्पत्ति अत्यन्त ही अविवेकिनी है। वह अधम और उत्तम का विचार ही नहीं करती। जिस तरह वह अधम को छोड़ जाती है उसी तरह उत्तम को भी छोड जाती है। उसके हृदय मे प्रीति और प्यार का लेश भी नही। अनुराग तो उसे छू तक नहीं गया। संसार मे एक भी प्राणी ऐसा नही जिस पर उसकी सच्ची प्रीति हो। उसके इस अविवेक, नैष्ठुर्य्य और अनुरागहीनत्व को देख कर भी मूढ मनुष्य उससे अनुराग रखते हैं। वे उसे अपने वश मे रखने की चेष्टा करते हैं। इसका एक मात्र कारण मनुष्य की मूढता और उसके स्वभाव की वामशीलता है। स्वभाव सचमुच ही नहीं छूटता। दुःशील जनो को यदि सम्पदायें छोड जायँ तो निन्दा की बात नहीं। बुरों का साथ छोड देना प्रशंसनीय ही है। परन्तु सम्पदाये तो इतनी क्षुद्र और इतनी चञ्चल हैं कि वे साधुशीलों और सज्जनों को भी छोड़ जाती हैं। यही उनके लिए सबसे बड़ी निन्दा की बात है। असाधु को छोड़ें तो कुछ हर्ज नहीं; पर ये तो साधुओं के पास भी बहुत दिनों तक नही टिकतीं।

"इस पर शायद तू यह कहे कि मैं चञ्चल सम्पदाओ की प्राप्ति के लिए तपस्या नही करता। मैं तो वीर धर्म्म का पालन करता हुआ अपने वैरियों से उनके किये हुए अपकारो का बदला लेने की इच्छा से तपस्साधन कर रहा हूँ। यदि ऐसा हो, तो भी तेरी यह कामना न्याय्य नही। इससे दूसरो को अवश्य ही पीडा पहुँचेगी। और, जितने पर पीडा-जनक काम हैं वे सभी निषिद्ध हैं। उनका अनुष्ठान करने वाले कभी प्रशंसनीय नही हो सकते। देख—

"अप्रिय पदार्थों की प्राप्ति की कोई इच्छा नही रखता। इसी तरह प्रिय पदार्थों का वियोग भी कोई नही चाहता। अप्रिय वस्तुओ के संयोग की तरह प्रिय वस्तुओ का वियोग भी बहुत ही दु सह है। उससे मन अवश्य ही सन्तप्त होता है। यह बात वर्त्तमानकाल ही मे घटित नही होती। यह तो तीनो कालो में एक सी घटित होती है। इष्ट वस्तु के नाश से भूत, भविष्यत् और वर्तमान, इन तीनो ही कालो मे दु ख हुए बिना नही रहता। वैरियो से बदला लेने—उन्हे मार कर उनके बन्धु-बान्धवों को उनसे वियुक्त करने—से कभी तेरा कल्याण न होगा।

"इष्ट वस्तुओं का सयोग—अपने इष्टमित्रों और बन्धु-बान्धवों का समागम—ही सब सुखो का आकर है। अपने प्रेमी जनों के समागम से रिक्तता परिपूर्णता के सदृश ज्ञात होती है, निर्धनता समृद्धि सी मालूम होती है, विपत्ति उत्सव के सदृश जान पड़ती है; हानि लाभवत् प्रतीत होती है। किं बहुना, प्रिय जनों का समागम सभी अवस्थाओ और सभी दशाओं को सुखकारक कर देता है।

ऐसे प्रिय-समागम का विच्छेद करके पर-पीडन करना बहुत बड़ा पाप है। इष्ट जनो का वियोग होने से भली बात भी बुरी हो जाती है, अत्यन्त प्यारे प्राण भी कलेजे मे छिदे हुए बाण की नोक के सदृश दु:खदायक हो जाते हैं, बन्धु-बान्धवो से युक्त होने पर भी मनुष्य एकाकी सा हो जाता है। प्रिय जनो के साथ रहने से परमानन्द और उनसे वियुक्त होने से अत्यन्त परिताप भोग करना पड़ता है। मनुष्य को जानना चाहिए कि इष्ट-वियोग-सम्बन्धिनी जो पीड़ा अपने लिए इतनी दु:खकारक है वह औरों के लिए भी उतनी ही दु:खकारक होगी। क्योकि सब मनुष्यो को सुख-दु:ख का एक सा अनुभव होता है। अतएव तुझे ऐसी पीड़ा दूसरो को कदापि न पहुँचानी चाहिए। पर पीडा-जनक उपायो का प्रयोग शत्रुओं के लिए भी करना उचित नहीं।

"जितने जन्मधारी हैं सबकी स्थिति लक्ष्मी के समान ही अत्यन्त चञ्चल है। शरीर का कुछ भी ठिकाना नही। आज है तो कल नहीं। शरीर की इस नश्वरता पर विचार करके तू न्याय्य पथ से कदापि विचलित न हो। साधु-जन कभी अन्याय नहीं करते। उनके सभी काम न्यायावलम्बी होते हैं।

"हे तपोधन! रणोत्साह को छोड़ दे। कल्याण-कारिणी तपस्या का इस तरह नाश न कर। शान्त-भाव धारण कर। तपश्चर्य्या के द्वारा पुनर्जन्म के नाश का प्रयत्न कर। विजिगीषा-विमुख होना ही तेरे लिए श्रेयस्कर है। यदि विजय की तू अत्यन्त ही इच्छा रखता हो तो तेरे शरीर के भीतर ही बैठी हुई जो ये चक्षु आदि इन्द्रियाँ तेरा अनिष्ट-साधन करने की सदा ताक मे रहती हैं उन्हीं को अपना शत्रु

समझ और उन्हीं को जीतने की चेष्टा कर। ये शत्रु ऐसे वैसे नहीं, ये बड़े ही दुर्जय हैं। कोई विरला ही भाग्यशाली और तपोधन इन्हें जीत सकता है। यदि तू ने इनको जीत लिया तो मानो सारा संसार जीत लिया।

"जो नीच-वृत्ति, निर्लज्ज और अजितेन्द्रिय पुरुष स्वार्थ।साधन के लिए अपनी स्वतन्त्रता खो देता है, उसे बैल की तरह सभी के अधीन होना पड़ता है—सभी की सेवा करनी पड़ती है। परतन्त्र बैल निर्लज्जता-पूर्वक दूसरो की सदा सेवा करता है; परन्तु, फिर भी, उसे सुख नही मिलता, केवल दु:ख ही दु ख मिलता है। इसी तरह जो अजितेन्द्रिय पुरुष निर्लज्ज बन कर स्वार्थ-साधन के वशीभूत हो जाता है उसे भी दु.ख ही दु ख मिलता है। अतएव, वैर का बदला लेने के लिए स्वार्थ-साधन के अधीन होना—उसकी परतन्त्रता स्वीकार करना—तेरे लिए उचित नही। सम्पत्तियाँ बहुत ही तुच्छ वस्तु हैं। आज का सुख—आज का ऐश्वर्य—कल न रहेगा। कल तो उसका स्मरण मात्र रह जायगा। ये जितने विषय-भोग, जितने धन-वैभव और जितने कमनीय काम हैं सब स्वप्न तुल्य हैं। अतएव उनके अधीन होना—उनकी परतन्त्रता मे रहना—बुद्धिमानी का काम नहीं। जितने विषय हैं वे लोगों के विश्वास के पात्र होने पर भी विश्वास-घातक हैं। लोग यद्यपि उनका विश्वास करते हैं तथापि वे विश्वास-घात किये बिना नहीं रहते। इसी तरह यद्यपि वे लोगों को प्रीति-जनक मालूम होते हैं तथापि अन्त में हैं वे सभी दु खजनक। उनमे एक दोष और भी है। वह यह कि यद्यपि वे लोगों का परित्याग कर देते हैं तथापि लोग उनका परित्याग

नहीं करते। वे तो यत्न-पूर्वक उन्हे प्राप्त करने की चेष्टा ही किया करते हैं। अतएव ये विषय-समूह मनुष्य के बहुत बड़े शत्रु हैं। जहाँ तक हो सके विवेकशील पुरुष को उनसे सदा ही बचना चाहिए। देख, इस पर्वत के ऊपर यह कैसा सुन्दर और कैसा एकान्त स्थान है। समीप-वाहिनी भागीरथी की धारा ने इसे और भी मनोहर तथा पवित्र बना दिया है। अतएव, हे तपस्वी! स्वर्गङ्गा की पयोराशि से पवित्र इस विजन प्रदेश मे तू मुक्ति को अपने सम्मुख उपस्थित हुई समझ। वह शीघ्र ही तुझे प्राप्त होगी। बस एक बात तू कर। निरस्त्र हो जा। इन आयुधो को फेक दे। तपस्विया के पास इनका क्या काम?"

इस प्रकार का उदार उपदेश देकर वृद्ध-ब्राह्मण-वेशधारी इन्द्र जब चुप हो गया तब कपिध्वज अर्जुन ने इन्द्र की बात का उत्तर देना आरम्भ किया। वे इस प्रकार विनय-सम्पन्न और मधुर वचन बोले—

"आप धन्य हैं। आपकी वक्तृता की मैं कहाँ तक प्रशसा करूँ! आपने अवसर के अनुसार ही साधनो की सूचना दी। ऐसे वचन वही कह सकता है जिसमे आप ही के सदृश गुण और आप ही के सदृश योग्यता हो। जो वक्ता इतना उदार और इतना सदाशय-सम्पन्न नही वह आपके सदृश प्रिय वाक्य बोलने मे कभी समर्थ नही हो सकता। आपके मुख से निकली हुई वचनावली मे अनेक गुण हैं। वह प्रसादपूर्ण है, उसके प्रत्येक पद का आशय सहज ही समझ मे आजाता है। वह अर्थसम्पन्न भी है; ओजोगुण पूर्ण भी है; अर्थ-गौरव-समन्वित भी है। न उसमे समासो

की बहुलता है और न वह विस्तार-दोष ही से दूषित है। उसके सभी पद आकाङ्क्षा-युक्त हैं—जहाँ जैसे शब्दो की आकांक्षा थी वहाँ वैसे ही शब्द आपने प्रयुक्त किये हैं। आपके वाक्यो का अर्थ समझने के लिए बाहर से एक भी शब्द का अध्याहार करने की आवश्यकता नही। आपके वचन-विन्यास मे सङ्कीर्णता का दोष भी नही। वह सम्पूर्ण भाव से अपने अभीष्ट अर्थ का प्रतिपादक है। आपने अपनी वाक्यावली मे अखंडित युक्तियो के द्वारा अर्थ की पुष्टि की है। अतएव, स्थूल दृष्टि से देखने पर, वह शास्त्र की सीमा के बाहर, अतएव स्वतन्त्र, सी मालूम होती है।

"परन्तु वास्तव मे ऐसा नही। आपकी वचनावली सर्वथा शास्त्र-सम्मत है। शास्त्र-बहिर्गत एक भी बात आपने नही कही। अनुमान आदि के द्वारा यदि कोई प्रतिवादी उसका खंडन करना चाहे तो वह कदापि नहीं कर सकता। उसे तो आपके मुख से निकली हुई वाणी वेद तुल्य ही अखण्डनीय मालूम होगी। जिस तरह क्षुब्ध हुए समुद्र का कोई लङ्घन नही कर सकता उसी तरह कोई क्षुब्ध सागर के सदृश आपके गम्भीर वचन-विन्यास का भी लङ्घन नही कर सकता। वह नितान्त अलङ्घ्य है। औदार्य्य, गाम्भीर्य्य और अर्थ-गौरव से भरे हुए आपके शान्त वचनो की मैं कहाँ तक प्रशसा करूँ। ऋषियो का शान्त चित्त जैसे अर्थ-सम्पत्ति के औदार्य्य से परिपूर्ण रहता है—अणिमा आदि समृद्धियाँ जैसे सदा उसके अधीन रहती हैं—वैसे ही आपका शान्त सदुपदेश भी अर्थ-सम्पत्ति के औदार्य्य से भरा हुआ है।

"हे तात! तथापि मुझे आप से कुछ निवेदन करना है। मेरी

प्रार्थना यही है कि मैं जो यह प्रयत्न कर रहा हूँ इसके पौर्वापर्य्य का हाल आपको मालूम नहीं। क्यों मैंने इस तपश्चरण का आरम्भ किया है, इसका कारण आप नहीं जानते। इसी से आप ने मुझे मुनिजनोचित मोक्ष-धर्म्म का उपदेश देने की कृपा की है। यदि आपको मेरे तप:-साधन का कारण ज्ञात होता तो, मुझे विश्वास है, आप ऐसा उपदेश न देते। किसी कार्य्य की पूर्वापर सङ्गति ज्ञात न होने से, उपदेष्टा चाहे बृहस्पति ही क्यो न हो, उसकी बात, नीति-विरोधी मनुष्य की चेष्टा के सदृश, विफल हुए बिना नहीं रहती। कार्य्य-कारण का यथार्थ ज्ञान न होने से वाग्मिता अवश्य ही व्यर्थ जाती है। इस सम्मति के लिए आप मुझे क्षमा करे। मैं यह मानता हूँ कि आपका उपदेश बहुत ही श्रेयस्कर है, तथापि मैं उसका पात्र नहीं। नक्षत्रो और तारकाओ से चमकते हुए आकाश का पात्र जैसे दिन नहीं, वैसे ही मैं भी अनेक गुण पूर्ण आपके उपदेश का पात्र नहीं। तारकोदित नभोमण्डल से दिन का क्या सम्बन्ध! अतएव, आप का उपदेश मेरे विषय मे युक्ति-सङ्गत नहीं माना जा सकता।

"तात! मैं क्षत्रिय-कुलोत्पन्न हूँ। नाम मेरा धनञ्जय है। कुन्ती के गर्भ से सम्भूत मैं पाण्डु का पुत्र हूँ। अपने ही ज्ञाति-वर्ग से निर्वासित किये गये अपने जेठे भाई, युधिष्ठिर, की आज्ञा से मैं यहाँ आया हूँ। महात्मा कृष्ण-द्वैपायन के आदेशानुसार मैंने यह तपस्या आरम्भ की है। इन्द्र ही हम लोगो का आराध्य दैवत है। अतएव, मैं उसी की यत्नपूर्वक आराधना कर रहा हूँ। कपट द्यूत मे मेरे बड़े भाई, राजा युधिष्ठिर, राज्य, भाई, स्त्री और स्वय अपने को भी हार गये। जुवे मे कपट करके हमारे शत्रुओ ने हमारा सर्वस्व हर

लिया। भवितव्यता बड़ी प्रबल होती है। बुद्धिमान् भी भवितव्यता के भँवर मे पड कर सारासार-विचार-बुद्धि खो बैठते हैं। उनकी भी बुद्धि ठिकाने नही रहती। वह भी भवितव्यता ही का अनुसरण करके तदनुकूल ही काम करती है। अतएव, एक प्रकार से, इसमे मेरे अग्रज युधिष्ठिर का कोई दोष नही। मैं तो यहाँ, इस पर्वत पर, तपश्चर्य्या करने चला आया हूँ। मेरे बड़े भाई युधिष्ठिर और भीम, तथा छोटे भाई नकुल और सहदेव, वहाँ, द्वैतवन मे, द्रौपदी को साथ लिये हुए बडे कष्ट से अपने दिन काट रहे हैं। मेरे वियोग से वे सब लोग अत्यन्त व्यथित हो रहे है। छोटी भी रातें उन्हे बहुत बड़ी मालूम होती हैं। रात भर उन्हे नींद नहीं आती। सन्ताप से तपे हुए वे लोग बड़ी कठिनता से रात बिताने मे समर्थ होते हैं। शत्रुओ ने हम पर बड़े ही घृणित अत्याचार किये हैं। भरी सभा में उन्होने हमारे वस्त्र हमारे शरीरो से खीच लिये और ऐसे मर्मभेदी वचन कहे कि हमारे हृदय के टुकडे टुकडे से हो गये। अपना इतना अपमान हुआ देख राज सभा मे हमारा सिर लज्जा से झुक गया। उन लोगों ने हमारे साथ जो असद्-व्यवहार किया सो तो किया ही, उन्होने सती द्रौपदी पर भी अत्याचार किया। वे उसके केश पकड़ कर भीष्म, द्रोण आदि गुरुजनो के पास खींच ले गये। उनके द्वारा उस अबला की ऐसी दुर्गति हुई देख मृत्यु ने माने उनको उसी तरह अपने यहाँ खीच ले जाने के लिए बयाना सा दे दिया। उसने मानो कहा कि जिस तरह तुम इस अबला को यहाँ भरी सभा मे खीच लाये हा उसी तरह मैं भी तुम्हे अपने लोक मे खीच ले जाऊँगी। दुःशासन के द्वारा खींची

गई पतिव्रता पाञ्चाली उसके पीछे लड़खड़ाती हुई सभा में उपस्थित हुई। सूर्य के सामने वाले किसी बड़े पेड़ की छाया जैसे, सायङ्काल के कुछ पहले, उस पेड़ के पीछे छाई हुई दिखाई देती है वैसे ही सभा मे बैठे हुए गुरु-जन-समुदाय के सामने, दु शासन की अनुगामिनी द्रौपदी दिखाई दी। उस समय वहाँ जो लोग बैठे थे उन्होने आँख उठा कर सिर्फ़ एक ही दफे उसकी तरफ़ देखा। उसे उस दशा मे वे अधिक देर तक देख ही न सके। सब लोग लज्जा से अधोवदन होकर साक्षी-गोपाल से बने बैठे रहे।

"इस अपमान के कारण उसे बहुत ही उत्कट मनोवेदना हुई। क्रोध से उसका हृदय विदीर्ण हो गया। यह देख कर उसके आँसुओ ने मानो उससे यह कहा कि ये तेरे पति नाम-मात्र के ही पति हैं। इनका पति होना सार्थक नहीं। पति का कर्त्तव्य है कि वह अपनी पत्नी की रक्षा करे। परन्तु ये तो चुपचाप बैठे हैं, उँगली तक नही उठाते। अतएव ऐसे पतियो की तरफ़ आँख उठा कर देखना ही व्यर्थ है। यही सोच कर मानो उसकी आँखो मे आँसू भर आये और उसे अपने पतियो को देखने से वञ्चित कर दिया।

"इस अपमान और इस अत्याचार को मेरे बड़े भाई युधिष्ठिर ने चुपचाप सह लिया। इसका एक मात्र कारण उनकी सहन-शीलता और उनके सद्गुण हैं। यदि वे सुनीति और सद्गुणो के इतने पक्षपाती न होते तो हम लोगो की यह चरम दुर्दशा वे अपनी आँखों से न देखते। उन्होने सोचा कि शत्रुओं का दमन करना तो सुलभ है, वह तो कालान्तर मे भी हो सकता है। किन्तु सज्जन-

समाज मे प्रतिष्ठा-प्राप्ति करना बहुत दुर्लभ है। शत्रुओं को दंड तो कभी भी दिया जा सकता है। परन्तु एक बार फैल जाने से लोकापवाद का मार्जन फिर नही हो सकता। इसी से उन्होने उस समय चुप रहना ही उचित समझा। महासागर का सलिल जैसे अपनी मर्यादा का उल्लङ्घन करते डरता है उसी तरह मानी पुरुषो का मन भी मर्यादा तोडते डरता है। सागर का सलिल और मनस्वियो का मन, ये दोनों ही क्षुब्ध होने पर भी स्वच्छ ही रहते हैं। तूफान आने पर भी समुद्र का जल जैसे कलुषित नहीं होता वैसे ही सज्जनो का मन भी अपमान और अत्याचार के प्रबल विकारों स मैला नही होता। हम लोगो के इस सारे दु ख और क्लेश का एक मात्र कारण धृतराष्ट्र के पुत्रो को अपना सुहृद् बनाना है। उनसे प्रेम करने पर भी उन्होने हमारे साथ शत्रुता का व्यवहार किया। इस शत्रुता की उत्पत्ति का कारण उन पर हम लोगों का स्नेह प्रकट करना ही है। आसन्न-पतन नदी-तट की छाया का आश्रय लेना जैसे कदापि कल्याणकारी नही वैसे ही दुर्जनों के साथ मित्रता करना भी कदापि कल्याणकारी नही। उनसे प्रीति रखना—उनसे मैत्री करना—ही शत्रुता का बीज बोना है। जो लोग लोक-निन्दा से नही डरते और जो गुण-दोष तथा भले-बुरे का भेद नहीं समझते उन दुराचारी धूर्तों का हृद्गत भाव, दैवगति की तरह, जाना ही नही जा सकता। यही कारण है जो हम लोग ऐसो के साथ मैत्री करके इस तरह छले गये। हे तात! यदि एक बात न होती तो शत्रुओं के द्वारा किये गये अत्याचार और अपमान के कारण मेरा हृदय फट कर कब का विदीर्ण हो गया होता। वह बात यह है कि मेरे क्रोध

ने मेरे हृदय को करावलम्ब सा देकर उसे अब तक बचा रक्खा है। शत्रुओं से उनके कृतकर्म्म का बदला लेने के लिए यदि मेरे हृदय मे क्रोध की उत्पत्ति न होती तो मैं अब तक जीता ही न रहता। मैं उन लोगों से उनके दुष्कर्म्म का बदला लिये बिना न रहूँगा, इसी आशा से मैं अपना शरीर धारण कर रहा हूँ।

"शत्रुओ ने हम लोगो को किसी काम का नही रक्खा। उन्होने ना हमे वनेचर बना डाला है। राज-पाट छीन कर उन्होंने हमें हरिणों की तरह अपनी जीविका चरितार्थ करने के लिए विवश कर दिया है। इस दशा मे हम पाँचो भाई भी परस्पर एक दूसरे को देख कर लज्जित होते हैं—हम आपस मे एक दूसरे के सामने अपना मुँह नही कर सकते। जब भाइयो भाइयो का यह हाल है तब औरों को मुँह दिखाने से हमे कितनी लज्जा मालूम होगी, इसका तो कहना ही क्या है। हमारी दशा तो इस समय एक तिनके के सदृश हो रही है। शक्ति न होने के कारण तिनका सदा झुका रहता है। उत्साह आदि शक्तियो के न होने से हमारा भी सिर नीचा हो रहा है, अतएव लोगों की दृष्टि मे हम भी बहुत तुच्छ मालूम होते हैं। दुर्बलता के कारण तिनके का कोई गौरव नही करता। हमारी भी दशा ठीक ठीक ऐसी ही है। निस्सार होने के कारण हमारा भी गौरव नष्ट हो गया है। निर्बलता के कारण हम इस समय अवनत, सामर्थ्य-हीन और तुच्छ दशा को प्राप्त हो गये हैं। अतएव, हमारी वही गति है जो एक तिनके की होती है। मान-हीन मनुष्य और तिनके मे कुछ भी भेद नही। मेरी तो यही सम्मति है। आप इस पर्वत को देखिए। इसके ऊँचे ऊँचे जितने

समाज मे प्रतिष्ठा-प्राप्ति करना बहुत दुर्लभ है। शत्रुओ को दंड तो कभी भी दिया जा सकता है। परन्तु एक बार फैल जाने से लोकापवाद का मार्जन फिर नही हो सकता। इसी से उन्होने उस समय चुप रहना ही उचित समझा। महासागर का सलिल जैसे अपनी मर्यादा का उल्लङ्घन करते डरता है उसी तरह मानी पुरुषो का मन भी मर्यादा तोड़ते डरता है। सागर का सलिल और मनस्वियो का मन, ये दोनों ही क्षुब्ध होने पर भी स्वच्छ ही रहते हैं। तूफ़ान आने पर भी समुद्र का जल जैसे कलुषित नही होता वैसे ही सज्जनो का मन भी अपमान और अत्याचार के प्रबल विकारो स मैला नही होता। हम लोगो के इस सारे दु.ख और क्लेश का एक मात्र कारण धृतराष्ट्र के पूत्रों को अपना सुहृद् बनाना है। उनसे प्रेम करने पर भी उन्होंने हमारे साथ शत्रुता का व्यवहार किया। इस शत्रुता की उत्पत्ति का कारण उन पर हम लोगों का स्नेह प्रकट करना ही है। आसन्न-पतन नदी-तट की छाया का आश्रय लेना जैसे कदापि कल्याणकारी नहीं वैसे ही दुर्जनों के साथ मित्रता करना भी कदापि कल्याणकारी नही। उनसे प्रीति रखना—उनसे मैत्री करना—ही शत्रुता का बीज बोना है। जो लोग लोक-निन्दा से नहीं डरते और जो गुण-दोष तथा भले-बुरे का भेद नहीं समझते उन दुराचारी धूर्तों का हृद्गत भाव, दैवगति की तरह, जाना ही नहीं जा सकता। यही कारण है जो हम लोग ऐसो के साथ मैत्री करके इस तरह छले गये। हे तात! यदि एक बात न होती तो शत्रुओं के द्वारा किये गये अत्याचार और अपमान के कारण मेरा हृदय फट कर कब का विदीर्ण हो गया होता। वह बात यह है कि मेरे क्रोध

ने मेरे हृदय को करावलम्ब सा देकर उसे अब तक बचा रक्खा है। शत्रुओं से उनके कृतकर्म्म का बदला लेने के लिए यदि मेरे हृदय में क्रोध की उत्पत्ति न होती तो मैं अब तक जीता ही न रहता। मैं उन लोगों से उनके दुष्कर्म्म का बदला लिये बिना न रहूँगा, इसी आशा से मैं अपना शरीर धारण कर रहा हूँ।

"शत्रुओं ने हम लोगों को किसी काम का नहीं रक्खा। उन्होंने तो हमे वनेचर बना डाला है। राज-पाट छीन कर उन्होंने हमे हरिणों की तरह अपनी जीविका चरितार्थ करने के लिए विवश कर दिया है। इस दशा मे हम पाँचो भाई भी परस्पर एक दूसरे को देख कर लज्जित होते हैं—हम आपस मे एक दूसरे के सामने अपना मुँह नहीं कर सकते। जब भाइयों भाइयों का यह हाल है तब औरों को मुँह दिखाने से हमे कितनी लज्जा मालूम होगी, इसका तो कहना ही क्या है। हमारी दशा तो इस समय एक तिनके के सदृश हो रही है। शक्ति न होने के कारण तिनका सदा झुका रहता है। उत्साह आदि शक्तियों के न होने से हमारा भी सिर नीचा हो रहा है; अतएव लोगों की दृष्टि में हम भी बहुत तुच्छ मालूम होते हैं। दुर्बलता के कारण तिनके का कोई गौरव नहीं करता। हमारी भी दशा ठीक ठीक ऐसी ही है। निस्सार होने के कारण हमारा भी गौरव नष्ट हो गया है। निर्बलता के कारण हम इस समय अवनत, सामर्थ्य-हीन और तुच्छ दशा को प्राप्त हो गये हैं। अतएव, हमारी वही गति है जो एक तिनके की होती है। मान-हीन मनुष्य और तिनके मे कुछ भी भेद नहीं। मेरी तो यही सम्मति है। आप इस पर्वत को देखिए। इसके ऊँचे ऊँचे जितने

शिखर हैं वे सभी अलङ्घ्य हैं। न उनकी चोटी तक कोई पहुँच सकता है और न उन्हे कोई पार ही कर सकता है। इन्हो के दृष्टान्त से आप समझ जायँगे कि मानोन्नति कितनी प्यारी वस्तु है। ऐसा कौन है जो संसार मे मान-सम्बन्धिनी उन्नति का आदर न करे? आप सच समझिए, जब तक मनुष्य का अपमान नही हुआ—जब तक संसार मे उसका मान बना हुआ है—तभी तक लक्ष्मी उसका आश्रय करती है, तभी तक वह उसके पास रहती है; तभी तक उसका यश भी स्थिर रहता है, और तभी तक लोग उसे पुरुषत्व-पद का अधिकारी भी समझते हैं। जहाँ मान गया तहाँ लक्ष्मी भी चल देती है, यश भी जाता रहता है; यहाँ तक कि लोग मानहीन को पुरुष ही नही समझते। पुरुषों की गणना करने के लिए उठाई गई उँगली जिसके नाम पर रुक जाय और दूसरी उँगली पर उसे ठहरने का मौका न आवे, उसी पुरुष का जन्म सार्थक है। दुर्गम अरण्यों से व्याप्त ऊँचे पर्वत पर भी लोग पहुँच जाते हैं; उसका भी वे उल्लङ्घन कर जाते हैं। परन्तु भाग्यशाली और मानोन्नत पुरुष का उल्लङ्घन करने मे कोई भी समर्थ नही होता। ऐसे मानी महात्माओं को अलङ्घ्यता कभी छोडती ही नहीं। जिसकी शुभ्र यशोराशि को देख कर चन्द्रमण्डल भी लज्जित हो जाता है वही मनुष्य अपने वंशधारियो को महापुरुष की पदवी को पहुँचा देता है और उसी के द्वारा धनधान्यों से पूर्ण यह वसुन्धरा पृथ्वी सार्थक-नामा होती है। यश ही मनुष्य का सबसे बड़ा धन है। स्वयं यशस्वी पुरुष ही नही, उसके वंशधर भी विश्व में माननीय होते हैं। पृथ्वी भी उन्हीं से अपने को कृत-कृत्य समझती है। नीरस और

शुष्क पदार्थ पर वज्रपात की तरह जो लोग अपने शत्रुओं पर कोपपात करते हैं वही मान-धनी महात्माओं मे अग्रणी समझे जाते हैं। वही पुरुषत्व-सूचक कार्यों की वर्णना मे उदाहरण-स्वरूप माने जाते हैं। शुष्क घास पर गिर कर वज्र जैसे उसे क्षण मे जला देता है वैसे ही कोपाग्नि द्वारा शत्रुओ को जिसने एक क्षण मे न जला दिया वह पुरुष ही नही।

"सागर की उत्तुङ्ग तरंगों के सदृश चञ्चल सुख की मैं इच्छा नही रखता। अर्थ-वैभव को भी वैसा ही चञ्चल समझ कर मैं उसे भी नही चाहता। शरीर के अनित्यत्व-रूप अशनि ( वज्र ) से भयभीत होकर मुक्ति की भी मैं कामना नही करता। मुझे यह कुछ भी न चाहिए। शत्रुओ ने हमारे साथ कपट करके अयशरूपी कीचड़ से जो हमे कलुषित कर दिया है उस कीचड को मैं वैधव्य-व्यथा से व्यथित वैरि-वनिताओ के नेत्रो से गिरे हुए जल से धो डालना चाहता हूँ। बस यही एक मात्र मेरी इच्छा है।

"मेरे इस उद्योग का हाल सुन कर समझदार लोग चाहे भले ही हँसें, अथवा यह उद्योग चाहे मेरी बुद्धि का विकार ही समझा जाय, अथवा मुझ सदृश अपात्र को व्यर्थ ही उपदेश देने के कारण आप चाहे अपने मन मे भले ही लज्जित हो—मुझे इन बातों में से किसी की भी परवा नहीं। शत्रुओ का समूल उच्छेद करके अकीर्ति-सागर से अपनी कुल लक्ष्मी का उद्धार किये बिना मैं निर्वाण-पद की कुछ भी इच्छा नहीं रखता। बिना शत्रु-संहार किये निर्वाण को तो मैं विजय-प्राप्ति के मार्ग मे कण्टक समझता हूँ। अपनी वर्तमान अवस्था मे मुक्ति मेरे किसी काम की नहीं। शत्रुओं

के द्वारा लुप्त किये गये यश का उद्धार जो मनुष्य अपने शर-समूहो से नही करता वह जीता ही मुर्दा है, अथवा वह ऐसा है जैसे उत्पन्न ही न हुआ हो, अथवा उसका जन्म ही तृणवत वृथा है। उसके जीने से क्या लाभ? उसे तो मरही जाना चाहिए। अपने शत्रुओ का समूल सहार किये बिना जिसकी कोपाग्नि बुझ जाती है वह क्या पुरुष कहे जाने योग्य है? यदि मैं भूलता हूँ तो आप ही कहिए, क्या ऐसा भी पुरुष पुरुष है? पुरुष-शब्द जाति-वाचक अवश्य है, पर मुझे उसका वह अर्थ अभीष्ट नही। मैं तो व्यक्ति-वाचक पुरुष-शब्द की बात कहता हूँ। जाति वाचक पुरुष-शब्द का प्रयोग तो पशु पक्षियो आदि के लिए भी होता है। उसे जाने दीजिए। उससे मेरा मतलब नहीं। उस अर्थ के सम्बन्ध में तो पुरुष-ख्याति सर्वथा ही निष्फल है। मेरा प्रयोजन उस व्यक्ति-विषयक पुरुष से है जिसका नाम गुण ग्राही सज्जन प्रशंसा-पूर्वक लेते हैं और जिसका उल्लेख करके वे विस्मित-चित्त हो जाते हैं। सभ्य समाज मे जिसका नामोच्चारण होते ही उपस्थित सभ्यों की तेजोराशि क्षीण हो जाती है और जिसके बल, वीर्य्य और पराक्रम की प्रशंसा शत्रु भी करते हैं वही व्यक्ति पुरुष कहे जाने योग्य है, और कोई नही। शायद आप यह कहें कि भीम आदि और भाइयों के रहते हुए अकेले मुझी को क्यो शत्रु-सहार के लिए इतना उद्योग करना चाहिए, तो इसका उत्तर यह है कि यद्यपि राजा युधिष्ठिर ने ही समर मे शत्रुओं का संहार करने की प्रतिज्ञा की है तथापि प्यासा मनुष्य जिस प्रकार जल की इच्छा करता है उसी प्रकार वे एक मात्र मुझसे ही यह कार्य्य-साधन करने की इच्छा रखते हैं। वे

मुझी को यह कार्य्य करने योग्य समझते हैं, और मैं उनकी इच्छा-पूर्त्ति करना अपना परम धर्म्म समझता हूँ। क्योंकि जो मनुष्य अपने विपत्तिग्रस्त स्वामी की आज्ञा के पालन मे समर्थ नहीं होता वह शशाङ्क के कलङ्क के सदृश अपने विमल कुल का कलंक समझा जाता है। आप मुझे मोक्षार्थी मुनियो की तरह तपस्या करने का आदेश देते हैं। परन्तु ऐसा करना मुझे उचित नही। मैं तो अभी गृहस्थ हूँ। गार्हस्थ्य धर्म्म चरितार्थ करने के पहले ही धर्म्मविरोधी चौथे आश्रम का मैं कैसे स्वीकार कर सकता हूँ? मनु आदि आचार्य्यों ने यथाक्रम ही आश्रम-धर्मों का पालन करने की आज्ञा दी है, क्रमभङ्ग करके नहीं। मेरा गार्हस्थ्य धर्म्म अभी पूरा नही हुआ। फिर भला संन्यास-धर्म के पालन का क्या ज़िक्र? सभी गृहस्थ, वानप्रस्थ और उसके बाद संन्यासी नहीं हो सकते। गृह-सम्बन्धी समस्त कर्म कर चुकने पर ही वानप्रस्थ और संन्यासी होने की आज्ञा शास्त्र मे है। मैंने तो अब तक गृहस्थ-आश्रम-सम्बन्धी अपने कर्त्तव्य निपटा ही नहीं पाये। मुझे तो अभी अपने शत्रुओ से उनके दुष्कृत्यो का बदला लेना शेष ही है। मेरी माता और बड़े भाई, राजा युधिष्ठिर, नहीं चाहते कि मैं स्वतन्त्रता-पूर्वक वानप्रस्थ और संन्यासी बन कर उन आश्रमों के कर्तव्य का पालन करूँ। अपनी जन्मदात्री और अपने आचार-निष्ठ जेठे भाई की आज्ञा मानना मैं अपना सबसे बड़ा धर्म्म समझता हूँ। अतएव उनकी आज्ञा से शत्रुओं का उच्छेद करके, तब मैं अन्य आश्रमो के कर्तव्यों का विचार करूँगा। उन आश्रमों का कर्त्तव्य पालन करना इस समय मेरा धर्म्म नहीं। मनस्वी मनुष्य धर्म्म-भीरु होते हैं। वे धर्म्म ही का अनुवर्तन करते

हैं। अपने धर्म्म के अतिक्रमण से वे सदा ही डरते रहते हैं। शत्रुओं द्वारा तिरस्कृत होने पर मानी पुरुष समर से कभी पलायन नहीं करते। वे स्थिरतापूर्वक जी जान से चेष्टा करके अपने शत्रुओं का नाश-साधन करते हैं। सुनिए, इस पर्वत के शिखर पर छिन्न भिन्न हुए बादल के टुकड़ों के सदृश छिन्न-भिन्न हो कर या तो मैं विलय को ही प्राप्त हो जाऊँगा या इन्द्र की आराधना करके अकीर्ति-रूपी शल्य को हृदय से निकाल ही फेंकूँगा। दो मे से एक बात अवश्य होगी। मर चाहे मैं भले ही जाऊँ, पर जिस निमित्त मैंने यह तपश्चरण आरम्भ किया है उसकी सिद्धि की चेष्टा से कदापि विरत न हूँगा।"

अर्जुन की ऐसी दृढ प्रतिज्ञा सुन कर इन्द्र को परम सन्तोष हुआ। वृद्ध ब्राह्मण का रूप छोड़ कर वह अपने स्वाभाविक रूप मे प्रकट हो गया। फिर अर्जुन का आलिगन करके उसने कहा—

"बेटा, तू देवाधिदेव शङ्कर की आराधना कर। उसीसे तेरी कामना फलवती होगी। उनकी आराधना सभी दुःखों का नाश करने वाली है। तेरी तपस्या से भगवान् पिनाक-पाणि जब प्रसन्न होंगे तब लोकपालो के साथ मैं स्वयं भी तेरी अभीष्ट-सिद्धि के लिए तेरी सहायता करूँगा। मैं तेरे लिए ऐसे बल-वीर्य्य का विधान करूँगा जिससे त्रिलोक मे कोई भी तेरा सामना न कर सके। वैसा बल-वीर्य्य सम्पादन कर चुकने पर, तू शत्रुओं से उनकी राज्यलक्ष्मी सहज ही छीन लेगा। तब तो वह स्वयं ही अत्यन्त उत्सुक होकर तेरे पास आने की इच्छा करेगी।"

बस इतना कह कर इन्द्र अन्तर्धान हो गया।

---

# बारहवाँ सर्ग।

देवेन्द्र के दर्शनो से धनञ्जय को परमानन्द हुआ। उन्होने इन्द्र की आज्ञा से भगवान् त्रिलोचन की आराधना उत्साहपूर्वक और यथाविधि आरम्भ कर दी। उनका शरीर भीतर और बाहर अत्यन्त विशुद्ध था। अपने शत्रुओ पर विजय पाने की इच्छा से वे निराहार रह कर तपस्या करने लगे। सूर्य्य के सामने अपना मुँह करके वे एक ही पैर के बल खडे रहे। इस प्रकार की तपस्या करते करते उन्हे बहुत समय बीत गया। यह तपस्या कुछ ऐसी वैसी न थी, कठिन से भी कठिन थी। ऐसी तपस्या से तपस्वी का शरीर और इंद्रिय-समूह दोनो बहुत ही संतप्त हो जाते हैं। फिर, निराहार और निर्जल रहना तो और भी दु:खदायक है। परन्तु अर्जुन ने इन सारे शारीरिक दु:खों और मानसिक क्लेशों को कुछ भी न समझा। वे तपश्चर्य्या मे हिमालय के समान स्थिर और दृढ़ बने रहे। बात यह है कि महात्माओं के धैर्य्य की कोई सीमा ही नही। उनमे इतना सामर्थ्य होता है कि लोग इसकी इयत्ता ही नही जान सकते। दु:ख, क्लेश और संताप साधारण जनों को अवश्य ही विचलित कर सकते हैं; परन्तु धीर जनो को नहीं। धैर्य्यवान् महात्माओं के सामने इनकी दाल नहीं गलती।

अर्जुन के पास ही पेड़ो पर पके हुए और सुवासपूर्ण अनेक फल लगे हुए थे। स्वच्छ और शीतल जल भी पास ही बह रहा था। परन्तु उनमे से कोई भी उनके चित्त को आकृष्ट न कर सका। न उन्होने कोई फल ही खाने की इच्छा प्रकट की और न जल ही पीने की। सच तो यह है कि पुण्यवान् पुरुपो की रुचिर तपस्या ही अमृत का काम देती है। अमृत होकर वही उनके शरीर को स्थिर और मनको तृप्त रखती है।

ऐसी अलौकिक तपस्या करने के कारण अर्जुन के मन मे न कभी गर्व ही का अंकुर उत्पन्न हुआ और न कभी विस्मय ही को स्थान मिला। तपस्या करते करते बहुत समय बीत जाने पर और कोई होता तो अवश्य विषण्ण हो जाता, उदासीन-भाव भी अवश्य ही उसे घेर लेता। पर अर्जुन न अधीर ही हुए, न विपण्ण ही हुए और न उदास ही हुए। जिस प्रकार उन्होने तपश्चरण आरम्भ किया था उसी प्रकार वे उसका अनुष्ठान निरन्तर करते गये। शिथिलता को उन्होंने पास तक न फटकने दिया। उनके प्रबल सत्व-गुण के सामने तमोगुण और रजोगुण निस्तेज और भंगुर सिद्ध हो गये। ये दोनों शक्तिहीन गुण उनके सत्व-गुण को नष्ट न कर सके।

अर्जुन का शरीर तपस्या से यद्यपि बहुत कृश हो गया तथापि उसमे अलौकिक तेज का आविर्भाव हुआ। उसे देख कर ऐसा मालूम होने लगा जैसे उन्होने अपने तेजस्वी शरीर से त्रिभुवन के उत्कर्ष को जीत सा लिया है। यहाँ तक कि उनका वह तेज:पुञ्ज शरीर देख कर तत्ववेत्ता महर्षियों को भी त्रास होने लगा। इन

अर्जुन ऊर्ध्व-बाहु होकर तपस्या करते थे—वे अपनी दोनों भुजायें ऊपर उठाये रहते थे। उन दोनो के बीच, मस्तक के ऊपर, एक बडी ही दुर्धर्ष ज्योति, उनके मुख से निकल कर, आकाश मे दूर तक फैल रही थी। इस कारण वह देवताओं और मुनियों को अपने अपने मार्ग पर चलने ही न देती थी। इन लोगों के गमन-पथो पर वह दुर्दर्शनीय तेज इतना व्याप्त हो गया था कि वे चलने ही योग्य न रह गये थे। वहाँ जाने से जल जाने का डर था।

राजपुत्र अर्जुन के तेजस्समूह ने उस पर्वत की सारी तिमिर-राशि को दूर कर दिया था। अतएव, कृष्ण-पक्ष की रात मे भी नभोमण्डल ऐसा मालूम होता था जैसे उदित चन्द्रमा की चन्द्रिका फैल रही हो। उनके तेज के प्रभाव से इन्द्रकील-पर्वत पर सदा ही शुक्ल-पक्ष सा बना रहता था। किम्बहुना, निर्म्मल आकाश मे सूर्य्य-बिम्ब भी अच्छी तरह न दिखाई देता था। अर्जुन के शरीर से उत्पन्न हुई महती मयूख-माला से क्षीणतेज हो जाने के कारण, लज्जित से हुए सूर्य्य ने, मानो आकाश मे उदय होना ही छोड़ दिया था। बात यह कि सूर्य्य की कान्ति से भी अधिक कान्ति वाले अर्जुन ने सूर्य्य को भी हतप्रभ कर दिया था।

प्रत्यञ्चा चढा हुआ शरासन धारण करने वाले अर्जुन के जटा-पटलो से अरुण वर्ण के किरण-पुञ्ज, ऊपर, आकाश मे, व्याप्त देख सिद्ध लोगों को यह शङ्का हुई कि कही असुरों की पुरी का मथन करने की इच्छा रखने वाले, पर अपने ललाटवर्ती तीसरे नेत्र को बन्द किये हुए, भगवान् रुद्र ही तो नहीं तपस्या कर रहे! अर्जुन का शरीर वैसा ही तेजस्वी था जैसा कि त्रिपुरा-

न्तक शङ्कर का। उनका वीर-वेश भी वैसा ही था। इसी से सिद्धों को ऐसी शङ्का हुई। उन्होंने कहा—यद्यपि इन्होंने अब तक अपना तीसरा नेत्र नहीं खोला, तथापि बहुत करके ये रुद्र ही हैं। सिद्धों को तो इस प्रकार की शङ्का हुई। अन्य तपस्वियों को और ही प्रकार की। उन्होंने अर्जुन को घोर तपस्या मे प्रवृत्त देख कर यह सन्देह किया कि क्या यह प्रत्यक्ष इन्द्र है? अथवा क्या यह सूर्य्य है? अथवा क्या यह महा-ज्वाला-माली अग्नि है? उन्होने सोचा—ऐसी अलौकिक तपस्या करने वाला मनुष्य नहीं हो सकता। यह अवश्य ही कोई महातेजस्वी देवता या प्रकाश-पिण्ड है।

अर्जुन के विस्तृत तेज से वहाँ की वन-श्रेणी के वृक्ष यद्यपि न जल गये और यद्यपि आस पास के जलाशय न सूख गये, तथापि वहाँ जितने सिद्ध और जितने तपस्वी थे उनको वह असह्य अवश्य हो गया। वे बेचारे उस तेज से जलने से लगे। इस कारण वे घबरा कर, और कोई अन्य उपाय न देख कर, इस प्रकार महादेवजी की शरण गये जिस प्रकार कि गुण विनय की, नय (नीति) अनौचित्य-नाशक विवेक की और समय न्याय की शरण जाता है।

उन शरणार्थी महर्षियों ने जाकर देखा तो भगवान् शङ्कर सूर्य्य के तेज से भी अधिक तेजस्वी रश्मि-पुञ्ज से व्याप्त हैं। इस कारण उनके पास पहुँचते ही महर्षियों के नेत्रो मे चकाचौंध आ गई। वे आँख उठा कर उनकी तरफ़ अच्छी तरह देख भी न सके। तब वे भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान काल के अधीश्वर देवाधिदेव शङ्कर को प्रसन्न करने के लिए उनकी स्तुति करने लगे। बड़ी देर तक स्तुति कर चुकने पर, उन्होने उस तेजोराशि के भीतर, तीन आँखों

वाले एक कमनीय पुरुष को देखा। उन्होंने देखा कि भगवान् शङ्कर आर्द्र चन्दन से चर्चित, उमा के एक अङ्ग-विशेष तुल्य, अपने वाहन बैल के मोटे मोटे और उन्नत कुम्भ (कोहान) पर हाथ रक्खे हुए, स्पर्श-सुख का अनुभव कर रहे हैं। हिमालय के ऊँचे शिखर पर वे विराजमान हैं और अपने अलौकिक तेज से पर्वतों, सागरों तथा समग्र आकाश को व्याप्त कर रहे हैं। कोई दिशा, कोई विदिशा, ऐसी नहीं जो उनके विश्वव्यापी तेज से सर्वत्र व्याप्त न हो। अपने घुटनों में वे विशालकाय महासर्प लपेटे हुए हैं। दोनों घुटनों के बीच लपेटा हुआ वह महासर्प बड़ा ही अलौकिक दृश्य दिखा रहा है। उसके वेष्टन से शिवजी ऐसे मालूम हो रहे हैं जैसे लोक-समूह लोकालोक नामक पर्वत से वेष्टित हुआ दिखाई देता है। यह लोकालोक-पर्वत इतनी दूर है कि सूर्य्य का प्रकाश इसके आगे जा ही नहीं सकता।

ऋषियों ने देखा कि शिवजी का कण्ठ बहुत विशाल है। उसका वर्ण नीला है। उससे प्रकाश पुञ्ज की किरणें निकल रही हैं। यज्ञोपवीत की तरह पहने गये, बर्फ़ की राशि के सदृश विशद, शेषनाग की शोभा, उस किरण-विस्तारी नीले कण्ठ से, बहुत ही अधिक हो रही है। शिवजी के शीश पर विराजमान चन्द्रमा की कान्ति भी चारों तरफ़ फैल रही है। चन्द्रमा ऐसा मालूम हो रहा है जैसे बहने के बाद सुरसरि का थोड़ा सा शुभ्र जल शिवजी के शीश पर बच रहा हो। उसकी कान्ति से उनके सिर का केश-कलाप व्याप्त हो रहा है और, मालती के फूल के सदृश, शुभ्र-कपालरूपी कुमुद उससे अभिषिक्त है।

इस प्रकार के अलौकिक वेशधारी भगवान् त्रिलोचन की स्तुति करते करते वे मुनि जन उनके पास पहुँच गये। उनको पास आया देख उमापति शङ्कर ने अपनी आंख के इशारे से आने का कारण उनसे पूछा। इस पर मुनियों ने अर्जुन की घोर तपस्या से उत्पन्न हुई, सारे संसार की पीड़ा, का सविस्तर वर्णन आरम्भ किया। वे बोले—

"हे पुरुषोत्तम! इन्द्रकील पर्वत पर एक अज्ञात पुरुष तपश्चर्या कर रहा है। आपके शत्रु वृत्तासुर के शरीर के सदृश ही उसका शरीर अत्यन्त भीषण है। वह इतना तेजस्वी है कि सब से अधिक तेजस्क सूर्य्य के तेज को भी उसने अपने तेज से मात कर दिया है। उसमें एक विचित्रता बहुत बड़ी है। इधर तो उसके सिर से जटायें लटक रही हैं और शरीर पर वल्कल तथा अजिन है, उधर उसने कवच भी धारण कर रक्खा है। यही नहीं, उसके पास एक बड़ा सा धनुष, दो बड़े बड़े तरकस और एक विकराल खड्ग भी है। तपस्वी मुनियों के लिए इस प्रकार आयुध धारण-पूर्वक तपस्या करना एक अद्भुत बात है। यद्यपि उसका वेश तपस्वियों के वेश का विरोधी है तथापि आप यह न समझिए कि इस विरुद्ध वेश के कारण वह शोभायमान नहीं। नहीं, इस विरोधी वेश के स्वीकार से भी वह बहुत ही मनोहारी मालूम होता है। यह भी बड़े आश्चर्य्य की बात है। जिस समय वह पृथ्वी पर पैर रखता है उस समय उसके शरीर-भार से पृथ्वी डगमगाने लगती है। और, जिस समय वह इन्द्रियों का निरोध करके समाधिमग्न हो जाता है उस समय सारी दिशाओं और विदिशाओं में सन्नाटा छा जाता है। वायु, ग्रह तथा

तारो आदि से युक्त सारा नभस्थल शान्त होकर निश्चल हो जाता है। हम लोगों को तो ऐसा जान पडता है कि वह पुरुष अपने अलौकिक तेज से सुरासुरों सहित इस सारे ससार के सार को खींच कर पदार्थ मात्र को निस्सार कर देगा। तपश्चर्य्या के प्रभाव की सीमा नही। ऐसी कौन सी बात है जो उससे साध्य न हो सके! अतएव, आश्चर्य्य नहीं जो वह ससार को सारहीन कर दे। नही कह सकते, वह त्रिलोकी को सहसा जीत लेने की इच्छा रखता है! अथवा उसे जीत कर तत्काल ही उसके संहार की इच्छा रखता है! अथवा वह अपवर्ग-प्राप्ति की इच्छा रखता है! हमारी तो समझ ही मे नही आता कि वह चाहता क्या है। उसका तेज हम लोगों से नही सहा जाता। उससे तो हम सब झुलसे जा रहे हैं। हे नाथ! आप क्यो हमारी उपेक्षा कर रहे हैं? कहिए, बात क्या है जो आप इस तरह तटस्थ हैं? बचाइए, बचाइए। हमारी रक्षा कीजिए। आपसे कुछ छिपा नही। आप तो सर्वान्तर्यामी और सर्वज्ञ हैं। हे अभय-प्रद! आपके सदृश स्वामी और आपके सदृश शासक पाकर भी यदि हमारा पराभव हो तो फिर हमारी रक्षा और करेही गा कौन? आपके रहते हमारी यह गति न होनी चाहिए। शीघ्र ही आप हमारी गुहार सुनिए।"

अपनी दुर्दशा का इस प्रकार वर्णन करके ऋषि लोग चुप हो रहे। तब अन्धकारि महादेवजी, उत्तुङ्ग तरङ्गों से क्षुब्ध हुए जलनिधि के जलनाद-वत्, गम्भीर वचन बोले। उन वचनों की गम्भीरता से दिशाओं के विवर परिपूर्ण हो गये। उन विवरों से शिवजी के वचनों की प्रतिध्वनि निकलने लगी। उन्होंने कहा—

"इस तपस्वी को आप साधारण पुरुष न समझे । बदरिका-श्रम मे नित्य निवास करने वाले और इस ससार की सृष्टि तथा सहार के कर्त्ता विष्णु का यह नर-नामक अंश है । यह उन्हीं विष्णु भगवान् की इच्छा से भूतल मे अवतीर्ण हुआ है । यह आदि-पुरुष ही का अंश है । विष्णु के इस अंश को कारणवश नर के रूप मे अवतार लेना पड़ा है । इसके शत्रु बडे बली है । वे तीनो भुवनों को सन्तप्त कर रहे है । उनके पराक्रम का यह हाल है कि इन्द्र को भी वे कुछ नही समझते । उसे भी उन्होने जीत लिया है । ऐसे बल-वान् और पराक्रमी शत्रुओ को मारने की इच्छा से ही यह बहुत बडी तपस्या के द्वारा मेरी आराधना कर रहा है । यह तो इस पुरुष का हाल हुआ । इसके साथ एक और भी विभुता-पूर्ण पुरुष ने, ब्रह्मा की प्रार्थना पर, जन्म लिया है । उसका नाम है—कृष्ण । असुरों का संहार करके प्रजाजनों का पालन करने के लिए ही इन्हें मनुष्य होना पड़ा है । यथार्थ मे ये दोनो, कृष्ण और अर्जुन, नर और नारायण ही हैं ।

"यह रहस्य किसी तरह मूक नामक दानव को मालूम हो गया है । वह इस तपस्वी की तपस्या को देवताओ ही का काम समझता है । उसे इस बात का निश्चय हो गया है कि इसकी तपस्या पूर्ण होने से दैत्यो का भला नहीं । इसी से वह तपस्विरूप पाण्डु पुत्र अर्जुन को मार डालना चाहता है । अतएव मेरे साथ आप भी झटपट वहाँ चलिए । वह दानव महा पापी है । अर्जुन के सामने वह क्षण भर भी नही ठहर सकता । अकेले अर्जुन को वह एकान्त मे भी नहीं मार सकता । अपने स्वाभाविक रूप से

वह अर्जुन के साथ युद्ध करके किसी तरह भी पार नहीं पा सकता। इसी कारण उसने उन्हें छल-पूर्वक मारने का विचार किया है। वह मायावी वराह बन कर अर्जुन को निश्शङ्क मारने की तैयारी मे है। अतएव अर्जुन के पास हम लोगों के जाने का यह मौका बहुत ही अच्छा है। आपने बहुत अच्छे मुहूर्त मे यहाँ आने की कृपा की है। चलिए, किराती के राजा का रूप धारण करके मैं वहाँ उस मायावी दानव को मार गिराऊँगा। इधर से मैं उस पर बाण छोड़ूँगा, उधर से अर्जुन भी छोड़ेगा। वह कहेगा कि मेरे शराघात से यह वराह मरा है, मैं कहूँगा कि मेरे शराघात से। इस प्रकार हम दोनों मे वहाँ मृगयासम्बन्धी झगडा होगा। यद्यपि घोर तपस्या के कारण अर्जुन का शरीर बहुत कृश हो गया है और यद्यपि इस समय उसकी सहायता करने वाला वहा कोई नहीं, वह अकेला ही है, तथापि कुपित होने पर वह जिस स्वाभाविक पराक्रम का परिचय देगा वह आपके देखने योग्य होगा। उसके बाहु-द्वय का अतुल बल देख कर आपको भी अवश्य ही आश्चर्य होगा। तब आपको विश्वास हो जायगा कि यह पुरुष अवश्य ही आदि-पुरुष विष्णु का अंश है।"

ऋषियों से इस प्रकार कह कर भगवान् भूतनाथ ने किरातपति का बहुत ही रुचिर रूप धारण किया। अपने वक्षःस्थल पर उन्होंने हरिचन्दन का उलटा पुलटा खौर लगाया। उस पर गज-मोतियों की माला धारण की। अपने लम्बे लम्बे बालों को कुसुमित लताओ से खूब जकड कर बाँधा। मोर-पङ्ख के कुण्डल बना कर उन्हें कानों मे पहना। जिस समय वे कुण्डल उनके कपोलों पर लटकने

लगे उस समय उनके अरुणनेत्रधारी मुख की शोभा दूनी हो गई। उनकी छाती पर उस समय पसीना आजाने के कारण रोमाञ्च हो आया। उन्होंने मेघ के समान घोर नाद करने वाला एक बहुत बडा धनुप लिया। उस पर उन्होने एक बाण भी चढ़ाया। उस समय वे मेघ मण्डल के समान रुचिराकृति मालूम होने लगे।

शिवजी को किरातो की सेना के नायक के रूप मे देख कर उनके गणो ने भी किरातो का रूप धारण किया। उन्होने कहा—जब हमारे स्वामी किरातपति बने हैं तब हम भी क्यो न किरात बनें? वे सब भी शूल और परशु ले लेकर तैयार हो गये। इस प्रकार एक विकट वनेचरवाहिनी बन गई।

इसके अनन्तर शिवजी ने अपने गणो को उस पर्वत के भिन्न भिन्न वन-प्रान्तो से प्रस्थान करने की आज्ञा दी। उन्होंने कहा—तुम लोग इधर से, तुम उधर से, तुम यहाँ से, तुम वहाँ से प्रस्थान करो। एक एक समूह के लिए उन्होने अलग अलग मार्ग निश्चित कर दिया। क्योंकि सब का एक ही मार्ग से चलना असम्भव था। मार्ग-निर्देश हो चुकने पर, मृगया का बहाना करके, किरातो की वह सेना चल पड़ी। जिस समय वह उस पर्वत के चारों ओर से चली उस समय बड़ा ही भीषण शब्द हुआ। उसने उस सारे पर्वत को क्षुब्ध कर दिया। कोई कोना उससे व्याप्त होने से न बचा। उस घोर नाद को सुन कर जितने पशु और जितने पक्षी थे सब भय से काँप उठे। जो जहाँ था वहीं से भाग चला। एक तो सेना के चलने का घोर रव, दूसरे पशु-पक्षियों के भागने का कल-कल—दोनों के मेल से उस नाद की भयङ्करता और भी अधिक

हो गई। उससे वह सारा वन और उसकी सारी गुहायें परिपूर्ण हो गईं। अतएव, ऐसा मालूम होने लगा जैसे वह भूधर भयार्त सा होकर सहसा चीख़ रहा हो।

उस समय परस्पर विरोधी प्राणियो ने भी अपना अपना स्वाभाविक वैर छोड़ दिया। सिहो के साथ मृग और उलूको के साथ कौवे भाग चले। बात यह है कि अत्यन्त भय-दायिनी आपदाओ के सहसा उपस्थित होने पर जन्म के वैरी प्राणियों का भी वैर-भाव दूर हो जाता है। उस समय उन्हे अपने अपने प्राण बचाने की पड़ती है, वैर-साधन की नही। इसी से एक ही रास्ते, साथ साथ भागने पर भी, न शेरो ने मृगों की तरफ़ आँख उठा कर देखा और न उलूको ने कौओं की तरफ़।

किरात-रूपी शिवजी की उस उतनी बड़ी सेना को आते देख चमरी नाम की गायें भी भयभीत होकर भाग चलीं। उनकी पूँछे कँटीले बाँस की कोठियां मे फँस गईं। अतएव उस महा भयानक किरात-कटक के पास आ जाने पर भी वे बेचारी वही फटफटाती हुई खड़ी रहीं, वहाँ से भाग ही न सकी। मार्ग मे उस सेना को बड़े बड़े शेर भी मिले। मतवाले हाथियों का मस्तक विदीर्ण करने के कारण उनकी गर्दन के केश-कलाप सुगन्धित हो गये थे। वे, उस समय, निद्रा भङ्ग होने के कारण जँभाई ले रहे थे। यद्यपि वह भयङ्कर किरात वाहिनी उनके सामने से ही जा रही थी तथापि वे वहाँ से न हटे। वे उस सेना को निर्भय देखते रहे। मृगराज न ठहरे! राजा भला कहीं भय उपस्थित होने पर क्षुब्ध होता है!

नदियो की भी दुर्दशा हो गई। मछलियाँ बेतहाशा भागने

लगी। घबरा कर भागने के कारण कोई कोई उलट गईं, उनके पेट ऊपर को हो गये और पीठ नीचे को। जल-विहार के लिए जल मे प्रविष्ट हुए हाथियों के निकल भागने के कारण उनके तट पङ्क-पूर्ण हो गये। कहीं कहीं कगारों के गिर जाने से तट ऊँचे नीचे हो गये। भागते समय हाथियों को किनारे पर रक्त चन्दन के जो पेड मिले उन्हे वे तोडते हुए चले गये। उनके टुकडों ने गिर गिर कर नदियों के सलिल-समूह को लाल कर दिया।

शिव-सैन्य के चलने से उत्पन्न हुआ भयङ्कर निनाद सुन कर जलाशयों मे पड़े हुए भैंसे भी भाग चले। उनके भागने से टूटे हुए अगुरु, तमाल, उशीर आदि से सुन्दर सुवास निकलने लगी। उस से वायु सुगन्धिपूर्ण हो गई। उस वायु ने शुक-सदृश हरे रङ्ग के शिला-सुमनों को इधर उधर बखेर दिया। अतएव उनके सुवास से भी वह सुवासित हो गई। उस सुगन्ध-सनी पवन से वनेचर-वाहिनी का सारा परिश्रम दूर हो गया—उसकी सारी थकावट जाती रही।

सरोवरों की भी बुरी दशा हो गई। उनमे जो जल-जीव थे वे भी घबरा कर तड़फडाने लगे। अतएव सरोवरों का जल मथ सा गया। उस मैले जल को देख कर ऐसा मालूम होने लगा जैसे ग्रीष्म-काल ने ही सरोवरों की यह दशा कर डाली हो। क्योंकि ग्रीष्म मे ही सरोवरों का जल विशेष गँदला हो जाता है। उनका जल ही न मथ गया; उनमे जितने कमल और कुमुद थे वे भी सब अस्त व्यस्त हो गये। कदली और तृण-धान्य-समूह भी कुचल गये। सारांश यह कि भय-त्रस्त होकर जलचरो का भागना और उलटी

सीधी पछाड़े खाना, ग्रीष्म-काल ही के सदृश, उन सरोवरों के लिए संहारकारी हो गया ।

इस प्रकार उस पर्वत के शिखरों और गहन वनों के पशु-पक्षियों को विचलित करते हुए शिवजी इन्द्रकील पर्वत के ऊपर उस आश्रम के पास पहुँच गये जहाँ अर्जुन तपस्या कर रहे थे और जहाँ की लताओं के अग्र-भागो को मुदित हुई मृगियों ने अपने दाँतो से तोड तोड कर उन्हे छिन्न भिन्न कर दिया था ।

वहाँ पहुँचने पर शिवजी ने देखा कि मूक नाम का मेघवत् नीलवर्ण दानव, वराह का वेश धारण किये हुए और अपनी बड़ी बडी दंष्ट्राओ की रगड से भूतल को विदीर्ण करता हुआ, अर्जुन के सामने दौड़ा जा रहा है । यह देख कर महा-समर्थ महेश्वर ने अपनी सेना को गङ्गा के कछार मे ठहरने की आज्ञा देदी, और अपने थोडे से प्रधान प्रधान किरातो को अपने साथ लिया । फिर, वे, लताओ से लिपटे हुए घने वृक्षो की आड मे, उस वराह-वेशधारी दानव के पदचिह्न देखते हुए उसी के पीछे पीछे चले ।

———

# तेरहवाँ सर्ग ।

इतने मे अर्जुन को वह वराह-रूप दानव सामने ही आता हुआ दिखाई दिया। उन्होने देखा कि उसके मुख के दोनो ओर बडी बड़ी दंष्ट्राये निकली हुई हैं। उनके कारण उसका मुख बहुत ही भयङ्कर है। तब उन्होंने मन ही मन कहा—यह तो बहुत ही बड़ा वराह है। इतना विशालकाय शूकर न तो कभी देखने मे आया है और न कभी सुनने मे। जैसा विशाल इसका शरीर है वैसा ही विशाल इसका पराक्रम भी होगा। मैं तो समझता हूँ कि यह यदि चाहे तो, अपनी डाढ़ों के आघात से भूधरों तक के टुकड़ टुकड़े कर सकता है। देखो तो, यह कितने वेग से दौड़ता चला आ रहा है। न तो यह इधर उधर देखता है, न भले-बुरे मार्ग की ही परवा करता है। सीधा, तीर की तरह, मेरी ही तरफ़ चला आ रहा है। मारे क्रोध के इसकी गर्दन के बाल खडे हैं।

ऐसे अश्रुत-पूर्व और भीम-काय वराह को आते देख जयार्थी अर्जुन के मन मे कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ। वे मन ही मन इस प्रकार तर्क-वितर्क करने लगे—

"इस वराह ने अपने कठिन मुखाग्र से शाल के पेड़ों की जड़ों को सहज ही विदीर्ण कर डाला। इसके निविड़ स्कन्ध की रगड़ से पर्वत

के शिखरो के टुकड़े टुकड़े हो गये। वराह तो बहुत से एक ही साथ रहते हैं, पर यह अपने यूथ से अलग होकर अकेला ही आ रहा है। मालूम होता है कि युद्ध के लिए मुझे ललकारने की इच्छा से ही यह मेरे सामने दौड़ा आ रहा है। यह तो तपस्वियो का आश्रम है। तपस्या के प्रभाव से यहाँ तो सिंह आदि क्रूर पशुओं तक ने हिंसा-वृत्ति त्याग दी है। जितने जीव-जन्तु हैं, सभी निर्भय होकर स्वच्छन्द विचरा करते हैं। ऐसे आश्रम मे भी यह वराह मुझे मार कर अपनी हिंसा-वृत्ति चरितार्थ करना चाहता है। यह तो बड़े ही आश्चर्य की बात है। या तो मेरी तपस्या किसी कारण से बिगड़ गई है, जिससे इस तपोभूमि मे ऐसी विपरीत और विकृत बातें होने का प्रसङ्ग उपस्थित हुआ है, या यह वराह किसी दैत्य की माया का प्रभाव है। सम्भव है, कोई दैत्य ही वराह का रूप धारण करके अपनी माया की करतूत दिखाने आ रहा हो। अथवा यह भी हो सकता है कि पूर्वजन्म मे यह मेरा शत्रु रहा हो। अतएव, उस जन्म का शत्रुता-सम्बन्धी कोप इस जन्म मे भी न गया हो। क्योकि, कृतज्ञता की तरह क्रोध भी प्राणियो का साथ बहुधा अगले जन्म मे भी नहीं छोडता। कृतज्ञता का संस्कार जैसे प्राणियों को जन्मान्तर मे भी नही छोडता वैसे ही शत्रु-भाव का संस्कार भी नही छोड़ता। यदि ऐसा न होता तो पास ही विद्यमान और अनेक विरुद्ध-स्वभाव वाले अपने वैरी पशुओ को छोड़ कर यह मेरी ही तरफ़ क्यों इतने वेग से दौड़ता? मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि यह पशु नही। मुझे मारने की इच्छा रखने वाला यह कोई और ही प्राणी है। न मालूम क्यों मेरा मन इसके विषय मे यही

धारणा रखता है। वह इसे वराह नही समझता। मनुष्य का मन शत्रु और मित्र को अच्छी तरह पहचान लेता है। जिसको देख कर वह प्रसन्न होता है उसे तो मित्र और जिसको देख कर वह अप्रसन्न होता है उसे शत्रु समझना चाहिए।

"इसमे सन्देह नहीं कि मैं इस समय मुनि के वेश मे हूँ और तपस्या कर रहा हूँ। अतएव मुझ सदृश निरपराध तपस्वी को किस से भय? जब मैं किसी का अपकार ही नहीं करता तब कोई मेरा भी अपकार क्यों करेगा? परन्तु इस युक्ति को मैं सु-संगत नहीं समझता। यह तर्कना कल्याणकारिणी नही। क्योंकि, दुरात्माओं की लीला नहीं जानी जा सकती। दूसरे का उत्कर्ष उनसे देखा ही नहीं जाता। दूसरे की बढ़ती देखते ही उनके हृदय मे अपार मत्सर उत्पन्न हो जाता है। इस दशा मे ऐसा कौन काम है जो वे न कर डाले। विवेक भ्रष्ट दुरात्माओं के लिए मेरे तपोभङ्ग की चेष्टा करना सर्वथा सम्भव है।

"या तो यह कोई दैत्य है या निशाचारी राक्षस है। क्योंकि ऐसा एक भी जङ्गली जीव नहीं जिसमे इतना बल हो। देखो न, यह नील जलद के समान देह वाला वराह इस इतने बड़े पर्वत को भी अपने आक्रमण से कम्पित कर रहा है। मै तो यहां शान्ति-पूर्वक तपश्चरण कर रहा हूँ। पर इस दुरात्मा से यह नहीं देखा जाता; मुझ जैसे शान्तशील की भी तपस्या इसे असह्य है। इसीसे शायद यह इस मृगया-भूमि को, मुझसे छीन लेने के इरादे से, मुझ पर प्रहार करने आ रहा है। कुछ दूर पर जो कल-कल नाद सुनाई दे रहा है वह अवश्य ही इस मायारूपी वराह

की ही माया कल्पित असख्य सेना का नाद होगा। इसकी विपुल वाहिनी के घोर नाद से यह समस्त वन व्याप्त हो गया है। वन में रहने वाले सारे जीव-जन्तु चकित और त्रस्त होकर इधर उधर भाग रहे हैं।

"एक बात और भी हो सकती है। सम्भव है, दुर्योधन ने किसी को बहुत सा धन-वैभव देकर मुझे मारने के लिए राजी कर लिया हो, और उसी ने दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिए यह माया रची हो। शायद उसने अपने मन मे यह सोचा होगा कि यदि और किसी वेश मे मैं वहा जाऊँगा तो मेरे कार्य-सम्पादन मे जगली जन्तु विघ्न डालेगे। अतएव, लाओ, मैं भी एक जगली ही जीव का रूप बना कर अर्जुन को मार आऊँ।

"अथवा एक बात और भी हो सकती है। जिस समय मैंने खाण्डव वन को जलाया था उस समय उस आग से सैकड़ों सर्प जल गये थे। वे सब तक्षक नामक महासर्प के बन्धु-बान्धव थे। अतएव, सम्भव है, उसी तक्षक के पुत्र अश्वसेन ने मुझसे अपने बन्धु-बान्धवो के मारने का बदला लेने की ठानी हो और वही सुअर का रूप बना कर मेरा नाश करने आ रहा हो। मेरे भाई भीमसेन से भी तक्षक-वंशी सर्प शत्रुता रखते हैं। इस कारण, यह भी सम्भव है कि मुझे मार कर यह भाई भीमसेन के किये हुए अपकार का बदला लेना चाहता हो।

"अच्छा, इन तर्कनाओं से क्या लाभ? यह वराह चाहे मायामय हो, चाहे सच्चा, इसमें सन्देह नही कि अपने बल के घमण्ड मे आकर यह मुझे मारने की इच्छा रखता है। इस कारण, मेरा यह कर्तव्य है कि मैं इसे जीता न छोड़ूं। इसको मुझे

मार ही डालना चाहिए । क्योंकि, विद्वानों की सम्मति मे अपने शत्रु का संहार करना ही सबसे बडा लाभ है। जिस समय महामुनि व्यास ने तपस्या का उपदेश मुझे दिया था उस समय उन्होने मुझसे दृढतापूर्वक कहा था कि विजयार्थ तपश्चरण करते समय तू किसी भी रन्ध्रान्वेषी को अपने पथ मे प्रवेश न करने देना . वेदव्यास के इस उपदेश का पालन करना मैं अपना परम धर्म्म समझता हूँ । शास्त्र मे भी लिखा है कि दुष्टो की हिंसा से पाप नहीं होता ।

"अतएव इस महाबली वराह का विनाश किये बिना मेरे तपश्चरण की रक्षा और किसी तरह नहीं हो सकती ।"

इस प्रकार तर्क-वितर्क करके अर्जुन ने पुरुषत्व के पहले चिह्न चाप को उठा लिया । शत्रु का भेद करने के लिए एक ऐसे सचिव की आवश्यकता होती है जो गुणवान् हो—जो शत्रु की शक्ति का हाल जानता हो। पौरुष तभी अच्छी तरह प्रकट किया जा सकता है । शस्त्र-धारण करना—चाप हाथ मे लेना—तभी यथेष्ट सफल होता है। इसीसे, पुरुषत्व के सूचक चाप को हाथ मे लेने पर अर्जुन को अपने शत्रु वराह के संहारार्थ, गुणवान् सचिव की तरह, गुण, अर्थात् प्रत्यञ्चा, से युक्त एक निर्दोष बाण भी ग्रहण करना पड़ा । उन्होंने एक हाथ से धनुष और दूसरे से बाण उठा लिया ।

आदर-योग्य, सत्यनिष्ठ और औदार्य्य आदि गुणो से सम्पन्न मित्र, अनुरोध किये जाने पर, अवश्य ही अनुकूल हो जाता है और अपने सहायार्थी मित्र की प्रार्थना को सिर झुका कर मान लेता है। सहायप्रार्थी मित्र के पास धन बल न हो, तो भी, उस बल

की वह कुछ परवा नहीं करता । धन-बल के अभाव मे भी यदि वह गुणशाली है तो अवश्य ही अपने मित्र के सामने नम्र होकर उसका काम करने के लिए तैयार हो जाता है । ऐसे ही सद्गुणी मित्र की तरह, अनुरोध किये जाने—खीचे जाने—पर, महानुभाव अर्जुन के धनुष ने भी नम्रता स्वीकार कर ली और उनका कार्य्य-साधन करने के लिए वह झुक कर मण्डलाकार हो गया । सार-वान् होने के कारण वह धनुष भी मित्रवत् ही आदरणीय था । मित्र के मित्रत्व की तरह वह अभगुर, अर्थात् कभी न टूटने वाला, भी था और गुण, अर्थात् प्रत्यञ्चा, से युक्त भी था । धन-वैभव-हीन सहायार्थी मित्र की तरह, अर्जुन भी, कठोर तपस्या करने के कारण, क्षीण-बल थे । परन्तु उनकी निर्बलता की परवा न करके सन्मित्र-वत् ही वह धनुष अत्यन्त नम्न होकर चढ़ गया ।

जिस समय अर्जुन ने अपने गाण्डीव नामक धनुप पर बाण रक्खा और उसकी प्रत्यञ्चा को खीचा उस समय प्रलय-काल के मेघों की गर्जना के सदृश महा भयङ्कर शब्द हुआ । उस शब्द से इन्द्रकील-पर्वत की गुहाये फट गईं और अर्जुन के पैरों के दबाव से वह पर्वत इतना धँस गया कि उसे अपने नाश हो जाने—चूर चूर होकर रसातल चले जाने—का सशय होने लगा ।

इतने मे शूलपाणि शिवजी ने देखा कि अर्जुन ने अपने गाण्डीव धनुष को यथेष्ट खीच लिया है और वे उस खिचे हुए धनुष के मण्डल के ठीक बीच मे स्थिर खडे हैं । उस समय उन्हे अर्जुन, त्रिपुर-सहार के समय रौद्रभावापन्न अपनी ही मूर्त्ति के समान, महाभयङ्कर आकार वाले मालूम हुए । शर-सन्धान करने के लिए

अर्जुन को इस प्रकार तैयार देख, शिवजी ने भी शर-सन्धान करके अपने पिनाक नामक धनुष का आकर्षण किया। उस समय अपने पैरों पर ख़ूब ज़ोर देकर जो वे बाण छोड़ने के लिए तैयार हुए तो गिरिराज हिमालय, उनका भार सहने मे असमर्थ होकर, दूर तक पाताल में धसता चला गया। शिवजी के धनुष की प्रत्यञ्चा कोई साधारण प्रत्यञ्चा न थी। वह विस्तृत शरीर वाले वासुकि नामक महासर्प की थी। जहाँ पर उसका मुख था वहीं शिवजी ने गाँठ लगा दी थी। ऐसी अद्भुत प्रत्यञ्चा के खींचे जाने पर वासुकि की वदन-ग्रन्थि से आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं।

इधर तो संसार के संहारकर्त्ता महादेवजी और उधर श्वेताश्व अर्जुन, दोनों ही, एक ही साथ, उस वराहरूपी वैरी को मारने के लिए उद्यत हो गये। उस समय, अर्थ-प्रतिपादक प्रकृति और प्रत्यय के बीच में उकारादि इत्-संज्ञक वर्ण जिस प्रकार लोप होने ही के लिए आकर उपस्थित होते हैं, उसी प्रकार शिवार्जुन के बीच में वह वराहरूपी रिपु भी अपने नाशार्थ आकर एकाएक उपस्थित हो गया। इतने ही में अपने घोर रव से दुर्मद गजों का भी कलेजा कँपाने वाला शिव जी का दुर्निवार शर, आकाश को प्रकाश पुञ्ज से परिपूर्ण करता हुआ, उनके पिनाक नामक धनुप से बड़े वेग से छूट गया। उस समय ऐसा मालूम हुआ जैसे महामेघ से जलता हुआ वज्र गिरा हो।

शिवजी के इस बाण की पूँछ में पत्त (पङ्ख) लगे हुए थे। ज्यों ही बाण सनसनाता हुआ धनुष से छूटा त्योंही उसके बड़े बड़े पत्तों से महा घोर नाद उत्पन्न हुआ। उससे भीम भुजङ्गों के हृदय

और कान फटने लगे। उस समय ऐसा मालूम हुआ जैसे गरुड़जी बड़े वेग से आकाश मे उड़ते हुए जा रहे हों। उस बाण की गति मन की गति से भी अधिक थी। उसका वर्ण पीला था। चमकती हुई बिजली के समान प्रकाश-राशि से वह परिपूर्ण था। उसके किरण-समूह ने आकाश मे एक प्रकाशपूर्ण सड़क सी बना दी। इन किरणों मे इतना तेज था, मानो वे शूलपाणि शिवजी के तीसरे नेत्र से ही निकली हो।

जहाँ खड़े होकर शिवजी ने बाण छोड़ा वहाँ भी देवता और गन्धर्व आदि व्योमचारी विद्यमान थे। प्रकाश-पुञ्ज की प्रभा विकीर्ण करते हुए उस बाण ने आकाश के जिस अंश को अपना प्रयाण-पथ बनाया वहाँ भी व्योमचारी विद्यमान थे। और, जहाँ पर वराह के शरीर मे उस बाण ने प्रवेश किया वहाँ भी वे विद्यमान थे। परन्तु इन तीन भिन्न भिन्न स्थानों में विद्यमान व्योमचारियों ने उस बाण को एक ही साथ देखा। वह छूट कर आकाश-मार्ग से इतना शीघ्र वराह तक पहुँच गया कि एक निमेष की भी देरी न लगी। इसी से उसके छूटने, चलने और लक्ष्य-भेद करने की क्रिया, भिन्न भिन्न तीनों स्थानों के दर्शकों को, एक ही साथ दिखाई दी।

देवताओं के वैरी उस वराह का शरीर तमाल की तरह नीलवर्ण था। उसे छेद कर वह बाण इस तरह बाहर निकल गया मानों रुई के गाले की तरह इकट्ठे हुए तुषार के स्तूप को छेद कर वह निकला हो। इधर तो आकाशचारी सुर और गन्धर्व आदि उस बाण की लक्ष्य-भेद क्रिया देख कर भय-विह्वल हुए। उधर वह

पृथ्वी के भीतर इस प्रकार घुस कर लोप हो गया जिस प्रकार कि मगर और घड़ियाल आदि जलचर नदी की धारा के भीतर डुबकी लगा कर लोप हो जाते हैं।

जिस समय शिवजी का शर उनके पिनाक नामक धन्वा से छूटा ठीक उसी समय कपिध्वज अर्जुन का भी शर उनके गाण्डीव नामक धन्वा से छूट कर समस्त प्राणियो को व्यथित करता हुआ आकाश मे उत्थित हुआ। उसकी आकृति भी बहुत सुन्दर थी और उसकी गाँठों की रेखायें भी बहुत सुन्दर थीं। उसके फल का अग्र-भाग नख के समान शुभ्र और पैना था। वह कुपित हुए काल की तर्जनी उँगली के सदृश था। शस्त्र-विद्या मे अर्जुन बहुत ही निपुण थे। उनके जितने अस्त्र थे सभी दिव्य और श्रेष्ठ थे। उनका वह बाण भी वैसा ही था। जिस समय वह आकाश मे चला उस समय ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई जलती हुई उल्का जा रही हो। उसके प्रचण्ड प्रकाश से सारा वन प्रकाशित हो गया। जब वह बड़े वेग से अपने लक्ष्य पर गिरा तब संख्यातीत पक्षियों के पतन के समान बड़ा ही घोर रव हुआ। उस बाण के वेग का वर्णन नहीं किया जा सकता। किस समय वह शरासन से निकला, किस समय वह आकाश मे चला और किस प्रकार वह अपने लक्ष्य पर पहुँचा, यह कुछ भी न जाना जा सका। वेगाधिक्य के कारण उसकी लम्बाई और मुटाई बहुत ही कम हो गई सी मालूम हुई—उसकी आकृति बहुत ही छोटी दिखाई दी। लक्ष्य-भेद तो उसने किया; परन्तु किस वेग से वह अपने लक्ष्य पर पहुँचा, यह बताना कठिन काम है। मन का वेग जितना होता

है उतने ही वेग से वह लक्ष्य पर पहुँचा ? अथवा उससे भी अधिक वेग से ? अथवा लक्ष्य पर न गिर कर ही उसने उसका भेदन कर दिया ? इन सन्देहों की निवृत्ति कौन कर सकता है ?

वृषध्वज शङ्कर के सायक से वह वराह पहले ही छिद चुका था। इस कारण पुरुष का प्रयत्न जैसे दैव-प्रतिपादित कार्य का अनायास ही सम्पादन कर लेता है वैसे ही अर्जुन के उस विजय-साधक शर ने भी अपने अभीष्ट कार्य का सम्पादन अनायास ही कर लिया। प्रति-पक्षी वराह के शरीर को छेद कर निकल जाने मे वह सहज ही समर्थ हो गया।

अविवेक और व्यर्थ श्रम जिस प्रकार धन-वैभव को, क्षय और लाभ जैसे सेवको के अनुराग को, और अनीति तथा प्रमाद जैसे विजय-प्राप्ति की इच्छा रखनेवाले व्यक्ति को शिथिल कर देते हैं उसी तरह सदाशिव और पृथा-पुत्र अर्जुन के बाणों ने उस वराह को शिथिल कर दिया—उसे मुमूर्षु अवस्था को पहुँचा दिया। वह वेग-विरहित हो गया और चिरनिद्रा मे निमग्न हो जाने के पहले मोह-ग्रस्त होकर चारों तरफ़ चक्कर लगाने लगा। उस समय उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे सूर्य्य-मण्डल पृथ्वी पर पतित हो रहा हो और मही-मण्डल के सारे महीरुह मण्डलाकार घूम रहे हों। इस प्रकार कुछ देर तक घूर्णन करके वह पृथिवी पर गिर गया। उष्ण शोणित से उसका सारा शरीर भीग गया। उसकी डाढ़ों और खुरो के आघात से बड़ी बड़ी शिलायें चूर हो गईं। एक बार उसने कोप-पूर्ण दृष्टि से अर्जुन को देखा और बड़ी गम्भीर गर्जना करके मर गया।

अर्जुन के पास यद्यपि अनेक शर थे तथापि जो शर उन्होंने वराह पर छोड़ा था उसे उन्होंने उठा लेना चाहा। उन्होंने कहा—इस शर ने बड़े ही क्रूरकर्म्मा वराह को मारा है। अतएव ऐसे अच्छे शर को सादर पास रखना चाहिए। बात यह है कि जो सज्जन कृतज्ञ होते हैं—जिन्हें कृतज्ञता प्रकट करना आता है—वे उस व्यक्ति का अधिक आदर करते हैं जो कुछ काम करके दिखा देता है। भविष्यत् मे उपकार करने वाले व्यक्ति का वे उतना आदर नही करते। और भी शर उनके पास अवश्य थे। वे भी काम पड़ने पर, भविष्यत् मे, अर्जुन का अवश्य ही उपकार करते। परन्तु यह शर तो अपना निर्दिष्ट कार्य्य कर चुका था। इसीसे अर्जुन ने इस पर विशेष प्रेम प्रकट किया।

दुरशील दुर्जनों पर किया गया उपकार उनके हृदय मे नहीं ठहरता। वह झट बाहर हो जाता है। अर्जुन का पूर्वोक्त बाण भी, दुर्जनों पर किये गये उपकार ही की तरह, उस दुरात्मा वराह के शरीर मे न ठहर सका। वह निकल कर बाहर हो गया; और, गौरवशाली—अर्थात् भारी—होने के कारण अधोमुख होकर कुछ दूर पर जा गिरा। उसे उस दशा में पड़ा देख ऐसा अनुमान होने लगा जैसे पुरुषत्व-प्रकाशन करने ही के कारण लज्जावश उसने अपना सिर नीचा कर लिया हो। बात यह है कि गौरव शील पुरुष बल पौरुष प्रकट करके अपना सिर ऊँचा नहीं उठाते। बड़े बड़े काम करके भी वे नम्रता ही दिखाते हैं।

अर्जुन ने उस बाण को पड़ा देख अपनी दोनों आँखों से उसका दृढ़ालिङ्गन सा किया—उसे बड़े चाव से देखा। उस समय

उन्हें ऐसा ज्ञात हुआ जैसे वह शर अपनी चमकती हुई कांति को, अपनी उज्ज्वल कीर्त्ति ही के सदृश, धारण कर रहा है। उसके रङ्ग ढङ्ग से उन्हे ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई उससे यह पूछ रहा हो कि कहो, किस कौशल से तुमने अपना कार्य्य-सम्पादन किया?

अर्जुन ने उस बाण को उठा लिया। उसे हाथ मे लेते ही उन्होने सहसा देखा कि महादेवजी का सन्देश सुनाने के लिए आया हुआ एक धनुर्धारी किरात उनके सामने खडा है। राज-पुत्र अर्जुन को उसने उसी ढँग से प्रणाम किया जिस ढँग से कि किरात लोग बडे आदमियों को प्रणाम करते हैं। फिर उसने बडे ही विनीत भाव से, अभिनन्दनीय युक्तियों से पूर्ण, वचन कहना आरम्भ किया। वह बोला—

"आप का यह शान्त भाव पुकार पुकार कर कह रहा है कि आपका हृदय अत्यन्त ही उदार और अत्यन्त ही विनय-पूर्ण है। आपकी यह विशेष तेजोमयी तपस्या बता रही है कि आप विशुद्ध शास्त्रों का बहुत ही अच्छा ज्ञान रखते हैं। साथ ही आप की देव-तुल्य आकृति सूचित कर रही है कि आप ने किसी बड़े ही विमल वंश में जन्म लिया है। लौकिक-ऐश्वर्य्य-हीन तपस्वी होने पर भी आप अत्यन्त प्रभावशाली मालूम होते हैं। आप के गौरव को देख कर तो यही कहना पडता है कि आपके सामने बड़े से बड़े भूमि-पाल भी तुच्छ हैं। आप तो राजराजेश्वर से मालूम होते हैं। मुझे तो आप इस पर्वत के ऊपर सुरेश्वर ही के सदृश आधिपत्य करते हुए जान पडते हैं। आप के तेज, प्रताप और गौरव से यही सूचित होता है कि आप दूसरे इन्द्र हैं। आपके प्रभावातिशय की मैं कहाँ

तक प्रशंसा करूँ ! आप तपस्वी होकर भी सारी सम्पदाओं के आस्पद हैं। ऐसी एक भी सम्पदा नहीं जो आप को प्राप्त न हो सके। आप यद्यपि अकेले हैं तथापि आपकी शरीर-कान्ति से यही बोध होता है कि आप अकेले नहीं, किन्तु सचिवों से संयुक्त हैं। यदि आप मे सम्पदाओं की प्राप्ति की शक्ति न होती तो आप एकाकी होकर भी सचिव-सम्पन्न से न दिखाई देते। इस दशा मे यदि आप को विजय-वैभव प्राप्त हो तो कुछ भी आश्चर्य नहीं। आप को तो मुक्ति की प्राप्ति तक सुलभ है। अपवर्ग की प्राप्ति जिसे करतलामलकवत् हो रही है वह यदि विजय-लक्ष्मी प्राप्त कर ले तो विस्मय की कौन बात ? मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि रजोगुण और तमोगुण पर विजय पाने वाले आपके सदृश महापुरुषों के लिए त्रिभुवन में ऐसी एक भी अभीष्ट वस्तु नहीं जो प्राप्त न हो सके।

"आप तो इतने तेजस्वी हैं कि अपने तेज से सूर्य्य को भी लज्जित करते हैं। पराक्रमी भी आप अत्यधिक हैं। ऐसे तेजस्वी, ऐसे प्रतापी और ऐसे पराक्रमी पुरुष को कदापि कोई अनुचित कार्य्य न करना चाहिए। आपके हाथ में जो यह वराहभेदी शर है वह मेरे स्वामी का है। इसे लेने का साहस आप को न करना चाहिए। ऐसा अनुचित काम आप के योग्य नहीं। मनु आदि सत्पुरुषों ने शरीरधारियों के लिए यह सनातन नियम कर दिया है कि मनुष्य को सदाचार से कभी च्युत न होना चाहिए। सदाचार का पालन ही मनुष्य के लिए न्याय्य है। अनाचार से उसे सर्वदा दूर ही रहना चाहिए। दुराचरण करना भले आदमियों के लिए अत्यन्त गर्हित काम है। यदि आपके सदृश

महानुभाव ही सदाचार-पथ का अवलम्बन न करेंगे तो, आप ही कहिए, फिर और कौन उस मार्ग से गमन करेगा ? फिर तो सदाचार-सूचक पद सदा के लिए बन्द ही सा हो जायगा। देखिए, सुशीलता और विनय-सम्पन्नता के विषय मे महात्माओं की क्या सम्मति है। जिन्होने योग-शक्ति के प्रभाव से जन्म-मृत्यु को जीत लिया है—जो न कभी मरते ही हैं और न कभी उत्पन्न ही होते हैं—ऐसे पहुँचे हुए योगी भी अपनी कुमारावस्था से ही महा अनर्थकारी कुमार्ग से निवृत्त होने का उपदेश देने की इच्छा करते हैं और बहुत ही छोटे वय से शालीनता और सदाचरण-शीलता का अभ्यास करते हैं। विनय कोई ऐसी वैसी चीज़ नही। उसमे बड़े बड़े गुण हैं। उसके अभ्यास से बड़े बडे आत्मज्ञानी मुनिजन भी धर्म्म-सञ्चय करने में समर्थ होते हैं, सुख-प्राप्ति की इच्छा रखने वाले जन सम्पदाओं के सञ्चय मे समर्थ होते हैं; और बडे बड योगी मुक्ति की प्राप्ति मे समर्थ होते हैं। ऐसा अलौकिक गुणशाली विनय भला किसे न प्रिय होगा ? मेरी समझ मे तो एक भी ऐसा सत्पुरुष न होगा जो उससे प्रेम न रक्खे।

"हमारे प्रभु किरातपति का यह सायक ठीक आप ही के सायक के अनुरूप है। दोनो की आकृति मे कुछ भी भेद नहीं। अतएव, इसमें सन्देह नही कि आपने भूल से ही इसे अपना समझ कर उठा लिया है। इसी भ्रम के कारण आपको शरापहरण-रूप कुपथ मे पदार्पण करना पड़ा है। भूल से यदि आप इसे अपना न समझते तो कदापि न छूते। क्योंकि सदाचार-शील सज्जन कभी स्वप्न में भी दूसरे की वस्तु नहीं ग्रहण करते। फिर आप तो मनस्वी

हैं; आप तो उदार-हृदय हैं । इस कारण आप से ऐसा काम होना तो और भी असम्भव है । आप जैसे निस्पृह जनों के लिए ऐसा अनुचित काम करना केवल इसी कारण से निषिद्ध नहीं कि यह दूसरे की चीज़ है । किन्तु दूसरे के द्वारा प्रहार किये गये पशु को मारना आप जैसे मनस्वी के लिए बहुत बड़ी लज्जा की भी बात है। जिसे दूसरे ने मार दिया उसे फिर कोई महानुभाव मारने के लिए शर-सन्धान नहीं करता । दूसरों के द्वारा मारे गये पशु को मारना और फिर दूसरे का बाण भी चुपचाप ले लेना, बहुत ही निषिद्ध काम है। इस से अधिक लज्जा-जनक बात और क्या हो सकती है ? इसीसे मैं कहता हूँ कि निस्सन्देह भूल से ही आपने मेरे स्वामी का शर उठा लिया है ।

"मेरे महाराज को आप ऐसा वैसा न समझिए। वे महाप्रभुता-शाली और महाप्रतापी हैं । उनके विशद चरितों को उत्कण्ठापूर्वक सुन कर बड़े बड़े विद्वान् और बड़े बड़े महात्मा भी परमानन्दित होते हैं। परन्तु मेरे प्रभु को अपने मान-सम्मान और गौरव का इतना ख़याल है कि यदि हँसी दिल्लगी में भी कोई उनके चारु-चरितों का उल्लेख कर देता है तो वे सङ्कोच में पड़ जाते हैं । सच्चे महात्मा अपना उदार चरित सुनना तक नहीं सहन करते। अपनी प्रशंसा सुनने से जब मेरे स्वामी को इतना विराग है तब भला वे अपने ही मुख से अपनी बड़ाई कैसे कर सकते हैं। वे तो अपने मुँह अपनी बड़ाई करना वैसा ही निषिद्ध समझते हैं जैसे अपने मुँह से किसी और का दोष-प्रकाशन करना। परन्तु आवश्य-कता पड़ने पर कभी कभी अपने मुँह भी अपने गुण वर्णन करने

के लिए लोक मे लोग विवश होते हैं। कुछ अवसर ऐसे भी आ पडते हैं जब मनुष्य को, लाचार होकर, आवश्यक कार्य्य वश, अपनी प्रशसा आप ही करनी पड़ती है। ऐसा ही अवसर आज मेरे लिए उपस्थित हुआ है। ऐसे अवसर पर की गई आत्म-प्रशंसा दूषणीय नही। हॉ, अनुचित प्रार्थना या याचना के प्रसङ्ग से की गई प्रशंसा अवश्य ही दूषणीय है। यदि किसी प्रार्थना या याचना से सदाचार की मर्य्यादा का उल्लङ्घन न होता हो तो उससे कोई हानि नहीं। पर यदि सज्जनो की बॉधी हुई मर्य्यादा का अतिक्रमण होता हो तो मैं ऐसी प्रार्थना को धिक्कार-योग्य समझता हूँ। अपने स्वामी के विषय मे जो कुछ मैं इसके आगे आप से निवेदन करना चाहता हूँ उससे उस मर्य्यादा का रत्ती भर भी अतिक्रमण नही होता। अतएव उसके प्रसङ्ग से की गई प्रशंसा दोषपूर्ण नहीं। अच्छा, अब आप मतलब की बात सुनिए—

"यदि इस शूकर को मेरे सेनापति अपने अत्यन्त तीक्ष्ण एक ही बाण से झटपट ही न मार डालते तो यह आप पर आक्रमण करके आप की जो दशा करता उस अमङ्गल बात को मैं मुख से भी नहीं निकाल सकता। परमेश्वर करे, उस अशुभ वार्ता का लगाव कभी भविष्यत् मे भी आप से न हो। मारा गया वराह कोई साधारण हिंस्र पशु न था। उसका शरीर इन्द्र के वज्र के सदृश कठोर, अतएव अभेद्य, था। वेग भी उसमे दुर्वार था। डाढ़ें भी उसकी भयदायिनी थीं। ऐसे विकराल-रूप वराह को मेरे स्वामी को छोड़ कर एक ही शर-प्रहार से नाश करने मे और कौन समर्थ हो सकता है? और किसी मे तो इतनी शक्ति ही नही जो उसका बाल तक

बाँका कर सके। उस वराह ने आपके प्राण सङ्कट मे डाले थे। पर किरात-भूपति ने जब देखा कि आप बडी ही शोचनीय गति को प्राप्त होने वाले हैं तब उन्होंने दया करके आपका प्राण बचा लिया। अतएव उन्होंने आप पर बडा उपकार किया—उन्होने आपके साथ सच्चे मित्र के सदृश व्यवहार किया। ऐसे उपकार-कर्त्ता सुहृत्स्वरूप किरात-नायक के साथ विरोध करके कृतज्ञता का नाश करना आपको उचित नही। आप ही के सदृश सुशील और साधु-स्वभाव सज्जनों के हृदय मे कृतज्ञता का वास रहता है। यदि आप ही उसका तिरस्कार करेंगे तो वह बेचारी जायगी कहाँ? फिर तो वह ससार से समूल ही तिरोहित हो जायगी।

"आप अपने मन मे सोच देखिए। सम्पत्तियों की प्राप्ति से भी सच्चे मित्र की प्राप्ति अधिक मोल की है। सम्पत्तियाँ तो बहुत क्लेश उठाने पर भी बहुधा नहीं प्राप्त होतीं। प्राप्त होने पर भी उनकी रक्षा के लिए, न मालूम कितना, प्रयत्न करना पडता है। फिर भी वे अपनी चञ्चलता नहीं छोड़ती। क्योंकि वे तो परिणाम-विरस, अर्थात् स्वभाव ही से नश्वर, हैं। परन्तु सन्मित्र का यह हाल नहीं। वह एक ही बार उपकार करने से अनुरक्त हो जाता है। उसकी रक्षा के लिए क्लेश उठाने की आवश्यकता नहीं। वह तो उलटा अपने मित्र ही की रक्षा करता है। उसकी मित्रता का परिणाम भी सदा शुभ ही होता है। सच्चे मित्र की मित्रता का कभी नाश नहीं होता। इसीसे एक अच्छा मित्र सैकड़ों सम्पदाओं की भी अपेक्षा अच्छा है। इसके सिवा धन-वैभव रह सकता कितने दिन तक है? वह तो

अत्यन्त ही चञ्चल है। आज है तो कल नहीं। धन छीन लेने की तो बात ही नही, प्रबल शत्रु तो मनुष्य से पृथिवी तक छीन लेते हैं। परन्तु मित्र के विषय मे बातें चरितार्थ नही। इनमे से एक भी दोष उसमे नही। मेरे स्वामी किरातपति पर्वत के समान स्थिर हैं। वे बिना खोजे ही आपके पास दैवगति से स्वय ही प्राप्त हो गये हैं। अतएव ऐसे सच्चे सुहृद् की अवमानना करना आपको उचित नहीं। मैं यह अच्छी तरह जान गया हूँ कि विजय-प्राप्ति ही की इच्छा से आप तपस्या कर रहे हैं। क्योंकि मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा रखने वाले कभी आयुध नहीं धारण करते। इस दशा मे यदि आप मेरे स्वामी के साथ सुहृद्-भाव का बर्त्ताव करेंगे तो जिस फल-प्राप्ति के लिए आप तपश्चरण कर रहे हैं वह सम्पूर्ण-रूप से आपकी अङ्कशायिनी हो जायगी।

"आप मेरे स्वामी को अकिञ्चन किरात न समझिए। उनके अधिकार मे ऐसे ऐसे भूमि-खण्ड हैं जहाँ असंख्य अनमोल घोड़े और गजेन्द्र उत्पन्न होते हैं। रत्न-राशियो की भी उनके यहाँ कमी नहीं। आप यह शङ्का न करें कि यदि वे इतने वैभव-सम्पन्न हैं तो एक छोटे से सुवर्ण-शर के लिए क्यों इतना आग्रह करते हैं? बात यह है कि वे शर की परवा नहीं करते। परवा करते हैं वे अपनी मर्य्यादा की। वे केवल दूसरे का अधिक्षेप—दूसरे के द्वारा किया गया अपनी मर्य्यादा का अतिक्रम—नहीं सह सकते। सोने के एक शर से उनका कोई प्रयोजन सिद्ध नही हो सकता। बात यहाँ मानापमान की है, शर की नहीं। घमण्ड मे आकर यदि कोई उनसे ज़बरदस्ती तुच्छ धूलि का एक कण भी लेना चाहे तो महात्मा

किरातपति कभी देने वाले नहीं। इस दशा मे वे कुपित हुए बिना न रहेंगे। घमण्डी को उसकी उद्दण्डता का फल भी वे शीघ्र ही चखा देंगे। किन्तु यदि कोई नम्रता-पूर्वक उनसे प्रार्थना करे तो धन और वैभव की तो बात ही नहीं, वे अपने प्राण तक प्रसन्नता-पूर्वक दे सकते हैं। अतएव, आप ऐसे महानुभाव का बाण उनके हवाले करके उनके साथ रामचन्द्र और वानरेश सुग्रीव के सदृश सख्यभाव की स्थापना कीजिए। उनका और आपका सख्यभाव सर्वथा अनुरूप होगा। इस मित्रता से जैसे आप प्रसन्न होगे वैसे ही वे भी प्रसन्न होगे। परस्पर के आश्रय से यह मैत्री बहुत ही प्रशंसनीय होगी।

"आप अपने मन में यह न समझिएगा कि आपका बाण प्राप्त करने ही के लिए मैं इस तरह की बातें बना रहा हूँ और मिथ्या ही इस बाण को अपने स्वामी का बाण बता रहा हूँ। मैं ऐसा काम कदापि नहीं कर सकता। हम लोग ऐसा करने की इच्छा तक नहीं कर सकते। हम क्या इतने नीच हैं कि किसी धर्म्मात्मा तपस्वी का बाण अपना बता कर उसे ले लें? विश्वास कीजिए, हमारे पर्वत पर ऐसे ही और भी न मालूम कितने बाण हैं। वे बाण ऐसे वैसे नहीं; वज्रपाणि इन्द्र के शौर्य-सर्वस्व हैं। वे उसके वज्र से भी अधिक पराक्रमकारी हैं। एक बात मुझे और निवेदन करना है। वह यह कि यदि आपको बाण दरकार हों तो क्यों नहीं आप मेरे स्वामी से माँग लेते? आपके सदृश मित्र को, याचक के रूप में पाकर, बाण तो क्या वे सारी पृथिवी भी जीत कर आपको दे सकते हैं। यदि आप उनसे ऐसी प्रार्थना करेंगे तो आपकी प्रार्थना कभी

निष्फल न जायगी। क्योंकि एक तो वे बड़े ही विज्ञ और परोप-कारी हैं। दूसरे क्लेश-भोगी याचकों की याञ्चा भंग करने से जो दुःख होता है उसका उन्हे पूरा पूरा अनुभव है। अतएव यह कभी असम्भव ही नही कि मॉगने पर आपका मनोरथ सफल न हो। याचना निष्फल जाने के विचार को तो कभी आप अपने मन मे स्थान ही न दीजिए।

"दूसरे की चीज़ बिना किसी विघ्न-बाधा के दो ही प्रकार से ली जा सकती है। एक तो बल-पूर्वक, दूसरे प्रेम-पूर्वक। जिस में अधिक बल होता है वह अपनी इच्छित वस्तु दूसरों से जबर-दस्ती छीन लेता है। इसी तरह अविचल प्रेम होने से प्रेमी जन भी अपने प्रेमपात्र की वस्तु यथेच्छ ले सकता है। परन्तु यदि इन दो में से एक भी कारण न हुआ तो अपने से अधिक बलवान् की वस्तु ले लेने की इच्छा धारण करने से अवश्य ही आपत्तिग्रस्त होना पड़ता है। आप विश्वास रखिए, मेरे स्वामी धनुर्विद्या के पूरे पण्डित हैं। बल-पराक्रम में उनकी बराबरी करने वाला मुझे तो कोई दिखाई ही नहीं पडता। बड़े बड़े नामी योद्धा और अस्त्र-विद्या के ज्ञाता उनका सामना करने की इच्छा तक अपने मन मे नही कर सकते। इस दशा में सामान्य तपस्वियों की भला क्या कथा? वे बेचारे उनसे कोई वस्तु बलपूर्वक कैसे छीन सकते हैं? संसार में जितने तपस्वी हैं उनमे से, एकमात्र परशुराम को छोड कर, धनुर्वेद का जानने वाला ऐसा और कौन तपस्वी है जिसके भुजबल की कुछ भी ख्याति हो? जामदग्न्य के सिवा तपस्वियो मे भुजबल और आयुध-सञ्चालन की शक्ति कहाँ? आप भी तपस्वी ही हैं। अतएव जब आप मेरे

स्वामी पर बल-प्रयोग करके पार नहीं पा सकते तब उनसे मित्रता करना ही आपको उचित है। आप इस बात की चिन्ता न कीजिए कि आपने हमारा वराह मार कर हमारा बाण ले लिया है। ये दोनों बातें अपराध अवश्य हैं। परन्तु मेरे स्वामी ने आपका वराह-वध-रूपी अपराध क्षमा कर दिया है। क्योंकि उसे आपने मुनिजन-सुलभ चपलतावश भूल से किया है। वराह पर आपने भ्रमवश ही बाण चलाया और जो बात भ्रम या भूल से हो जाती है उसकी गणना दोष मे नहीं। आपका एक दोष तो, क्षम्य होने के कारण, क्षमा कर ही दिया गया। रहा दूसरा, सो उसका निवारण सर्वथा आप ही के हाथ में है। उस शर-ग्रहणरूप दूसरे दोष से आपको बचना ही उचित है। दूसरे की चीज़ ले लेना आपके सदृश सद्वंश-जात और मुनि-वेशधारी तपस्वी के लिए सर्वथा निषिद्ध है। ऐसा अनुचित काम न आपके वंश ही की शोभावर्द्धक है, न आपके इस जटा-वल्कलधारी वेश ही की शोभा का वर्द्धक है, और न इस तपश्चर्य्या ही की शोभा का वर्द्धक है। याद रखिए, कुविचारशील और कुपथगामी पुरुष को दोनों लोकों को नाश करने वाली आपत्ति प्राप्त हुए बिना नहीं रहती। ऐसे मनुष्य इस लोक मे भी आपत्तिग्रस्त होते हैं और उस लोक मे भी। उनके लोक, परलोक दोनों ही बिगड़ते हैं।

"अच्छा, आप ही कहिए, उस शूकर पर बाण चलाने की आपको क्या पड़ी थी? उस पर शर सन्धान आपने किया ही क्यों? उसे मार कर उसके मांस से पितरों को पिण्डदान करना तो आप चाहते ही न थे। इस निर्जन वन में आपको पितृ-यज्ञ का

अनुष्ठान थोड़े ही करना था। अच्छा, पितृ-यज्ञ न सही; देव-यज्ञ भी तो आपको न करना था। न देव-कार्य ही था, न पितृ-कार्य ही। आपने व्यर्थ ही वराह को बाण मार दिया! यदि वह आपकी तरफ़ जा रहा था तो ज़रा हट जाते। वह निकल जाता। क्यों बिना कारण ही उस पर शराघात किया? आप तो सज्जन मालूम होते हैं। ऐसी चपलता आपको शोभा नहीं देती। ऐसा दुर्व्यवहार आप छोड़ दीजिए। ऐसी बाते एक दो बार चाहे कोई भले ही सह ले; सदा नहीं सह सकता। प्रलय-कालीन पवन जैसे अगाध वारिधियों को भी क्षुब्ध कर देता है वैसे ही चञ्चल स्वभाव वाले अकार्यकारी मनुष्यो का कार्य गुरु जनो को भी धैर्यच्युत करके उन्हें क्षुब्ध कर देता है। मैं आपको सावधान किये देता हूँ, आप मेरे महीपति को असभ्य पहाडी मनुष्य समझ कर उनकी अवज्ञा कदापि न कीजिएगा। वे अस्त्र-विद्या के बहुत बडे ज्ञाता हैं। ऐसे प्रतापी और ऐसे धनुर्वेद-विद्या-विशारद मेरे स्वामी इस पहाड पर इन्द्र के कहने से रहते हैं। इन्द्र के प्रणयानुरोध से ही पृथिवी की रक्षा करने के लिए उन्होने शैल-वास स्वीकार किया है; अन्यथा यह जगह उनके रहने योग्य नहीं। यह प्रणय ही की महिमा है जिस ने उन्हे यहाँ रहने के लिए विवश किया है।

"मेरे सेनापति का कहना है कि उस तपस्वी ने वराह का वध करके जो अपराध किया है उसे तो मैंने क्षमा कर दिया। क्योंकि वह काम उससे बेजाने हो गया है। परन्तु दूसरा अपराध वैसा नहीं। वह नहीं क्षमा किया जा सकता। वह तो जान-बूझ कर किया गया है।

"अतएव आप अब कृपापूर्वक इस बाण को मेरे हवाले करके मेरे स्वामी से मैत्री कर लीजिए। आप यदि मेरे पूज्य प्रभु के मित्र हो जायँगे तो आपको फिर किसी पदार्थ की कमी न रहेगी। सारी सम्पदायें आपको आपकी इच्छा के अनुसार ही प्राप्त हो सकेगी। साधुओं का समागम (महात्माओं के साथ सख्य-स्थापन) अनेक फलो का उत्पादक है। देखिए, उससे आत्महित होता है, विनय आदि सद्गुणो की उत्पत्ति होती है और सारी आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं। ऐसा साधु-समागम भला किसे वाञ्छनीय न होगा? कौन ऐसा मूढ है जो ऐसे अनमोल फलों के दाता सत्-सङ्गम की प्राप्ति की इच्छा न करे?

"उपसंहार में मुझे बहुत ही थोडा निवेदन करना है। उन दूरस्थ घने वृक्षो की तरफ आंख उठाइए। देखिए, वहाँ मेरे स्वामी, किरातपति, बहुत बडी सेना लिए हुए ठहरे हैं। वह सेना खाली हाथ नहीं, तरह तरह के तीक्ष्ण आयुधों से ख़ूब सजी हुई है। कहिए, सेना से समन्वित, मेरे स्वामी—सर्पों से सयुक्त तरङ्ग-माला-कुल सिन्धु के सदृश—मालूम होते हैं या नही? क्षुब्ध हुआ सागर जिस तरह बांध के कारण रुका रहता है उसी तरह वे समयरूपी बाँध टूटने की प्रतीक्षा मे रुके हुए हैं। आशा है, आप इतने ही से मेरा मतलब अच्छी तरह समझ जायँगे। हा, मैं किरातपति महाराज के हाथ में धारण किये गये प्रकाण्ड धनुष की महिमा भी आपको बता देना चाहता हूँ। उस पर शेषनाग के सदृश मोटी प्रत्यञ्चा चढ़ी हुई है। इन्द्रध्वज की शोभा उसके सामने कोई चीज़ ही नही। ऐसे अपूर्व धनुर्धारी और

स्थिरतापूर्ण मेरे स्वामी को आप अनुकूल कर लीजिए। उन्हे प्रसन्न करने की चेष्टा कीजिए। विश्वास कीजिए, उनसे आपका सख्य हो जाने से आपके सारे मनोरथ अनायास ही सफल हो जायँगे।"

---

# चौदहवाँ सर्ग।

समुद्र के सलिल-समूह की टक्करें लगने से पर्वत जैसे हिल जाता है उसी तरह किरात के बड़े ही उद्धत वचन सुन कर अर्जुन का हृदय भी हिल उठा। उसकी बातो से उनके हृदय पर चोट तो ज़रूर लगी, परन्तु धैर्य्य को उन्होंने हाथ से न जाने दिया। कुपित होने पर भी उन्होने अपना चित्त विकार-विरहित ही बना रक्खा। साधु-जनो का अन्त.करण सचमुच ही दुर्ज्ञेय होता है। उसकी थाह मिलना बहुत कठिन है।

किरात की बातों से अर्जुन को शत्रु का सारा अभिप्राय मालूम हो गया। क्योंकि वाणी के विस्तार और उसके तत्व-ज्ञान में वे बहुत ही निपुण थे। गूढ़ से भी गूढ बात उनकी समझ मे आ जाती थी। फिर भला शत्रु के दूत के मुख से निकले हुए व्यङ्ग-पूर्ण वचनों का आशय उनसे कैसे छिपा रहता? किरात की बातो का विचार करके उन्होंने समयोचित उत्तर देना आरम्भ किया। परन्तु उन्होंने अपने उत्तर मे एक भी बात ऐसी न कही जिससे यह सूचित होता कि वे कुपित हो गये हैं, अथवा उनके हृदय में क्षोभ उत्पन्न हो गया है। वे इस प्रकार शान्तिपूर्वक गम्भीर वचन बोले—

"स्पष्ट-वर्ण-रूपी आभरण धारण करने वाली, सुनने में सुख देने वाली, शत्रुओं के भी हृदय को प्रसन्न करने वाली, सुन्दर और गम्भीर पदों से परिपूर्ण, वाणी की प्राप्ति ससार मे अत्यन्त दुर्लभ है। जिन्होने यथेष्ट पुण्य-सम्पादन नही किया उन्हें ऐसी वाणी कदापि प्राप्त नही होती। पुण्यात्मा पुरुषो ही को ऐसी गुणवती वाणी मिलने का सौभाग्य प्राप्त होता है। तुम धन्य हो, क्योंकि तुम्हारी वाणी मे पूर्वोक्त सभी गुण विद्यमान हैं। जो लोग अपने मन का भाव वाणी द्वारा अच्छी तरह प्रकट कर सकते हैं वही महा-जनो की मण्डली मे सबसे अधिक प्रतिष्ठापात्र समझे जाते हैं। ऐसे प्रतिष्ठित पुरुषो मे भी कुछ ही निपुण-मति महानुभाव अपनी वाणी द्वारा गुरु और गभीर अर्थों का प्रकाशन करने मे समर्थ होते हैं। पहले तो मन का भाव अच्छी तरह प्रकट कर सकना ही कठिन काम है। फिर गभीर अर्थों की योजना तो और भी कठिन है। बात करने मे जो बहुत ही निपुण होते हैं वही निगूढ़ार्थ-गर्भित मनोहारी वार्तालाप कर सकते हैं। कुछ विद्वानों की सम्मति है कि गभीर अर्थों से भरी हुई वाणी बोलना ही प्रशंसा की बात है। पर कुछ की यह सम्मति है कि गभीर अर्थों की योजना विशेष प्रशसा की बात नही। वक्ता का सबसे अधिक प्रशंसनीय गुण शब्द-शुद्धि ही है। सच तो यह है कि प्रत्येक पुरुष की रुचि भिन्न भिन्न प्रकार की होती है। इस दशा मे ऐसी वाणी बहुत ही दुर्लभ है जो सभी को एक सी मनोहारिणी मालूम हो।

"हे वनेचर! कार्य्यनिर्वाह करने का गुण तुममे बहुत बड़ा है। इसी से तुम्हारे स्वामी ने यह काम तुम्हें सौंपा है। तुमने अपना

कभी सिद्ध होने की नहीं ? यदि तुम सच्चे स्वामिभक्त हो तो तुम्हें अपने स्वामी को अवश्य ही सत्परामर्श देना चाहिए था। क्योंकि जो सेवक अपने स्वामी का हितचिन्तक होता है और उसके सुख-दु.ख को अपना सुख-दु.ख समझता है वह उसे सदा हितकारक ही काम करने की प्रेरणा करता है; अहितकारक काम करने की नहीं।

"छुटा हुआ बाण पशु के शरीर से निकल कर किसी के हाथ मे नही आ जाता। वह तो कही न कही गिर कर अवश्य ही अदृश्य हो जाता है। ऐसे बाण को पहाड पर कहीं इधर उधर ढूँढ़ना चाहिए। भले आदमी यही करते हैं। यही सज्जनोचित मार्ग है और ऐसे मार्ग का अनुसरण न करना आपदाओं को स्वय ही आह्वान करना है। जो शर मेरे हाथ मे है उसे अपना बताना सज्जनोचित व्यवहार का सर्वथा अतिक्रमण कर जाना है। देखो, खाण्डव वन जलाने की इच्छा रखने वाले अग्नि देव ने मुझे असंख्य शर उपहार मे दिये हैं। अतएव मैं देवताओं का भी बाण लेने की इच्छा नहीं रखता। फिर तुम्हारे सदृश किरात का बाण लेने की मैं इच्छा रक्खूँगा, यह तो सर्वथा ही असम्भव है। यदि तुम सज्जनों की चलाई हुई रीति को प्रमाण मानते हो और यदि तुम भले आदमियों के सदृश व्यवहार करना उचित समझते हो तो, तुम्हारा रत्ती भर भी अपराध किये बिना ही, मेरा तिरस्कार तुमने क्यों किया ? तुम्हारा यह आचरण तो सज्जनों के आचरण के बिलकुल ही विरुद्ध है। क्योकि सज्जन कभी दूसरों की निन्दा और दूसरों पर व्यर्थ दोषारोपण नहीं करते। यदि किसी में उन्हें

दोष भी देख पड़ते हैं तो दोषों का उल्लेख न करके वे गुणों ही का उल्लेख करते हैं। परन्तु असज्जनों की बात इसकी उलटी है। वे विद्यमान गुणों को तो छिपाते हैं और अविद्यमान दोषों का व्यर्थ आरोपण करके दूसरों पर अकारण ही आक्रमण करते हैं। ऐसा करने में यद्यपि वे अपने हृदय का आन्तरिक भाव छिपा डालना चाहते हैं तथापि उनका वचनरूपी तीक्ष्ण खड्ग उनके हृदय के दो टुकड़े से करके उनके दुर्भाव को प्रकाशित ही कर देता है।

"अच्छा, यह सुअर तुम्हारे स्वामी का कैसे हो गया? वन में सैकड़ों, हज़ारों, पशु विचरण करते हैं। वे क्या किसी व्यक्ति-विशेष की सम्पत्ति हैं? बलपूर्वक जो उन्हें मार गिरावे वही उन्हें प्रसन्नतापूर्वक ले जाय। तुम्हारे राजा को चाहिए कि वह इन पशुओं के सम्बन्ध में अपने झूठे स्वामित्व का अभिमान छोड़ दे। ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि इस तरह का स्वत्व-सम्बन्धी अभिमान भी बना रहे और सम्पत्ति भी प्राप्त हो जाय। एक ही साथ इन दोनों बातों का होना कदापि सम्भव नहीं। जो चीज़ अपनी नहीं उसे अपनी कह कर कोई उसे प्राप्त नहीं कर सकता।

"महामुनि व्यास ने मुझे आज्ञा दी है कि जब तक मैं तपश्चरण करूँ तब तक किसी को भी अपने पास से न निकलने दूँ। अतएव इस जगह से दूसरे को निकल जाने की आज्ञा देने से मेरा व्रत-भङ्ग हो जाता। इसी से मैंने इस सुअर को मार डाला। यह तो मुझे ही मारने के लिए आ रहा था। इस कारण इसे मारना पाप नहीं। व्रत की रक्षा करने से साधुजनों को दोष नहीं स्पर्श करता। व्रत की रक्षा के लिए कोई काम करना उनके

लिए अनुचित नहीं, सर्वथा उचित ही है। ऐसा काम तो उनके लिए भूषण है, दूषण नहीं।

"तुम्हारे स्वामी किरातों के राजा हो तो हो। किरात कोई बड़े आदमी नहीं, वे तो केवल व्याध हैं। व्याध अपना पेट पालने के लिए जङ्गली जानवरों का शिकार किया ही करते हैं। उनके इस उदर-पूर्ति-सम्बन्धी कर्म से तपस्वियों का कुछ उपकार हो सकता है, यह तुमने अनोखी बात कही। यह कैसा उपकार है, यह तो मेरी समझ ही मे नहीं आता। अच्छा, यदि तुम्हारे स्वामी ने मुझ पर कृपा करके ही इस हिंस्र पशु को मारा है तो यही सही। इस विषय मे व्यर्थ के झगड़े से लाभ ही क्या? असल बात तो यह है कि मैंने और तुम्हारे स्वामी ने, दोनों ही ने, एक ही साथ इसे बाण-विद्ध किया है। किसने पहले और किसने पीछे विद्ध किया, इसका तुम्हारे पास क्या प्रमाण? तुमने जाना कैसे कि मैंने इसे पहले नहीं मारा, तुम्हारे स्वामी ही ने मारा है? मैं तो समझता हूँ कि मेरे ही बाण से यह मरा है। इस दशा में तुमने जो यह कहा कि दूसरे के मारे हुए पशु पर बाण चलाना लज्जा की बात है, सो मुझ पर नहीं, किन्तु तुम्हारे ही स्वामी पर घटित होता है। सुनो, तपस्वी यदि निरस्त्र हो और उसे मारने के इरादे से उस पर कोई जङ्गली जानवर आक्रमण करने के लिए दौड़े तो उस पर स्वाभाविक दया दिखाना महात्माओं का कर्त्तव्य ही है। इस बात को मैं मानता हूँ। परन्तु मैं तो वैसा तपस्वी नहीं। मेरा शरासन देखो! इस पर प्रत्यंचा भी चढ़ी है और शर भी लगा है! ऐसे शस्त्रधारी तपस्वी के ऊपर तुम्हारे

स्वामी को दया आई, इस बात का विश्वास भला कोई कैसे कर सकता है ! अच्छा, ज़रा देर के लिए मैं मान लेता हूँ कि तुम्हारे किरात-पति ने मेरी रक्षा के लिए ही बाण चलाया था। तो भला उसका फल उन्होंने क्या सोचा था ? यही न, कि वराह मारा जाय और उसके मरने से मेरे प्राण बचें ? असल मतलब उनका यही था न ? इस दशा मे यदि वराह को मैंने ही मार दिया तो उनकी हानि ही कौन सी हुई ? इससे तो तुम्हारे सेनापति को और भी अधिक सन्तुष्ट होना चाहिए। वे मुझे बचाना चाहते थे। पर मैंने स्वयं ही अपने को बचा लिया। इसमे उन्हे एतराज़ क्यो ? इससे तो उन्हें उलटा अपने को कृतार्थ ही समझना चाहिए।

"तुमने मुझ से यह कहा कि यदि मुझे बाण दरकार है तो मैं तुम्हारे राजा से माँग सकता हूँ। परन्तु तुम्हारी यह सलाह युक्ति-सङ्गत नहीं। मान-धनी मनुष्य कभी ऐसा नहीं कर सकते। किसी वस्तु को बलपूर्वक ग्रहण कर लेने की शक्ति रखने वाले पुरुष भी उसके लिए क्या कभी याचना करते हैं ? याचना में दीनता प्रकट करनी पड़ती है। और, मनस्वी मनुष्यों को दीनता दिखाने से मलिन हुई सम्पत्ति कभी प्रिय नहीं हो सकती।

"तुम्हारे राजा मुझ पर मिथ्या अभियोग लगाते हैं। जो शर उन्हें और किसी तरह नहीं प्राप्त हो सकता उसे वे बलपूर्वक प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं। इस तरह की इच्छा का फल अच्छा नहीं होता। ऐसी विरोधिनी चेष्टा बहुत ही अहितकारिणी है। परन्तु दैवगति बड़ी विचित्र है। जब मनुष्य का विनाश-काल

निकट आ जाता है तब उसकी मति मोहित हो जाती है और अनीति की भयङ्करता विदित होने पर भी वह अन्याय कर बैठता है। मेरे पास खड्ग है, कवच है, बहुत बडा धनुष है, सैकडों शर भी हैं। उनमे से जो वस्तु तुम्हारे स्वामी को पसन्द हो उसे माँग कर वही क्यो न मुझ से ले ले? मैं देने के लिए तैयार हूँ। परन्तु यदि वे कुछ बल रखते हों तो फिर माँगने जाँचने की जरूरत नहीं। क्योकि शक्तिसम्पन्न पुरुषो के लिए बल-पूर्वक दूसरे की चीज़ ले लेना दोष की बात नही। वे आवे और मुझ से यह शर बल-पूर्वक छीन ले जायँ।

"तुमने मुझे यह भी सलाह दी कि मैं तुम्हारे स्वामी से सख्य कर लूँ। भला जो राजा निरीह तपस्वियों से भी यथेच्छ मत्सर करता है—जो उनकी तपस्या मे व्यर्थ ही विघ्न डालता है —वह किस प्रकार मित्रता करने योग्य माना जा सकता है? किसी अच्छी वस्तु की प्राप्ति के लिए जो साधना कर रहा हो उसके विषय मे भी विरुद्ध बुद्धि धारण करने वाला पुरुष तो स्वभाव ही से साधुओं का मित्र नही, शत्रु है। उससे भी भला कहीं मित्रता की जाती है! वर्णाश्रम की रक्षा करने वाला मुझ सदृश क्षत्रिय कहाँ और जातिहीन पशु हिंसक व्याध कहाँ! दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर! निकृष्टों के साथ कहो उत्कृष्ट लोग भी मित्रता कर सकते हैं? गजो को क्या कभी गीदड़ों का साथी बनते किसी ने देखा है?

"यदि कोई अज्ञ, जड अथवा मोहमुग्ध नीच मनुष्य किसी योग्य पुरुष की अवज्ञा करे तो उससे विशेष हानि नहीं। ऐसी

अवज्ञा का उत्तर एक मात्र उपेक्षा है। ऐसी अवज्ञा से बड़े आदमियों की महत्ता नष्ट नहीं होती। किन्तु कुल, पौरुष और वीरता में जो समान हों उनमे से यदि किसी ने किसी की अवज्ञा की तो उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। क्योंकि ऐसी अवज्ञा का नाम है—तिरस्कार। और आत्म-गौरव का अभिमान रखने वाले पुरुष तिरस्कार को कदापि नही सह सकते।

"कोई भी उच्च-हृदय मनुष्य जब किसी नीच मनुष्य के साथ विग्रह करता है तब विग्रह का आरम्भ होते ही उसकी सारी कीर्ति मिट्टी मे मिल जाती है। और, जब वह ऐसे के साथ मित्रता करता है तब उसके सारे गुण तत्काल ही दूषित हो जाते हैं। छोटों के साथ विरोध करने से भी हानि होती है और मैत्री करने से भी। अतएव दोनों तरह अपनी ही मर्य्यादा-हानि समझ कर विचारशील व्यक्ति नीच जनो की सदा ही उपेक्षा करते हैं। अवज्ञा-ज्ञापन-पूर्वक वे उनसे सदा ही दूर रहते हैं।

"तुम्हारे स्वामी को एक मृगघाती तुच्छ व्याध समझ कर ही मैंने तुम्हारे मुख से निकले हुए उनके आक्षेपपूर्ण परुष वचन सह लिये हैं। इसका एक मात्र कारण मेरी उपेक्षा है। तथापि, यदि वे शर छीनने के लिए आवेगे तो भीषण भुजङ्ग की शिरोमणि छीनने की इच्छा रखने वाले की जो गति होती है वही गति उनकी भी होगी। इसमें कुछ भी सन्देह नही। चलो, जाकर यही बात उनसे कह दो।"

अर्जुन के मुख से ऐसी कड़ी कड़ी बातें सुन कर उस किरात ने बहुत कुछ तर्जन-गर्जन किया। उसने कहा—मेरे स्वामी तुम्हे

एक क्षण में जीत कर तुम्हारे इस घमण्ड को चूर कर देंगे। यह कह कर वह वहाँ से लौट पडा और सेना से समन्वित, प्रसन्न-वदन, पार्वती-पति के पास आकर उपस्थित हुआ।

किरात के मुख से अर्जुन के आक्षेप-पूर्ण वचन सुन कर किरातों के सेनापति ने तत्काल ही अपनी सेना को चल देने की आज्ञा दे दी। महा घनघोर शब्द करती हुई वह चल पड़ी। प्रलय-काल की प्रचण्ड-वायु की चोट खाकर महासागर की लहरें जैसे ऊँची उठती हुई आगे को बढ़ती हैं उसी तरह वह सेना भी घोर नाद करती हुई आगे बढ़ी। उस समय सुगन्धिपूर्ण समीर बड़े वेग से बहने लगी। उसके कारण किरात-पति की सेना के रथों की पताकायें और भी अधिक फहराने लगीं। जल की घनी बूँदों से सनी हुई वह शीतल समीर सेना के आगे आगे चली। विजय की अनुकूलता करने वाली उस समीर के इस तरह चलने से ऐसा मालूम होने लगा जैसे किरात-पति की सेना और अर्जुन का युद्ध देखने के लिए उसे जल्दी हो रही हो।

इधर तो चारणों और वन्दीजनों ने जय-जयकार के तार बाँध दिये, उधर सेना के विकट वीरों ने सिंह-नाद करना आरम्भ कर दिया। इस जय-जयकार और सिंह नाद के घोर रव से मिश्रित होकर, शरासनों की प्रत्यञ्चाओं की टङ्कार और ढालों की खड़-खडाहट की ध्वनि दूनी-चौगुनी हो गई। इस बढ़ी हुई घनघोर ध्वनि से पर्वत की सारी गुहायें परिपूर्ण हो गईं। फिर भी वह वहाँ न समाई। अतएव भूतल को कँपाती हुई वह चारों दिशाओं में फैल गई।

किरातों की सेना के शस्त्र-समूह बड़े ही तीक्ष्ण और बड़े ही भीषण थे। जिस समय उन शस्त्रों पर पड़ी हुई सूर्य्य की किरणें प्रतिफलित हुईं उस समय वे दिगदिगन्त को प्रदीप्त सी करती हुई बहुत ही प्रभापूर्ण दिखाई दीं।

शिवजी अपने किरातरूपी गणों की सेना के बीच में हो लिये। वे इतने विशाल-काय और इतने ऊँचे पूरे थे कि मालूम होता था मानो वे सारे गणों के बहुत ऊपर अवस्थान कर रहे हैं। यद्यपि वे सेना के बीच में थे तथापि उनके दाहने-बायें का सभी सैन्य-समूह उनकी महिमा से व्याप्त हुआ सा मालूम होता था। उनकी छाती इतनी चौड़ी थी कि उनके सामने का सारा दिग्देश उससे आच्छादित सा था। शिवजी ने इस प्रकार सेना के बीच प्रस्थान करके अपने धनुष को ख़ूब खींच कर उसे मण्डलाकार कर दिया।

शिवजी के किरात-वेशधारी गण बड़े ही विक्रमशाली थे। स्थान चाहे सुगम हो चाहे दुर्गम, वे कहीं न रुकते थे। धड़ाधड़ पार करते चले जा रहे थे। चलने वाले भी वे ख़ूब ही थे। वे सभी, एक दूसरे से स्पर्धा सी करते हुए, बड़े वेग से जा रहे थे। प्रत्येक गण यही चाहता था कि मैं ही आगे निकल जाऊँ। उनके उस बहुत बड़े समूह से सारा वन रत्ती रत्ती रूँध सा गया; व्याकुल सा हो गया; उसकी साँस बन्द सी हो गई।

उस असंख्य किरात-सैन्य से बड़े बड़े खड्ड, पेड़ों की कुञ्जें और नदी-तट छिप गये। चारों तरफ़ सेना ही सेना दिखाई देने लगी। जहाँ से सेना चली वहाँ की पृथ्वी ऊँची सी हो गई

और, सेना के आगे निकल जाने पर, वह उसी क्षण नीचे धँस सी गई।

प्रमथ-गणों की विशाल जङ्घाओं की रगड़ से बड़ी बड़ी लताओं के जाल छिन्न भिन्न हो गये। उनके गमन-वेग के झोंके खा खा कर बड़े बड़े शाल और चन्दन के वृक्ष हिल गये। उन्होंने उस वन की दुर्दशा कर डाली। उसके सारे पेड़-पौधे और लता-मंडप उलट-पुलट गये। इस दशा में उसे देख कर ऐसा मालूम होने लगा जैसे वह सारा का सारा वन किसी ने उलट दिया हो।

सेना का कोलाहल कान में पड़ते ही अर्जुन सजग हो गये। उन्हें उस व्योम-व्यापी घोर रव का कारण मालूम हो गया। तपस्या के कारण यद्यपि उनका शरीर कृश था तथापि शक्ति उनकी कम न हुई थी। उनका बल और उनका पौरुष पूर्ववत् ही अक्षुण्ण था। वे उस समय मदस्राव होने के कारण क्षीण-देह गजेन्द्र के सदृश थे। और गजेन्द्र भी कैसा? जिसकी बराबरी करने वाला और कोई गज संसार में न हो। उस समय उन्हें देख कर ऐसा मालूम होने लगा जैसे समस्त भूमिपालों का नाश करने के लिए दिशाओं को जलाने की इच्छा से प्रज्वलित हुआ अग्नि विराजमान हो।

विजय-प्राप्ति की इच्छा से उन्होंने निषङ्ग से, अनुकूल मित्रवत्, एक बाण सहज ही निकाल कर हाथ में ले लिया। फिर उन्होंने बाण वापस न पाने के कारण खिन्न हुए उस सेनासमुद्र की ओर धीरे से अपनी दृष्टि फेरी। उसे उन्होंने अनादर की दृष्टि से देखा।

अर्जुन का धैर्य्य जैसा स्थिर और आपदाओं का सर्वथा सामना करने मे जैसा समर्थ था वैसा ही उनका शरासन भी था। विपत्ति के समय जिस तरह उनका धैर्य्य कभी न छूटता था उसी तरह युद्ध मे प्राप्त हुई विपत्तियाँ को दूर करने मे उनका शरासन भी कभी पश्चात्पद न होता था। अतएव, बाण हाथ मे लेने के उपरान्त उन्होने अपने अविचल धैर्य्य ही के सदृश अपना गाण्डीव नामक धनुष भी उठा लिया। ऐसे दुर्धर प्रसङ्ग मे भी उनका चित्त ज़रा भी विकृत न हुआ। तथापि, निर्विकार होने पर भी, उनका अति-क्रमण करना—उनका पराभव करना—औरों के लिए सर्वथा असम्भव था। उस समय उनका विकारहीन वीर-भाव निवात, अतएव निष्कम्प, सागर के सदृश मालूम होने लगा। उनके सामने ही, कुछ दूर पर, वह वराहरूपी दानव मरा पड़ा था। उसका वध करने के कारण उन्होंने, उस समय, मानों यम की सी द्युति धारण की थी। यज्ञ का अनुष्ठान होने पर ऋत्विज ब्राह्मण पशुपति रुद्र का भी आह्वान करते हैं। अतएव अर्जुन ऐसे मालूम होते थे जैसे वे साक्षात् पिनाक-पाणि रुद्र हों और सामने पड़ा हुआ मृत-वराह यज्ञ-पशु हो।

अर्जुन में असीम धैर्य्य था। अन्य सभी पुरुषों के गौरव को चकनाचूर करके उन्होंने अपने को गभीरता के सबसे ऊँचे पद पर पहुँचा दिया था। अतएव, घनी और लम्बी लम्बी लताओं से परि-वेष्टित वनों के आधिक्य के कारण दुरवगाही उत्तमाचल पर्वत की तरह वे मालूम होते थे। घने वनों के कारण जिस प्रकार उत्तमाचल पर्वत के भीतर सदा अन्धकार रहता है; कोई वहाँ नहीं जा सकता और

चला भी जाय ते वहाँ का ठीक ठीक हाल नही जान सकता, उसी तरह महा धैर्य्यशाली और परम-गभीर अर्जुन के हृदय मे उस समय कौन कौन से भाव उदित हो रहे थे, यह भी अच्छी तरह जान लेना असम्भव सा था ।

अर्जुन के कन्धे बहुत बड़े बैल के कन्धो के सदृश थे । उनकी गर्दन अत्यन्त मोटी थी । उनकी छाती बहुत बड़ी शिला के सदृश कठिन थी । दुष्टो के बोझ से दबी हुई पृथ्वी का उद्धार करने के लिए वे समुत्सुक थे । इस कारण वे महासागर मे डूबी हुई पृथ्वी के उद्धारसाधन की इच्छा रखने वाले महा-वराह के सदृश थे । उनका वर्ण मरकत-मणि के सदृश साँवला था । उनकी उदार आकृति इतनी तेजस्विनी थी कि उन्होने सारे देहधारियों को अपनी काय-कान्ति से परास्त कर दिया था । जल-रूपी दर्पण मे भगवान् भास्कर के प्रतिबिम्ब की तरह, मनुष्य के रूप मे वे साक्षात् पुराण-पुरुष के प्रतिबिम्ब, अर्थात् अवतार, थे । उनका प्रताप जगज्जयी था; विश्व-विजयी तेज के वे आधार थे । जिस काम का उन्होने आरम्भ किया वह कभी विफल नही हुआ, वे सफल-कर्म्मारम्भ थे । ऐसे अलौकिक प्रतापी और तेजस्वी अर्जुन के पास महादेवजी के गणो की अगणित सेना इस तरह जा पहुँची जिस तरह ग्रीष्मा-वसान मे वर्षा-कालीन मेघों का दल किसी महा-पर्वत के पास जा पहुँचता है ।

अर्जुन के आश्रम मे पहुँचते ही किरात-सेना के सैनिकों ने खूब ही गर्जन-तर्जन और आस्फालन किया । सबने अपने ही मुँह अपनी अपनी बड़ाई हाँकी । किसी ने कहा, मैं ही पहले उस पर

प्रहार करूँगा। किसी ने कहा—देखो, मैं तुमसे भी पहले उसे अपने बाण का निशाना बनाऊँगा। इस प्रकार मनोमोदक खाते खाते वे अर्जुन के बहुत पास पहुँच गये। वहाँ पर ज्योंही उन्होंने मुनि के वेश में परम-पराक्रमी पार्थ को देखा त्योंही वे अपना सारा आस्फालन और प्रचारण भूल गये। पार्थ के प्रभाव से एक पल मे उनका तेज क्षीण होगया। यहाँ तक कि वे मोह-मुग्ध होकर किङ्कर्तव्य-विमूढ़ हो गये। बात यह है कि महानुभावों के सम्मुख होते ही पुरुषों का पुरुषत्व नष्ट हुए बिना नहीं रहता। यही कारण है जो अर्जुन के सामने सदाशिव के सेवकों का भी गर्व खर्व हो गया।

वनेचर-वाहिनी के वीरों की बुद्धि का मोह दूर होने पर उन्होंने एक दूसरे की शक्ति का आश्रय लेकर एकही साथ अर्जुन पर बाण-वर्षा आरम्भ कर दी। उन्होंने सोचा कि इतना प्रभावशाली पुरुष हम लोगों मे से एक दो से न जीता जा सकेगा। अतएव, लावो, हम लोग मिल कर इस पर एक ही साथ आक्रमण करें। उनकी यह बात दोष-पूर्ण नहीं कही जा सकती। क्योंकि बहुत बड़े कार्य्य की सिद्धि के लिए बड़े बड़े महात्माओं को भी सहायता और संघ-शक्ति की अपेक्षा होती है। बिना यथेष्ट साहाय्य-प्राप्ति के वे भी अपनी उद्देश-सिद्धि में सफल-मनोरथ नहीं हो सकते।

किरात-सेना के योद्धाओं के प्रकाण्ड धनुषों से सनसनाते हुए शर छूटने लगे। बड़े वेग से छोड़े जाने के कारण उन शरों के पङ्खों (पूँछो) से भयानक शब्द होने लगा। अन्यत्र जाने की इच्छा रखने वाले पक्षियों के समूह जैसे किसी बहुत बड़े बन से

चारों तरफ़ निकल पड़ते हैं वैसे ही किरात-सेना के वीरों के शरासनों से निकले हुए सैकड़ों-सहस्रों शर चारो तरफ़ से उड उड कर अर्जुन की ओर आने लगे। प्रत्यञ्चा की टङ्कार का घोर रव इन्द्रकील पर्वत के शिखरो की गभीर गुहाओं में भर गया। वहाँ, प्रतिध्वनित होने के कारण, उसका वेग-विस्तार और कर्कशत्व दूना-चौगुना होगया। धीरे धीरे उस धनुर्निनाद ने बहुत ही भीषण रूप धारण किया और ऐसा मालूम होने लगा मानो उसने दिशाओ को विदीर्ण कर दिया हो और उन्ही के फटने से महा घोर रव हो रहा हो।

महादेवजी के गणो की शरावली से उस घने वन के पेड़ हिल उठे, आकाश सर्वत्र आच्छादित हो गया; दिगन्तराल में कहीं जौ भर भी जगह ख़ाली न रही। प्रबल पवन से प्रेरित मूसलधार वृष्टि की तरह वह बाणावली घोर और गभीर नाद करती हुई अर्जुन पर गिरने लगी।

अर्जुन छ. महीने से सिर्फ़ हवा खाकर ही रहते थे। इस कारण यद्यपि वे अत्यन्त दुर्बल हो गये थे, तथापि युद्ध करने का अवसर प्राप्त हुआ देख हर्ष से उनका शरीर फूल उठा। फल यह हुआ कि शरीर पर धारण किया गया जो कवच अब तक ढीला था वह ख़ूब कस गया। उसने सज्ञान जन की तरह व्यवहार किया। उसने मानो अपने ढीलेपन को दोष समझ कर ही दृढ़ता और घनता स्वीकार करली।

पृथ्वी और आकाश को सर्वत्र आच्छादित करने वाले शरों को अपने ऊपर गिरते देख अर्जुन ने अपने धनुष का आकर्षण किया;

और किरातों की उस सेना पर रोष-पूर्वक संहार-सूचक दृष्टि डाली। उस समय उनकी वह दृष्टि आकाश से गिरती हुई महा-भयङ्कर उल्का के सदृश मालूम हुई। तदनन्तर, अपने स्थान से आगे बढ़ कर, प्रलय-काल के सदृश दारुण अर्जुन ने पृथ्वी और आकाश को अपने शरों से पाट दिया। उस समय ऐसा मालूम हुआ जैसे उन्होंने सारी दिशाओं को खींच कर एक मे कर दिया हो, सूर्य्य की प्रभा को अभिभूत कर दिया हो; वायु-मण्डल को व्याकुल कर दिया हो, और सपर्वता पृथ्वी को कँपा दिया हो। उनको जीतने की इच्छा से सारे वनेचर वीरो ने जिन शरों का निक्षेप एक ही साथ किया था उन्हे अर्जुन के शरो ने बीच ही मे काट गिराया। वे अर्जुन तक पहुँचने ही न पाये। अवसर निकल जाने पर किया गया काम जैसे व्यर्थ जाता है वैसे ही किरातो के शरासनों से छूटे हुए वे शर व्यर्थ हो गये।

साम आदि उपाय इस तरह छिपे छिपे किये जाते हैं कि उनके प्रयोग का ज्ञान शत्रुओं को नहीं होता। अर्जुन के बाण भी इस फुर्ती से छूटे कि उनके छूटने का ज्ञान भी किरातों को न हुआ। वे कब छूटे, यह उन्होंने जाना ही नहीं। साम आदि उपायों से विपत्तियों का निवारण होता है, अर्जुन के बाणों से भी उन पर आई हुई शर-वर्षा-रूप विपत्ति का निवारण हो गया। साम आदि उपाय दूर तक काम देते हैं—विपक्षी राजा के मंडल के भीतर तक उनका असर पहुँचता है। अर्जुन के बाणो ने भी बहुत दूर तक काम किया। उन्होंने दूरवर्त्ती भी लक्ष्य का भेद कर दिया। साम आदि उपाय बहुत बड़े फल के दाता होते हैं। अर्जुन के बाणों

के फल ( अग्र भाग ) भी बहुत बड़े बडे थे। अतएव पाडु नन्दन अर्जुन के शरों ने वही काम किया जो काम प्रयोग किये जाने पर साम आदि उपायों से होता है।

अर्जुन को अजस्र बाण-वर्षा करते देख किरात-सेना के सैनिक बे-तरह घबड़ा गये। ये संख्यातीत शर कहाँ से आ रहे हैं, इस बात का उन्हे ठीक ठीक ज्ञान भी न हुआ। मन ही मन वे कहने लगे— ये शर-समूह क्या आकाश से बरस रहे हैं! अथवा क्या ये पृथ्वी के पेट से ऊपर आ रहे हैं! अथवा क्या ये इस मुनि-वेशधारी वीर के शरीर से निकल रहे हैं! अथवा क्या एक ही बार खींचे गये इसके शरासन से ही ये सब छूटते चले जा रहे हैं! कुछ समझ ही में नहीं आता कि उनकी इतनी अधिक संख्या आ कहाँ से रही है!

अर्जुन के बाण बड़े ही मर्म-भेदी थे। यद्यपि वे गणाधिपों के मर्म्म-स्थान छेद देते थे तथापि उनके प्राण न निकलते थे। अमर होने के कारण, बाणों से छिद जाने पर भी, वे न मरते थे। इसी से अर्जुन के धन्वा से निकले हुए बाण, मानो अपने को अपराधी समझ कर, सिर नीचा किये हुए, बड़े वेग से हिमालय का अति-क्रमण करके, न मालूम कहाँ चले जाते थे। ऐसी दशा में वे बेचारे और करते ही क्या? लज्जा के मारे सिर नीचा करके कहीं अपना मुँह जा छिपाते थे।

अर्जुन् के गाण्डीव-धन्वा से अनवरत शर छूट रहे थे। कवच काट कर वे किरात-सैनिकों के शरीर पर बड़े बड़े घाव कर देते थे। उनका छूटना यद्यपि बन्द न था, तथापि उनमें एक विशेषता यह

थी कि पहले छूटे हुए शर जिस जगह घाव कर देते थे उस जगह पीछे से छुटे हुए शर न लगते थे। बात यह है कि महात्मा लोग मरे को नही मारते। वे अरुन्तुद नही होते। जो स्थान पहले ही आहत हो चुका उसी पर फिर आघात करना वे अधर्म समझते हैं।

किरातों के अधीश्वर महादेवजी की सेना मे जितने सैनिक थे उतने ही शर अर्जुन ने अपने धनुष से एक ही क्षण मे छोड़ दिये। वे इतने वेग से छूटे कि ऐसा मालूम हुआ जैसे वे उनके धनुष से ही उत्पन्न हो कर निकले हो। उस शर-श्रेणी ने उमापति की वाहिनी को इस तरह सकुचित कर दिया जिस तरह कि चन्द्रमा की प्रभा पङ्कजावली को संकुचित कर देती है।

अर्जुन के शर-समूह उनके उत्साह ही के सदृश थे। जैसे उनका उत्साह सरल, ओजस्वी, सफल और अक्लान्त था वैसे ही उनका शर-समूह भी था। जिस तरह वे अपने उत्साह का प्रयोग भिन्न भिन्न कार्य्यों मैं भिन्न भिन्न प्रकार से करते थे वैसे ही उन्होंने अपने शर-समूह का भी प्रयोग छेदन, भेदन और पातन आदि कार्य्यों में भिन्न भिन्न प्रकार से किया। अपने शरो से उन्होंने किसी के शरीर को आर-पार छेद दिया, किसी के शरीर मे कुछ ही दूर तक घाव कर दिया, और किसी को पीड़ित करके पृथ्वी पर गिरा दिया। यह बात उनके हस्त-लाघव—उनकी धनुर्विद्या के कौशल—की सूचक थी। ऐसे अद्भुत शरों की चोट खा खाकर उनके विपक्षी किरात व्याकुल हो गये। अर्जुन की ऐसी अलौकिक मार उन्हें असह्य हो गई। प्रत्येक मनुष्य सूर्य्य को ऊपर आकाश

में अपने ही सामने उदित देखता है । किरातों को अर्जुन भी वैसे ही देख पड़े । अत्यन्त-तीव्र-शर-रूपी मयूख-माला से शोभित, एक ही जगह खड़े हुए, अर्जुन को अनेक स्थानों मे खडी हुई शिव-सेना के सैनिको ने एक ही साथ अपने सामने देखा । प्रत्येक सैनिक को यही मालूम हुआ मानों अर्जुन उसी के सामने खडे हुए शर-सन्धान कर रहे हैं । उन्हे ऐसा ख़्याल हो गया कि सेना में जितने सैनिक हैं उतने ही अर्जुन भी हैं ।

ग्रीष्म-काल मे जब बड़े वेग से वायु चलती है तब धूली के कण चारो तरफ़ मण्डल बाँध कर उड़ने लगते हैं । ठीक यही दशा उस समय शिवजी के सैनिको की हुई । कुपित हुए अर्जुन के द्वारा बड़े ही वेग से छोड़े गये शर-समूह ने चारों दिशाओं से आकर महादेवजी के सैन्य को मथ डाला । अत्यन्त व्याकुल हुए सैनिक ग्रीष्मकाल के रजःकणों के सदृश ही उड़े उडे फिरने लगे । उस समय उनके मन मे अनेक शङ्काओ का प्रादुर्भाव हुआ । उन्होंने कहा—क्या यह मुनि अपने तपोबल से अनन्त अदृश्य रूप धारण करके हम लोगों पर शर-वृष्टि कर रहा है । अथवा क्या हमारे ही शर इसकी माया से निष्फल होकर उलटा लौट आते हैं और हमीं पर प्रहार करते हैं ! अथवा क्या देवता लोग इस मुनि के गुणों पर मोहित होकर अथवा इसके भय से भीत होकर छिपे छिपे हम पर चोट करते हैं ! यदि ऐसा न होता तो इस मुनि की तरफ़ से आने वाले शर, समुद्र की तरङ्ग-माला के सदृश, क्यो निरन्तर आते ही जाते ! वे असंख्य क्यो होजाते ! हम लोगों को जीत कर भी यह महामुनि युद्ध करना कभी बन्द भी करेगा या नहीं !

इस चराचर संसार का कभी मङ्गल भी होगा या इसका समूल ही नाश हो जायगा ! इस प्रकार के अनेक तर्क-वितर्क करती हुई किरात-वाहिनी अर्जुन के बाणों की मार से अत्यन्त ही आकुल और सन्तप्त हो उठी। वह अपने स्थान पर खड़ी न रह कर तितर बितर हो गई।

क्रोध से क्षुब्ध हुए मनुष्य के द्वारा किया गया क्षमा-साध्य काम जैसे निष्फल जाता है, उन्मत्त मनुष्य से कहा गया हितकर और प्रिय वाक्य जैसे व्यर्थ जाता है, और प्रबल दैव की प्रेरणा से किया गया पुरुषार्थ जैसे अकारथ जाता है वैसे ही पृथापुत्र अर्जुन के द्वारा पराभूत हुआ वह सैन्य हतोद्यम और निस्तेज हो गया। उसका सारा प्रयत्न, सारा उद्योग और सारा बल-विक्रम निष्फल गया।

कपिध्वज अर्जुन के शरासन से छूटे हुए शरों से सारी दिशायें परिपूर्ण हो गईं। उन्होंने शङ्कर की सेना की दुर्गति कर डाली। उसके पैर उखड़ गये। सूर्य्य के ताप से तप्त हुआ जल जैसे चारों तरफ़ घूमने लगता है वैसे ही उस सेना के सैनिक चारों तरफ़ मण्डलाकार घूमने लगे। उन्हें एक जगह स्थिर होकर खड़े रहने की हिम्मत ही न हुई।

पाण्डु पुत्र अर्जुन ने अपने शर-निकरों से पृथ्वी और आकाश ही को नहीं, सारे ब्रह्माण्ड को आच्छादित कर दिया। तदनन्तर वे अपने मण्डलाकार धनुष का आस्फालन करते हुए अपने स्थान पर खड़े हो गये। उस समय बेचारी विजय-लक्ष्मी बड़े ही असमञ्जस में पड़ी। मन तो उसका भगवान् त्रिलोचन की सेना के

साथ ही रहने का था; परन्तु संयोग ही ऐसा आ गया कि उसे विवश होकर उसका साथ छोड़ना पड़ा । अस्तु । बड़ी कठिनता से किसी प्रकार वह अर्जुन का आश्रय लेने मे समर्थ हुई । जीत अर्जुन ही के हाथ रही ।

---

# पन्द्रहवाँ सर्ग।

अर्जुन की बाण-वर्षा से उस पर्वत के सारे जीव-जन्तु व्याकुल हो उठे और किरातो की वह इतनी बड़ी सेना अपने शस्त्रास्त्र डाल कर भाग चली। जिसे जिस तरफ़ भागने का मौक़ा मिला वह उसी तरफ़ भागा। सेनापति के रूप में शिवजी यद्यपि वहीं अपने किरात-कटक के बीच मे विद्यमान थे, तथापि सैनिको मे से किसी ने उनकी तरफ़ देखा तक नहीं। सारे सैनिक सङ्ग्राम-भूमि छोड़कर अपने अपने प्राण बचाने के लिए भागने लगे। बात यह है कि बहुत बड़ी विपत्ति आ जाने पर मन भयाग्नि मे अत्यन्त तप्त हो जाता है। अतएव मनुष्य को सामने पड़ी हुई चीज़ भी नहीं दिखाई देती। इसी से सैनिकों को सामने खड़े हुए शिवजी भी न दिखाई दिये।

कपिध्वज अर्जुन ने देखा कि किरातों की सेना, जीत की आशा छोड़ कर, बेतरह भाग रही है। अतएव उन्हे उन भयत्रस्त भगोड़ों पर बड़ी दया आई। शत्रु पर दया करना अवश्य निषिद्ध है। परन्तु वह निषेध ऐसे अवसर के लिए नहीं। यत्नपूर्वक वशीभूत किये गये क्षुद्र शत्रु पर दया दिखाने से विजेता की महत्ता ही प्रकट होती

है। ऐसे शत्रु के साथ दया का बर्ताव करना महात्माओं का भूषण ही माना गया है, दूषण नहीं। यही समझ कर अर्जुन ने उन पलायमान गणों पर फिर प्रहार करना उचित न समझा। उन्होंने भागते हुए उन भय-विह्वल गणों का पीछा तो कुछ दूर तक अवश्य किया, पर उन्हे अधिक त्रास न दिया। उन्होने कहा—इन भगोड़ो को अब अधिक तङ्ग करना निर्दयता का काम होगा। अतः वे वहीँ रुक गये। उन्होने यह उचित ही किया। पीडितों को और भी पीड़ित करना तेजस्वी पुरुषो को शोभा नही देता। एक हाथ मे खड्ग और दूसरे मे धनुर्बाण धारण किये हुए, पैतडा बदल कर, वे स्थिरता-पूर्वक वहीं खड़े हो गये। वे इतने सौभाग्यशाली थे कि उन्हे इस युद्ध में विजय ही की प्राप्ति न हुई, किन्तु विरोधी पक्ष के हाथी, घोड़े और सुवर्ण आदि बहुमूल्य वस्तुयें भी उन्हे प्राप्त हुईं। युद्ध मे उन्होने शिवजी के पुत्र कार्तिकेय के भी नाको दम कर दिया। उस समय वीरवेश मे खडे हुए अर्जुन की अपूर्व ही शोभा हुई।

शिवजी के पुत्र स्कन्द ने जब देखा कि उनकी सेना जी जान छोड़ कर भागी जा रही है तब वे उसे लौटाने की चेष्टा करने लगे। गणों को गिरते पड़ते हुए भागते देख पहले तो उन्हें हँसी आ गई; वे मुसकाने लगे। परन्तु, फिर, अपनी सेना का इस प्रकार पराभव हुआ देख उन्हे खेद भी हुआ। अतएव कीर्तिशाली कार्तिकेय ने आगे खड़े होकर और पलायमान सैनिकों की तरफ मुँह करके उनसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

"अरे गणो! तुम यह क्या कर रहे हो? तुम्हारे लिए तो खेल और युद्ध दोनों एक ही से हैं। तुम तो अभी तक युद्ध को भी

एक प्रकार का खेल ही समझते रहे हो। औरों की तो बात ही नहीं, बड़े बड़े दैत्यों तक को तुम ने परास्त कर दिया है। क्यों भला फिर तुमने युद्ध से इस तरह भाग कर अपनी सुकीर्ति को कलङ्कित किया? यह मुनि तो तुम्हारी बराबरी का भी नहीं। क्योंकि यह तुम्हारा सजातीय गण नहीं। और, जो गण नहीं है, अतएव जो तुमसे सर्वथा न्यून है, उससे हार खाना बड़ी ही लज्जा की बात है। भागो मत। खबरदार जो किसी ने रण-भूमि छोड़ी!

"ज़रा अपने इन बड़े बड़े खड्गों की तरफ़ तो देखो। धिक्कार है तुम्हें जो तुमने इन खड्गों को निष्फल कर दिया। इन्हें हाथ मे रखना और उठाना ही व्यर्थ हुआ। सूर्य्य की किरणे पड़ने से, देखो, ये कितना चमक रहे हैं! इनका तेज दूना-चौगुना हो रहा है। जानते हो यह किस लिए है? इस बढ़े हुए तेज के बहाने ये तुम्हारी हँसी सी कर रहे हैं। ये मानों तुमसे कह रहे हैं कि भयार्त होकर जो भाग रहा है उसे खड्ग धारण करने से क्या लाभ? जैसे तुमने युद्ध मे अपना धैर्य्य और साहस छोड़ दिया है वैसे ही तुम हमें भी क्यों नहीं छोड़ देते! कमर मे क्यो व्यर्थ हमें लटकाये हुए हो!

"वनवासियों की रक्षा करने वाले इस वन मे जिन मार्गों से मृग आते जाते हैं उन्हीं मार्गों से तुम्हे भागते देख मुझे बहुत परिताप होता है। उस मुनि के सनसनाते हुए बाणों के प्रभाव से जो पीड़ा तुम्हें पहुँची है उसे दूर करने का क्या उपाय है, इसका मैं विचार कर रहा हूँ। इस काम को तुम मुझ पर छोड़ दो। डरो मत! लौटो! तुम्हारे क्लेश-निवारण का कोई उपाय मैं शीघ्र ही निकालूँगा। ऐसी

कौन बडी भारी विपत्ति आई थी जिसे दूर करने के लिए तुम समर-भूमि से भाग निकले! यह दु:साहस कर के तुमने अपना सारा माहात्म्य मिट्टी मे मिला दिया और अपनी सारी सुकीर्ति नष्ट कर दी। युद्ध मे पीठ दिखाने से बढ़ कर और कोई दुष्कृत नहीं। बड़े ही परिताप की बात है, तुमने व्यर्थ ही पलायनरूप घोर पाप कर डाला। यह कोई दीर्घकाय दैत्य नहीं; कोई विकटाकार गज या सर्प भी नहीं; पर्वतप्राय कोई राक्षस भी नहीं। फिर तुम इससे डर कर भागे क्यों? यह तो रजोगुणप्रधान भूतलचारी कोई साधारण पुरुष है। यद्यपि इसमे उत्साह की अधिकता है यद्यपि यह बहुत बड़ा उत्साही पुरुष जान पड़ता है—तथापि यह अजेय नहीं। यह तो सहज ही वशीभूत किया जा सकता है। अतएव भय का क्या काम? मनुष्य को देख कर भी क्या कोई इस प्रकार भयभीत हो कर भागता है।

"देखो, यह मुनि तुम्हारा कितना अपमान कर रहा है! पशुओं को भागते देख जैसे कोई उन्हे पेड़ की डाली से धीरे धीरे मारता है और यह चाहता है कि वे खड़े हो जायँ, जिधर भाग रहे हैं उधर न भागे, वैसे ही यह मुनि भी अपनी बाणरूपिणी शाखाओं से तुम्हारे जघनस्थल पर घृणापूर्वक धीरे धीरे प्रहार कर रहा है। यह तो तुम्हें पशु ही के सदृश समझ कर तुम्हारे साथ अवज्ञा-सूचक व्यवहार कर रहा है— तुम्हें मार मार कर खड़ा कर रहा है। इससे बढ़ कर दु ख और परिताप की बात और क्या हो सकती है।

"अपने से कम शक्ति रखने वाले से मार खाने वाले की

गिनती पुरुष मे नही। अपने से कम शक्ति रखने वाले पर जो शस्त्र-प्रहार करता है उसकी भी गिनती पुरुष मे नहीं। इस तरह प्रहार करना तथा प्रहार सहना दोनों ही बातें पुरुषत्व की सूचक नहीं। पुरुषत्व का अभिमान रखने वाले लोग ऐसा निन्द्य कार्य कदापि नही करते। नाना प्रकार के मुखों वाले हे प्रमथवर्ग! सुनो, मैं क्या कहता हूँ—मैं जानता हूँ कि इस मुनि ने तुम्हे बहुत आहत किया है। परन्तु इस इतनी बात से तुम्हे भागना न चाहिए। तुम्हारे स्वामी—तुम्हारे सेनापति—तो आहत हुए ही नहीं, वे तो युद्ध मे पूर्ववत् स्थिर हैं। अतएव, सेनापति के अक्षत रहते तुम्हारा आहत होना कुछ भी अर्थ नहीं रखता। तुम भी अपने को अक्षत ही समझो। क्योंकि हार-जीत तो सेनापति के हारने-जीतने से होती है। यह न समझो कि यह मुनि तुम्हारे आहत होने पर भी तुम पर प्रहार कर रहा है; अतएव यह अधर्मी और युद्ध करने का पात्र नहीं। यह पीड़ित-पीड़क नही। यह तो तुम्हे भागते देख तुम्हें रोकने के लिए ही धीरे धीरे तुम पर अपने शस्त्र-विक्षेप कर रहा है। आश्चर्य है, इसके द्वारा इतना अपमान होने पर भी तुम ठहरते नहीं! ठहर जाओ! अपने से न्यून शक्ति रखने वाले से डर कर भागना और उसके हाथो से अपना अपमान कराना बड़ी लज्जा की बात है। जो मनुष्य पहले अनेक उत्तमोत्तम गुणों का सम्पादन करके अनन्तर उनका नाश कर देता है उससे तो अत्यन्त निर्गुणी मनुष्य ही अच्छा। गुँथा हुआ रत्न जिस हार से गिर गया है उससे तो पहले ही से बिना रत्न का पोहा हुआ हार अधिक स्पृहणीय है। अतएव अच्छा होता यदि

आज तक तुमने अपने भूत-पूर्व गुणों का सम्पादन ही न किया होता । गुणी और यशस्वी होकर तुमने जो अपने गुण-समूह और यशोराशि को इस प्रकार भाग कर कलङ्कित कर दिया, यह बड़े ही परिताप की बात हुई ।

"भागने का तो मैं कोई कारण ही नही देखता । न इस मुनि के पास वेगगामी रथ है, न चालाक घोड़े ही हैं, न ऐरावत के सदृश सुन्दर हाथी ही हैं, और न अच्छी पैदल सेना ही है । फिर भागते तुम क्यो हो ? ऐसे निस्सहाय मुनि से भयभीत होना तुम्हे शोभा नही देता । तुमने तो अपने क्षुद्र शत्रु के हाथ से अपना सारा पुरुषत्व नष्ट करा दिया । अब तो तुम्हारी दशा सूर्य्य के द्वारा सुखाये गये सरोवर की सी है । जैसे इस तरह के सरोवर का जल सूर्य्य के ताप से सूख जाता है और केवल दुस्तर पङ्क ही पङ्क रह जाता है उसी तरह इस मुनि के पराक्रम के प्रभाव से तुम्हारा सारा बल-पौरुष नष्ट हो गया है । इस समय तो तुम पङ्क की तरह दुष्कीर्त्ति-मात्र के पात्र हो रहे हो । शिव शिव ! यह कितना बडा अनर्थ है !

"कँटीले बॉस और बबूल के वृक्षो से यह पर्वत अगम्य हो रहा है । यह इतना घना है कि भागा हुआ शत्रु इसमें पकड़ा ही नहीं जा सकता । इस दशा मे, बताओ तो सही, तुम भागे कहाँ जा रहे हो ? तुम्हे यहाँ कोई पकड़ ही नहीं सकता । तुम्हारा यह व्यापार अत्यन्त ही कुत्सित है । यहाँ से भाग कर क्या तुम किसी दिशा या विदिशा को जीतने की इच्छा रखते हो ? तुमने तो स्वर्ग में बड़े बड़े दैत्यों तक को मार गिराया है । ऐसे शक्तिशाली होकर भी, तुम जो क्षुद्र शत्रु से भयभीत होकर इस कँटीले वन मे भाग रहे हो,

यह अत्यन्त ही अनुचित है। बड़े ही परिताप की बात है कि तुमने शत्रु को पीठ दिखा दी। उसके सामने पुरुषोचित काम करना छोड़ कर तुम भाग खड़े हुए। तुम्हारी यह दशा तुम्हारे स्वामी शिवजी ने अपनी आँखों देख ली! अस्तु, जो हुआ सो हो गया। अब और मत भागो। दुराचार-रत कलत्र की तरह तुम्हारी रक्षा करने के लिए शिवजी तैयार हैं। वे अपने महत्त्व और प्रभाव से तुम्हारे इस पलायन-दोष पर परदा डालना चाहते हैं। तुम पर वे ऐसा अनर्थ फिर कभी न होने देंगे।

"ठहरो! ठहरो! तुम कौन हो, इस बात का तो ज़रा विचार करो। तुम तो शत्रुओं की शक्ति को मथने वाले हो, सब प्रकार समर्थ हो; स्वामिभक्त हो; अपने स्वामी ही के नहीं, औरों के भी रक्षक हो; सब तरह शुद्ध हो; अच्छे वक्ता हो, भयङ्कर होकर भी दूसरों को अभय दान देने वाले हो। तुम्हीं कहो, क्या तुम ऐसे नहीं? फिर भला तुम क्यों इस तरह घबराये हुए हो? तुम तो मनुष्यत्व और देवत्व को भी कुछ नहीं समझते। इसी से तुमने न तो देवता ही का रूप स्वीकार किया, न मनुष्य ही का। देवताओं और मनुष्यों के रूप से बिलकुल ही भिन्न रूप तुम ने धारण किया है। इसके सिवा तुममें और भी ऐसे अनेक गुण हैं जो न सुरों में ही पाये जाते हैं, न असुरों में ही। अतएव तुम इन दोनों ही से बढ़ कर हो। ऐसे होकर भी तुमने अपने शूरत्व का अभिमान क्यों इस तरह निर्लज्ज होकर छोड़ दिया? मनस्विता एकमात्र प्रतापी पुरुषों के आश्रय में रहती है। क्या तुम्हारा तेज बिलकुल ही विलय को प्राप्त हो गया जो तुमने मनस्विता का आश्रय छोड़ दिया?

"हे अमर गणो ! ज़रा अपने विरोधी इस मुनि-रूपी वीर को तो देखो । इसके हाथ मे कितना तीक्ष्ण खड्ग है ! निर्भय भी यह बहुत है । इसका शरीर इतना तेजस्वी है कि यह उस तेज से देदीप्यमान हो रहा है । सहिष्णुता भी इसमे कम नही । महाबली विपक्षी के सामने भी यह स्थिरतापूर्वक युद्ध कर सकता है । तुम इससे कुछ कम वीर नही । ऐसे विपक्षी को पाकर तुम्हे उसका सामना करना चाहिए, भागना न चाहिए । देखो, यह तुम लोगो की इतनी बड़ी सेना से भी भयभीत न होकर निर्भय खडा है । इस के शरीर पर धारण किया हुआ कवच कैसा चमक रहा है । इस की छाती ख़ूब चौडी है । जिस महा-भयङ्कर युद्ध के घोर नाद से ही संसार के नाश हो जाने का सन्देह हो उसमे इस तरह के अद्वितीय वीर को छोड़ कर और ऐसा कौन पुरुष है जो निडर होकर सञ्चार कर सके ? इसकी वीरता, निर्भयता और निश्चलता सचमुच ही प्रशसनीय है । ऐसे अलौकिक पराक्रमी पुरुष को पाकर क्या तुम्हे भागना चाहिए ? ऐसे वीर के साथ लड़ने और उसका पराभव करने से तो और भी अधिक कीर्त्ति और ख्याति होगी । क्योंकि साधारण वीरो को परास्त करना या मारना कौन बड़ी बात है !

"असुरो के साथ जो महायुद्ध हुआ था उसकी याद क्या तुम्हें भूल गई ? वह देवासुर-संग्राम बहुत ही अद्भुत था । उस में संख्यातीत घोड़े काट काट कर पृथ्वी पर गिरा दिये गये थे । उनसे समर-भूमि इतनी पट गई थी कि रथों के मार्ग तक रुक गये थे । उसमे बड़े बड़े पर्वताकार हाथी इतने मारे गये थे कि उनके

घावों से निकले हुए रुधिर के प्रवाहों से समर-भूमि परिपूर्ण हो गई थी। उसमे हाथी थे भी अनगिनत। दोनो दलो ने उनकी घटायें की घटाये सजा कर खडी कर दी थीं। उन पर शस्त्रास्त्रों से सजे हुए सैनिक बड़े ही हस्तलाघव से अपने अपने विपक्षियों पर अस्त्र-वर्षा करते थे। देवताओं का उत्साह बेहद बढ़ा हुआ था। शस्त्रास्त्रों से तो युद्ध होता ही था, कभी कभी वाक्कलह भी हो जाता था। योद्धाओं को अपनी अपनी रण-चातुरी दिखाने का अवसर देने के लिए, सभी प्रचलित प्रणालियों के अनुसार युद्ध करने की योजना की गई थी। युद्ध मे उत्साही और अनुत्साही दोनों प्रकार के योद्धा थे। पर सभी तरह की प्रणालियो का अवलम्ब करके युद्ध किये जाने के कारण सारे सैनिको को अपनी अपनी शक्ति और उत्साह के अनुसार पराक्रम दिखाने का यथेष्ट अवसर प्राप्त हुआ था। क्या यह युद्ध इतना भीषण है? यह तो उसके सामने कोई चीज़ ही नही। फिर तुम क्यों कौवों की तरह कॉंव कॉंव करते हुए भाग रहे हो? ठहराने और आश्वासन देने से भी क्यों नहीं रुकते? उस युद्ध की भीषणता का मैं कहाँ तक तुम्हें स्मरण दिलाऊँ! उस में सिर कटे हुए वीरों के कबन्धों ने इतना नृत्य किया था कि अपने अपने सवारों को गिरा कर रथ मे जुते हुए घोड़े भयार्त होकर चारों तरफ़ भाग निकले थे। बाणों से रिक्त निषङ्गों में वायु भर जाने से जो शब्द हुआ था उसने कितने ही अश्वारोहियों के कानों के परदे फाड़ डाले थे। वीरो के हृदय तो आनन्द से उछल पड़े थे; पर भीरुओं की दुर्गति हो गई थी। बढे हुए उत्साह के कारण, सभी काम शीघ्रता-पूर्वक होने से, सर्वत्र घोर नाद हो रहा था। वह ऐसा

युद्ध था कि आज तक और कोई युद्ध वैसा नही हुआ। उसके तो वर्णन मात्र से ही वीर जन उत्साहित हो जाते हैं। फिर, सम्मिलित वीरों के पारस्परिक उत्साह को उस युद्ध ने कितना उद्दीप्त किया था; यह तुम स्वय ही जानते हो। ऐसे अभूत-पूर्व युद्ध मे तुम निश्चल होकर निर्भय लड़ते रहे! फल यह हुआ कि जीत भी तुम्हारे ही हाथ रही! हाय हाय! ऐसे लोकोत्तर युद्ध में प्राप्त की गई कीर्त्ति को तुमने इस क्षुद्र युद्ध मे कलङ्कित कर दिया! तुम्हारा वह पूर्व-पौरुष कहाँ गया?"

अपने पुत्र स्कन्द को पलायमान गणों को इस प्रकार धिक्कारते और उन्हे लौटाने की चेष्टा करते देख अन्धकारि शङ्कर अपनी भागती हुई सेना की तरफ़ मुँह करके मुसकराते हुए खड़े हो गये। उन्होने स्वयं ही सेना को भागने से रोका।

शिवजी की ललकार सुन कर मुनिवर अर्जुन की शराग्नि से पीड़ित सैनिक लौट पड़े। उन्हें उस समय बड़ी लज्जा मालूम हुई। उन्हे लज्जित देख शिवजी ने अपने निषेध-रूपी शीतल जल से उन्हें किसी तरह शान्त किया। उन्होने कहा—डरो मत। अब मत भागना। तुम अपने को अब निरापद समझो।

वे बेचारे अर्जुन के शरों से अत्यन्त व्यथित थे। अर्जुन के सामने ठहरने योग्य उनमे शक्ति भी न थी। अर्जुन के तेज़ बाणों ने उनकी दुर्गति कर डाली थी। अतएव, वे उस समय बहुत ही डरे हुए थे। उनके मुँह से बात तक न निकलती थी। तथापि, शिवजी के मुख से अभय-वचन सुन कर उन्हे बहुत कुछ धीरज हुआ। उन्हें विश्वास हो गया कि महादेवजी अब हमारी अवश्य ही रक्षा करेंगे।

शिवजी के गणों की सेना शत्रु के विकट-बाणरूपी दुस्तर सागर में डूब सी रही थी। शिवजी के पूर्वोक्त अभय-वचन सुन कर वह उस महासागर के पार पहुँच सी गई। उसका भय दूर हो गया। उसे बहुत कुछ आश्वासन मिला। सूर्य्य के सामने खड़ा हुआ महातरु अपने पीछे दूर तक फैली हुई छाया को जिस तरह प्रसन्नता-पूर्वक धारण किये रहता है, उसी तरह रण से पराङ्-मुख हुई पश्चाद्-वर्तिनी सेना को आगे खड़े हुए शिवजी ने धारण किया—तरह तरह के आश्वासन-वाक्य कह कर उसे बहुत कुछ ढाढ़स दिया।

इसके अनन्तर शिवजी ने अपने पिनाक नामक धन्वा से बड़े ही विषम बाण छोड़ना आरम्भ कर दिया। बाण छोड़ते समय उनके उस अलौकिक शरासन से बहुत ही घोर रव होने लगा। उस रव से सारी दिशायें परिपूर्ण हो गईं और ऐसा मालूम होने लगा जैसे इन्द्रकील-पर्वत के फट जाने ही से वह कर्ण-भेदी रव हो रहा हो।

महादेवजी और अर्जुन में परस्पर घमासान युद्ध होने लगा। उसे शिवजी के चित्र-विचित्र आकार-धारी गण, पर्वत के समान निश्चल होकर, विस्मय-पूर्वक, चित्र लिखे से खड़े, देखने लगे।

बाण छोड़ने मे शिवजी के हस्तलाघव का क्या कहना था। इस व्यापार में वे इतने पटु थे कि सैकड़ों शर उनके शरासन से निमिष-मात्र में छूट गये। उनकी बाण-वर्षा ने अर्जुन के हृदय में मोह उत्पन्न कर दिया और उनके छोड़े हुए शर समूहों को काट गिराया।

अर्जुन भी धनुर्विद्या में खूब प्रवीण थे। उन्होंने भी अनन्त अन्तकारी शर बरसाना शुरू कर दिया। उन शरों ने महादेवजी के

चाप से च्युत शरों के टुकड़े टुकड़े कर डाले । बाण-विद्या के पार-गामी होने के सिवा अर्जुन का उत्साह भी ख़ूब बढ़ा चढ़ा था । लड़ने का अभ्यास भी उन्हे बहुत था। अतएव वे महादेवजी से युद्ध करते हुए समर-भूमि मे निर्भय विचरण करने लगे । युद्ध मे कैसी कैसी चाले चलनी चाहिए, इससे भी अर्जुन अच्छी तरह परिचित थे । वे चक्र आदि बन्धो का बहुत अच्छा ज्ञान रखते थे । युद्ध-कौशल उनका प्रशसनीय था । हर तरह के युद्ध में वे पटु थे । अपने शत्रु को घण्टों ख़ाली हाथ खड़ा रखने—उसे शर-प्रहार करने का अवसर ही न देने—की शक्ति उनमे थी । अपने इन्हीं गुणों के कारण, अनेक प्रकार के पैतड़े बदलते हुए, वे शिवजी के किये हुए प्रहारों से बचने और उनके साथ युद्ध करने लगे । शरीर पर धारण किये गये चमकते हुए वल्कल ने उस समय उनकी शरीर-शोभा को ख़ूब ही बढ़ा दिया । यों तो वे स्वभाव ही से सुन्दर थे। परन्तु वल्कल पहने हुए, वीरवेश मे, उनकी चारुता और भी अधिक हो गई । पीली पीली चञ्चल प्रत्यञ्चा वाले अपने बहुत बड़े धनुष को खींचते समय वे ऐसे शोभायमान हुए मानो अंशुमाली सूर्य्य ने उल्का-रूपी अग्नि धारण की है । आकाश मे जलती हुई उल्का के योग से सूर्य्य को जो शोभा प्राप्त होती है वही शोभा, अपने धनुष की प्रकाशवती पीली पीली प्रत्यञ्चा के योग से, अर्जुन की भी हुई ।

महादेवजी और अर्जुन दोनों ही अपना अपना रण-नैपुण्य दिखाने लगे । घने मेघों का समूह जैसे सूर्य्य की किरण-माला को ढक लेता है उसी तरह प्रथा पुत्र अर्जुन के शरों ने पशुपति की शर-माला को ढक लिया । महादेवजी भी लगातार बाण बरसाने लगे ।

उन्होंने अर्जुन की अत्यधिक बाण-वृष्टि को अपने बाणों से तितर बितर करके सूर्य्य का गमन-मार्ग तक अवरुद्ध कर दिया । फिर उन्होंने और भी भयङ्कर बाण छोड़े । उन बाणों ने शिवजी के भय-भीत गणों का सारा भय दूर कर दिया । उनके फल, अर्थात् अग्र-भाग बड़े ही तेज़ थे । उनकी पूँछ में मोर-पङ्ख लगे हुए थे । अपनी भयत्रस्त सेना पर अत्यधिक कृपालु हो कर ही शिवजी ने अर्जुन पर इतने तेज बाणों की वृष्टि आरम्भ की। उन्होने सोने के शरों के तार बाँध दिये । वे धड़ाधड़ उनके धन्वा से छूटने लगे । उन शरो के समूह ने आकाश ही को नहीं, स्वर्गलोग तक को व्याप्त कर लिया । उनके छूटते समय इतना भीषण शब्द हुआ कि कितने ही सैनिक तो बहरे होगये और कितनों ही के कानों के परदे फट गये । बिजली की तरह चमकने वाली शिवजी की वह सुवर्ण-शर-माला आकाश मे घण्टों जारी रही । उसने अर्जुन के बाणों को काट-कूट कर न मालूम कहाँ फेंक दिया । उसने स्वयं अर्जुन को भी छेद डाला । परन्तु बाण-विद्ध होने पर भी अर्जुन ने आह तक न की । वे ऐसे वीर्य-शाली और बली थे कि शरों का प्रहार सह कर भी अपनी जगह से तिल भर भी न हटे ।

उस समय अर्जुन की शोभा बहुत ही अवलोकनीय हो गई*।

---

* यहाँ पर भारवि ने एक छोटा सा श्लोक लिखा है । उससे अगराज ( हिमालय ), नागराज ( हाथियों के राजा ऐरावत ) और नागराज ( नागों के राजा शेष ) इन तीनों का अर्थ निकलता है । उन्होंने ऐसे विशेषण दिये हैं जो अर्जुन और इन तीनों में एक से घटित होते हैं—कहीं कहीं सहज ही, कहीं कहीं क्लिष्ट-कल्पना से ।

वे पर्वत-पति हिमालय के सदृश मालूम हुए। जैसे हिमालय "जगती-शरण" है, अर्थात् जैसे वह पृथ्वी को अपनी शरण में रक्खे—उसे धारण किये—हुए है उसी तरह अर्जुन ने भी उसे शरण दी है, अर्थात् उसकी रक्षा करने के लिए उत्पन्न हुए हैं। हिमालय "हरिकान्त" है, अर्थात् रहने के लिए स्थान देने के कारण सिंहों का प्यारा है। अर्जुन भी "हरिकान्त," अर्थात् सिंह के सदृश मनोहर हैं। हिमालय "सुधासित" है, अर्थात् बर्फ से ढके रहने के कारण सुधा के सदृश शुभ्र है। अर्जुन भी "सुधासित," अर्थात् सुधा के सदृश स्वच्छ-शरीर हैं। हिमालय "दानवर्षी-कृताशंस" है, अर्थात् उससे दानव, ऋषि और काम ये कुछ न कुछ फल पाने की इच्छा रखते हैं—उसकी प्रशंसा या स्तुति करते हैं। अर्जुन भी "दानवर्षी" अर्थात् बहुत बड़े दाता और "कृताशंस" अर्थात् विजय पाने की इच्छा रखने वाले हैं।

हिमालय ही के सदृश नहीं, अर्जुन, उस समय, नागों (हाथियों) के राजा ऐरावत के सदृश भी मालूम हुए। ऐरावत "जगतीशरण-युक्त" है, अर्थात् जगती (पृथ्वी) को क्षीण करने वाले राक्षसों के साथ युद्ध करने में समर्थ है। अर्जुन भी "जगती-शरणयुक्त" अर्थात् पृथ्वी को अपनी शरण में रखने के लिए नियुक्त हैं। जैसे ऐरावत "हरिकान्त," अर्थात् इन्द्र का प्यारा है, वैसे ही अर्जुन भी हैं। ऐरावत "सुधासित," अर्थात् अमृत के सदृश शीतल-स्पर्श है। अर्जुन भी, जैसा कि ऊपर कहा गया है, सुधा के सदृश स्वच्छ-शरीर हैं। ऐरावत "दानवर्षी," अर्थात् मदस्रावी है। अर्जुन भी "दानवर्षी," अर्थात् दान की वर्षा करने वाले हैं।

जैसे ऐरावत "कृताशस," अर्थात् युद्ध मे विजय पाने की इच्छा रखने वाला है, वैसे ही अर्जुन भी विजय-प्राप्ति की इच्छा रखने वाले हैं।

उस समय अर्जुन में हिमालय और ऐरावत की तुल्यता तो पाई ही गई; नागराज शेष की सदृशता भी पाई गई। शेष "जगतीशरण-युक्त," अर्थात् पृथ्वी की रक्षा के लिए नियुक्त है। अर्जुन भी इसी काम के लिए नियुक्त हैं। दोनो ही "हरिकान्त" अर्थात् कृष्ण या विष्णु के प्रिय हैं। शेष भी "सुधासित" अर्थात् अमृत-प्रिय है और अर्जुन भी "सुधासित" अर्थात् अमृतवत् स्वच्छ-शरीर हैं। दानवो, ऋषियों और लक्ष्मी ने शेष की प्रशंसा की है। अतएव वह "दानवर्षी कृताशंस" है। अर्जुन भी इनके द्वारा प्रशंसित हैं। इस कारण ये भी वैसे ही हैं।

इस तरह अर्जुन अपने गुणों और कार्यों के कारण एक ही साथ शैलेश्वर, अहीश्वर और ऐरावत की समता को पहुँचे हुए से मालूम हुए। जिसमें ऐसे ऐसे अद्भुत गुण हो वह यदि शिवजी के शरों के प्रहार खाकर भी ज़रा न घबराय तो क्या आश्चर्य!

इसके अनन्तर अर्जुन ने भगवान् त्रिलोचन को आहत करने की बहुत चेष्टायें कीं; परन्तु उन्होने अर्जुन के शरो को काट कर उनका सारा प्रयत्न विफल कर दिया। अपने शरों को इस प्रकार व्यर्थ जाते देख अर्जुन को बहुत क्रोध हुआ। उनकी नाक, कान, मुख—आदि इन्द्रियों से आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं। एक तो उनके सिर पर चमकती हुई पीली पीली जटायें पहले ही आग की लपट के समान मालूम होती थीं। दूसरे, क्रोध से अभिभूत होने पर, उनके शरीर से आग की ज्वाला निकलने लगी। अतएव वे

ज्वालामय से हो गये । उनका तेज शरीर से फूट सा निकला और दूर दूर तक फैल गया । अतएव वे देदीप्यमान ओषधियों और जलते हुए दावानल से व्याप्त हिमालय के समान प्रकाश पुञ्ज से परिपूर्ण दिखाई दिये ।

अर्जुन बड़ा ही भीषण संग्राम करने लगे । उन्होंने अपूर्व रण निपुणता दिखाई । शिवजी के संख्यातीत शरो को उन्होने काट गिराया । यह दशा देख कर शिवजी ने मन मे कहा—इसे अपना भी कुछ बल-पराक्रम दिखा देना चाहिए। इसे मालूम हो जाना चाहिए कि मेरे पराक्रम-पूर्ण कार्यो मे विघ्न डालने वाला कोई नहीं; मेरा वीर्य्य अनिवार्य्य है। यह सोच कर शिवजी ने अपने पिनाक नामक धन्वा पर चढा कर एक ऐसा बाण छोडना चाहा जो अर्जुन के शरीर को अच्छी तरह छेद तो दे, पर उनके प्राण न ले । शिवजी के धनुर्मण्डल से छूटे हुए—सूर्यमंडल से निर्गत किरण-पुञ्ज की तरह—उस शर को हस्त-लाघवपूर्वक काट डालने की इच्छा से अर्जुन ने सैकड़ो-सहस्रो शर अपने धनुष से सहसा छोड़ दिये । उनसे सारा व्योम व्याप्त हो गया । पृथ्वी के ऊपर, आकाश में, छा कर उन्होंने अपनी छाया से पृथ्वी को ढक लिया ।

तदनन्तर, एकमात्र दिव्य दृष्टि ही से जाने जाने योग्य शिवजी ने बड़े वेग से एक बाण छोड़ा । वह बडा ही हृदय-विदारी नाद करता हुआ उनके धनुष से छूटा । उसने अर्जुन के शरों के समूह को काट कूट कर फेंक दिया । फिर वह विदारी, ककुभ, शरफुङ्का, सुपारी आदि की घनी लताओं को चीरता हुआ चला गया ।

शिवजी के बाण अर्जुन पर, लगातार, बड़े वेग से गिरने लगे;

परन्तु पैतड़ा बदलते हुए अर्जुन ने अपने शरों से उन्हे व्यर्थ कर दिया। उन्होंने अपनी बाण-वर्षा से चारों दिशाओं को ढक दिया। युद्ध मे उन्होने अद्भुत चाले चली। पलक मारते ही उन्होंने अपना स्थान बदल बदल कर शिवजी के शरो से अपनी रक्षा की। उन्होने इतनी शीघ्रता से अपना स्थिति स्थान बदला कि युद्ध देखने वाले महर्षियों को वे एक होकर भी अनेक से दिखाई दिये।

अर्जुन के बाणो की संख्या बढती ही गई। उनसे शिवजी के शर कट कट कर पृथ्वी पर गिरने लगे। यह देख कर शिवजी के गणों को हर्षपूर्ण विस्मय हुआ। उन्होने मन ही मन कहा—देखो तो यह मुनि कितना पराक्रमी है। यह तो हमारे स्वामी देवाधिदेव महादेवजी को भी बेतरह तग कर रहा है। शिवार्जुन के इस युद्ध ने इतनी भीषणता धारण की कि उसे देखने के लिए देवताओं और ऋषियो के ठट्ठ के ठट्ठ आकाश में आकर डट गये।

शिवजी को सम्मुख पाकर अर्जुन को अपना बल-वीर्य प्रकट करने के लिए आज जैसा अवसर मिला था वैसा पहले कभी न मिला था। अतएव उन्होंने अपूर्व रण-नैपुण्य और अपूर्व बल-विक्रम दिखाया। सौभाग्यशाली राजकुमार अर्जुन की ऐसी अदृष्टपूर्व वीरता देख कर तत्वज्ञानी मुनियों के शरीर पर भी आनन्दसूचक रोमाञ्च हो आया। उन्होंने परस्पर अर्जुन की प्रशंसा करके उनका बहुत बहुत अभिनन्दन किया।

---

## सोलहवाँ सर्ग।

किराताधिप के वेश मे शिवजी ने अश्रुतपूर्व पौरुप प्रकट किया। उनके युद्ध-कौशल को देख कर अर्जुन के कोप का ठिकाना न रहा। इतना रण नैपुण्य और इतना बल-विक्रम दिखाने पर भी जब वे किरात-नायक से पार न पा सके तब अपनी शक्ति के ह्रास का कारण जानने की चेष्टा करने लगे। बडी देर तक उन्होने विचार किया। उन्होंने मन ही मन कहा—

आज तक बहुत बड़े बडे युद्धों मे शामिल होने का मौका मुझे मिल चुका है। उनके मुकाबले मे यह युद्ध कोई चीज ही नहीं। उन युद्धो मे सख्यातीत हाथियों पर सवार होहोकर बड़े बड़े युद्ध-विद्या-विशारदों ने युद्ध किया था। वे हाथी इतने दीर्घकाय थे कि अपनी ऊँचाई से वे पहाड़ो की ऊँचाई को हंसते-से थे। उन पर्वताकार हाथियों के मस्तक मदस्राव के जल से काले थे। वे युद्ध-संबन्धिनी शिक्षा पाये हुए थे। परन्तु इस युद्ध में तो ऐसे रण-सहिष्णु हाथियों का सर्वथा अभाव है। किरातों की इस सेना में तो ऐसे हाथियों पर सवार होकर युद्ध करने वाले योद्धा ही नहीं। अतएव उन युद्धों की अपेक्षा यह युद्ध बहुत ही हीन है।

बड़े बड़े रथ भी इस युद्ध मे नही। पूर्व के युद्धों में इतने बड़े

मे तो इस तरह के शस्त्र आकाश मे चमचमाते हुए दिखाई ही नही दिये ।

भूत-पूर्व युद्धों मे घोड़ों की टापों और रथों के पहियों की रगड़ से बे-तरह धूल उड़ी थी । वह धूल, वीरों को मारने के लिए आये हुए काल के धूम्रवर्ण प्रभाजाल के सदृश, चारों तरफ छा गई थी । वायु ने उसे आकाश मे यहाँ तक उड़ाया था कि सर्वत्र धूल ही धूल हो गई थी । गधे के वर्ण वाली उस धूमिल धूल के घने पटल के छा जाने से आँखों की गति कुण्ठित हो गई थी । किसी को अपना पराया सूझ ही न पड़ा था । दिन मे ही रात का जैसा अन्धकार हो गया था । अतएव मरे हुए तेजस्वी वीरों को वरण-माल्य पहनाने के लिए उत्सुक हुई सुर-नारियो को दिन मे ही सन्ध्या-काल हो जाने का भ्रम हुआ था । यह बात भी इस युद्ध मे नही । इसमे इतनी धूल ही नहीं उड़ी । घोड़ों और रथों की अधिकता हो तब तो धूल उड़े ।

न इसमे रथो के दैाड़ने की घरघराहट है, न घोड़ों की हिन-हिनाहट है और न बड़े बड़े मतवाले हाथियों की चिग्घाड़ ही है । उन युद्धों मे तो ये सब ध्वनियाँ, परस्पर एक दूसरी से मिल कर, इतनी अधिक हो गई थीं कि उनके कारण दुन्दुभि आदि युद्ध-वाद्यों का शब्द उनमे डूब सा गया था । वह सुनाई ही न पड़ता था । परन्तु इस युद्ध मे यह कुछ भी नहीं ।

पहले के युद्धो मे अपना बल-पौरुष दिखा कर कीर्त्ति-सम्पादन करने की इच्छा रखने वाले वीरों को उनके शत्रुओं ने खूब ही छकाया था । उनकी छातियों पर प्रहार करके उनमें बड़े बड़े घाव

कर दिये थे। इस कारण उनको मूर्छा आ गई थी। तब हाथियों की सूँड़ो में भरे हुए शीतल जल की छींटो से उनकी मूर्छा दूर की गई थी। मूर्छा जाने पर उन वीरों ने फिर उत्साह-पूर्वक युद्ध किया था। इस तरह का दृश्य भी इस युद्ध में नहीं दिखाई दिया।

भूत-पूर्व युद्धो मे रुधिर की नदियाँ बह निकली थीं। उनसे सेना के चलने के मार्ग चलने योग्य ही न रह गये थे, वे उस नदी मे डूब गये थे। सूखने पर रुधिर का अधिकांश उन नदियों के किनारे किनारे जमा हो गया था। अतएव कीचड जमा हो जाने से जैसे साधारण नदियों के तट ऊँचे हो जाते हैं वैसे ही उन युद्धों में शोणित की नदियों के तट ऊँचे हो गये थे। इस तरह की नदियां भी इस युद्ध मे नहीं बही।

इस युद्ध मे तो वैसी एक भी बात मुझे नहीं दिखाई देती। पूर्व-युद्धों में बड़े बड़े हाथियों ने जब अपने दाँतो से विपत्ती वीरों की छाती तोड़ी थी तब उन वीरो को मूर्छा आगई थी। परन्तु उनकी वीरता पर मुग्ध होकर, देवताओं ने जब प्रिया के अङ्क सदृश शीतल मन्दार-माला उन मूर्छित वीरों की छाती पर छोडी थी तब, उसके सुखकर स्पर्श से उनका मोह बहुत कुछ दूर हो गया था। ये बातें भी तो इस युद्ध मे मुझे नहीं देख पड़ी।

भूत-पूर्व युद्धों मे हाथियों पर सवार वीरों के कवचों मे लगी हुई मणियों ने खूब ही अपनी चमक दिखाई थी। हाथियों की सूँड़ो में भरे हुए जल-कण जब उन मणियों पर पड़े थे तब सूर्य्य की किरणों के योग से इन्द्र-धनुष के छोटे छोटे टुकड़े उत्पन्न हो

गये थे। इस तरह के इन्द्र धनुष भी तो इस युद्ध में नहीं दिखाई दिये।

समुद्र के बीच मे पङ्खो से युक्त, अर्थात् सपक्ष, मैनाक पर्वत के घुस पडने पर समुद्र का सलिल जैसे घूमने लगता है—उसमें भँवर उत्पन्न हो जाते हैं—और अत्यन्त घोर नाद सुनाई देने लगता है, उसी तरह पूर्व के बडे बड़े युद्धो मे शत्रुओं का गज-समुदाय जब सेना के बीच मे घुस पड़ा था तब क्षुब्ध हुई सेना चारों तरफ़ चक्कर काटने लगी थी और उसके हाहाकार से सारी समर-भूमि परिपूर्ण हो गई थी। यह भी तो इस युद्ध मे नहीं हुआ।

पहले के युद्धो मे हजारों हाथियों पर सवार सैनिको ने भी युद्ध किया था। उन्हे मारने के लिए वेगगामी रथों पर सवार महा-रथी योद्धा दौड़ पडे थे। उनके शस्त्र-प्रहारो से हाथियों की सैकड़ो सूँड़े जड़ से कट कट कर गिर गई थीं। उनसे रथों के मार्ग रुक गये थे। उन कटी हुई सूँडो के समूह को देख कर ऐसा जान पड़ता था मानों उन्होंने क्रुद्ध होकर ही उन मार्गों को रोक दिया है। क्योंकि, यदि मार्ग न होते तो उस तरफ रथ जा ही न सकते। अतएव रथो पर सवार वीरो के हाथ से सूँड़ो के कट जाने की नौबत ही न आती। यह बात भी तो इस युद्ध में नहीं हुई।

पूर्व-युद्धों में हाथियों पर सवार वीरो के वक्षःस्थलों पर जब तोमर-नामक अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्र लगे थे तब वे भीतर तक घुसते चले गये थे। केवल दस्ते बाहर रह गये थे। वे थे मोरपङ्खों से अलङ्कृत। अतएव प्रहृत वीरों की छातियों पर तोमर तो न दिखाई देता था, मोरपङ्खो का गुच्छा अवश्य दिखाई देता था। इस कारण ऐसा

मालूम होता था जैसे कमलों की माला से वेष्टित, प्रियतमा के शिथिल केशों का कलाप ही शोभा दे रहा हो। पूर्व के युद्धों का यह दृश्य भी इस युद्ध मे देखने को नहीं मिला।

पूर्वयुद्धों मे मैं अपना रण-कौशल यथेष्ट दिखा चुका हूँ। युद्ध भी न मालूम कितने हो चुके हैं। वे युद्ध सर्वथा असामान्य थे। उन युद्धो मे जिस समय असख्य तेजस्वी वीरो ने कट कट कर अपने प्राण छोडे थे उस समय ऐसा जान पड़ा था जैसे त्रिलोकी का भक्षण करने के लिए मृत्यु अपनी जीभ लपलपाती हुई, मुँह बाये, खडी है। अधिक क्या कहा जाय, मालूम होता था कि संसार का संहार होने मे देर नहीं। मृत्यु का वैसा तांडव-नृत्य—मनुष्यों का वैसा संहार—भी इस युद्ध मे नहीं देखा गया।

वे तो बड़े ही हृत्कम्पकारी युद्ध थे। उनके सामने यह युद्ध तो पसंगे में भी नही। यद्यपि यह सच है और यद्यपि मैं अत्यन्त पराक्रम-शाली महारथी वीरों का भी वीर्य्य चूर्ण कर चुका हूँ, तथापि इस क्षुद्र युद्ध मे इस किरात से मैं पार नहीं पाता। जिस शक्ति की बदौलत मैं दुर्वार वीरों को हरा चुका हूँ वही शक्ति आज इस तुच्छ किरात के सम्मुख कुछ भी काम नहीं देती। चंद्र-मंडल में प्रविष्ट हुई सूर्य्य की दीप्ति को क्षीण हुई देख जैसे आश्चर्य्य होता है वैसे ही इस किरात के साथ युद्ध करने में क्षीण हुई अपनी शक्ति को देख कर मुझे आश्चर्य्य होता है। जिसके सामने अलौकिक वीर्य्यवान् और अद्वितीय योद्धा भी नहीं ठहरे वही मैं आज एक वनवासी किरात से अभिभूत हो रहा हूँ! इससे बढ़ कर आश्चर्य की बात और क्या हो सकती है!

क्या यह किसी की माया का प्रभाव है ? क्या किसी देवता ने माया रच कर मेरी शक्ति का ह्रास कर दिया है ? अथवा क्या मेरी बुद्धि का विपर्य्यय हो गया है ? अथवा क्या मैं अब वह पहले का अर्जुन नही ? क्या मैं कोई और ही पुरुष हूँ ? अथवा क्या मेरा बल-वीर्य्य ही एक दम नष्ट हो गया ? मेरे गाण्डीव-धन्वा से छूटे हुए शर जैसा पराक्रम पहले दिखाते थे वैसा इस किरात पर छोड़े जाने पर क्यों नहीं दिखाते ? इसी से मुझे इस प्रकार के सन्देह हो रहे हैं।

जिस समय यह किरात अपने धनुष का टङ्कार करता है उस समय ऐसा मालूम होता है जैसे आकाश फट कर दो टुकडे हो गया हो ! इसके कार्य्य तो इसके वेश के अनुकूल नही। वेश तो इसका किरातों के सदृश है, पर कार्य्य इसका सर्वथा ही अलौकिक है। अतएव, मुझे सन्देह होता है कि यह यथार्थ किरात नहीं; यह तो कोई और ही है। क्योकि, छिपाने पर भी मनुष्य का असली रूप उसकी चेष्टाओं से प्रकट हो जाता है।

इसकी तो सभी बातो मे अलौकिकता है। इसका धनुप तो क्रुद्ध सा होकर आप ही आप अविच्छिन्न नाद करता है। प्रत्यञ्चा इसकी, एक ही दफे खीची जाने पर, घण्टों खिँची हो हुई सी रहती है। बाण इसके इतने वेग और इतनी शीघ्रता से छूटते हैं कि जान पड़ता है उन्हे तरकस से निकालने की आवश्यकता ही नही होती—तरकस से निकाले विना ही वे इसके हाथ में आ जाते हैं। शर-सन्धान मे इसकी फुरती देख कर ऐसा मालूम होता है जैसे बिना मुष्टिबन्धन के ही यह बाण छोडता चला जाता है।

इसके दोनों कन्धे स्थिर और झुके हुए हैं। गरदन इसकी ज़रा भी नही हिलती। आसन बदलने के लिए जब यह एक जगह से दूसरी जगह हटता है तब भी वह ज्यो की त्यों रहती है। इसके मुख पर श्रम और कष्ट का कोई चिह्न नही दिखाई पडता, उलटा उससे चन्द्रमा की जैसी कान्ति झलक रही है। बाण चलाते समय इसे आलीढ और प्रत्यालीढ आदि आसनो का आश्रय अवश्य लेना पड़ता है। परन्तु आसन-ग्रहण और स्थान-परिवर्तन करते समय भी इसका शरीर स्थिर ही रहता है—कहीं किसी भी अवयव में ज़रा भी चञ्चलता नही दिखाई देती। चाहे यह स्थिर लक्ष्य पर बाण मारे, चाहे अस्थिर—अर्थात् हिलते डुलते—लक्ष्य पर, बाण इसका ठीक निशाने पर ही लगता है। और, लगता भी बडी खूबी से है। दूसरे के छिद्र— दूसरे की न्यूनता—का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करके यह वहीं प्रहार करता है। साथ ही अपने रन्ध्रो—अपनी न्यूनताओं का ज्ञान यह दूसरे को नहीं होने देता। अपने रन्ध्रों का रक्षण यह आश्चर्य्य-जनक रीति से करता है। इन गुणों का होना तो आचार्य्य द्रोण अथवा भीष्म मे भी असम्भवनीय सा है। धनुर्विद्या के इन रहस्यों को वे भी शायद ही जानते हों। फिर भला एक असभ्य बनेचर में इन बातों का होना कैसे सम्भव है! इसी से मुझे सन्देह होता है कि यह किरात नहीं। यह तो किरात के बेश में कोई अमानुष पुरुष है। अतएव इसके साथ साधारण शस्त्रास्त्र से युद्ध करके मैं पार न पाऊँगा। इस रण-मद-मत्त किरातरूपी असाधारण पुरुष को जीतने और इसके बल-वीर्य्य को नष्ट करने के लिए मुझे किसी दिव्य अस्त्र का प्रयोग करना चाहिए। बात

यह है कि रोग और शत्रु एक ही से अनिष्टकारी होते हैं। रोग, बहुत क्षुद्र होने पर भी, उपेक्षा करने से, बढ़ कर अत्यन्त अपाय-कारक हो जाता है। क्षुद्र शत्रु भी, उपेक्षा करने से, भविष्यत् मे अधिक बली होकर, बहुत बड़ी हानि कर सकता है। अतएव यह किरात उपेक्षणीय नहीं। तुच्छ होने पर भी यह दिव्यास्त्र द्वारा मारा जाने योग्य है।

मन मे इस प्रकार सोच कर महावीर अर्जुन ने निश्चय किया कि किरात-वेशधारी अपने शत्रु शिवजी का, तथा उनके गणों का भी, बल अवश्य ही नष्ट कर देना चाहिए। अतएव आधी-रात का मेघाच्छन्न समय जैसे अन्धकार को धारण करता है वैसे ही उन्होने अपने तरकस से प्रस्वापन (निद्रोत्पादक) अस्त्र खींच कर झट पट उसे हाथ में धारण किया। धनुष पर चढा कर उस बाण को छोड़ते ही बड़ी अद्भुत घटना हुई। अन्धकार की अत्यधिक राशि, महावन पर छा कर, जैसे उसे अन्धकारमय कर देती है वैसे ही बढ़े हुए दावानल के धुवें के सदृश धूसर-वर्ण की काली काली छाया, सूर्य्य के तेज का अवरोध करके, शिवजी के सैन्य पर छा गई। अतएव वह सैन्य निबिड़ अन्धकार मे डूब सा गया। उस छाया के फैलते ही शिवजी के गण एक ऐसी आकस्मिक निद्रा मे निमग्न हो गये जैसी निद्रा का उन्होने तब तक कभी अनुभव ही न किया था। उस भयङ्करी निद्रा ने उन्हे बलपूर्वक सुला दिया। उनके सारे व्यापार बन्द हो गये। किसी सभा मे पहले ही पहल गये हुए मनुष्य की प्रज्ञाशक्ति जैसे नष्ट सी हो जाती है— उसकी अक्ल जैसे मारी जाती है—उसी तरह उस निद्रा में निमग्न होते ही शिवजी के

गणों की प्रज्ञा-शक्ति नष्ट हो गई। उनके होश-हवाश एक दम जाते रहे।

अर्जुन के छोड़े हुए प्रस्वापन-अस्त्र के प्रभाव से शिवजी के गणों की सेना किसी काम की न रह गई। वह सब की सब ज्ञान-शून्य होकर सो गई। विपत्ति आने पर मनुष्य अपने सद्वंश-जात मित्रों के गौरवशाली, सद्गुणी, चिर-परिचय के कारण विज्ञात-बल और स्थिर कुलों का आश्रय लेकर किसी तरह अपने दिन काटते हैं। शिवजी के कुछ गणो ने भी इस विषय मे ऐसा ही किया। उन्होंने, ऐसे कुलों ही के सदृश, अपने सद्वंश-जात अर्थात् बाँस के, बहुत बड़े, बहुत स्थिर अर्थात् दृढ़, गुण अर्थात् प्रत्यञ्चा से समन्वित, और बहुत समय से परिचित होने के कारण विज्ञात-सार धनुषों का सहारा लिया। उन्हें टेक कर वे जहाँ के तहाँ मूर्ति-वत् अचल खड़े रह गये।

कुछ का तो यह हाल हुआ, कुछ का इससे भी बुरा। किसी कृतकार्य्य का फल जैसे दैव-दुर्विपाक की विपरीतता के कारण हाथ से जाता रहता है वैसे ही पाण्डु-पुत्र अर्जुन के प्रस्वापनास्त्र की विपरीतता के कारण कितने ही गणों के हाथों से उनके शस्त्रास्त्र अकस्मात् छूट गये। उस अस्त्र के प्रभाव से उनके हाथों मे अपने शस्त्र थामने की शक्ति ही न रह गई। सो जाने के कारण उनके हाथ शिथिल हो गये और धारण किये गये शस्त्र गिर पड़े। अतएव सारे गण निरस्त्र और ज्ञान-शून्य खड़े रह गये।

इतने पर भी कुछ गण सज्ञान दशा में बने रहे। पर उनके भी धैर्य्य ने बहुत देर तक उनका साथ न दिया। कुछ ही देर मे

उन्होंने पेड़ो का सहारा लिया। मदमत्त हाथी जैसे आँखे बन्द करके और सूँड़ को नीचे ढीली छोड़ कर, किसी बड़े पेड़ के सहारे, लीला-पूर्वक खड़ा रह जाता है वैसे ही वे गण भी पेड़ों के सहारे, उनकी डालो पर अपने अपने कन्धे टेक कर, किसी तरह खड़े हो गये। उनमे भी अपने बल खड़े होने की शक्ति न रह गई। वे भी प्रस्वापनास्त्र के प्रभाव से शिथिल-शरीर होकर खड़े खडे सो गये।

तब शिवजी ने अर्जुन के छोड़े हुए प्रस्वापनास्त्र के प्रबल प्रभाव को दूर कर देना चाहा। उनके शीश पर शशि का सदा ही वास रहता है। परन्तु, किरात का वेश धारण करने के कारण उस समय उसे उन्होंने छिपा लिया था। तथापि उनके शीश पर जो जगह चन्द्रमा की थी उसी जगह से एक पीला पीला तेजोमण्डल निकला और ऊपर आकाश की ओर चला। सुमेरु-शृङ्ग से निकले हुए सूर्य्य-बिम्ब की तरह वह तेजोमण्डल तपस्वियों के आश्रमों को प्रभापूर्ण करता हुआ चारों तरफ़ फैल गया। उसने अर्जुन के प्रस्वापनास्त्र के प्रभाव से उत्पन्न हुई तमोमयी निद्रा को इस तरह दूर कर दिया जिस तरह कि तत्त्वज्ञान का उदय अविद्या को दूर कर देता है। उसके फैलते ही गणों को सारे पदार्थ पूर्ववत्, अपनी ठीक दशा में, दिखाई देने लगे। उनका मोह दूर हो गया। उस तेज का विस्तार धीरे धीरे और भी बढ़ा। उसने मेघों को लाल कर दिया। अतएव ऐसा मालूम होने लगा जैसे अभी प्रातःकाल हुआ हो। तेज के इस पुञ्ज के प्रकट होने पर सैनिकों के लोचन-पङ्कज विकसित हो गये; उनकी निद्रा जाती रही—वे सब सोते से जाग पड़े। रात के समय, मेघों के पटल से छूटे हुए दिशाओ के रमणीय समुदाय जिस

प्रकार नक्षत्रों को फिर धारण कर लेते हैं उसी प्रकार अर्जुन के उस अस्त्र के प्रभाव से मुक्त होकर जगे हुए गणों ने फिर से अपने अपने शस्त्रास्त्र धारण कर लिये। बे-होशी मे जो शस्त्रास्त्र उनके हाथ से गिर गये थे उन्हे, होश आजाने पर, उन लोगों ने फिर उठा लिया। रात बीत जाने पर प्रातःकाल जो दृश्य दिखाई पड़ता है वही दृश्य उस समय दिखाई दिया। दिशायें स्वच्छ हो गईं। सूर्य्य की किरणे चारों तरफ निर्बाध फैल गईं। आकाश प्रफुल्लित सा हो उठा। दिन-सम्बन्धिनी शोभा फिर दिन को प्राप्त हुई।

अर्जुन ने देखा कि मेरा यह भी प्रयत्न व्यर्थ गया। मेरे प्रस्वापनास्त्र रूपी क़िले को शत्रु ने दिग्गज की तरह तोड़ दिया। तथापि, अत्यन्त भुज-बलशाली होने के कारण, वे हतोत्साह न हुए। उन्होंने अपने शत्रुओं पर सर्पास्त्र छोड़ा। उसके छूटते ही भुजङ्गों की महा भयङ्कर सेना चारों तरफ़ दौड़ पड़ी। उनकी सैकड़ों, हज़ारों जीभों से बिजली के समान चञ्चल विषाग्नि की लपटें निकलने लगी। उस सर्प-सेना को देखते ही भयभीत हुए व्योमचारी प्राणी भाग चले। वह सेना धीरे धीरे आकाश मे सर्वत्र फैल गई। कहीं रत्ती भर भी जगह ख़ाली न रह गई। उस सेना के सर्प बड़े ही भीमकाय थे। उनके आकार दिग्गजों की सूँड़ों के सदृश मोटे और लम्बे थे। उनके काले काले शरीर इन्द्रनील-मणियों के सदृश चमक रहे थे। वह सेना, उस समय, नभोरूपी नीरनिधि मे उठी हुई तरङ्ग-माला के सदृश मालूम हुई। उसके भीम भुजङ्गमों के ऊँचे उठे हुए फनों से धुवे के सदृश निःश्वास-वायु बड़े ज़ोर से निकलने लगी। उससे सूर्य्य का किरण-जाल छिप गया और ऐसा मालूम

होने लगा जैसे वह अस्त हो रहा हो। तेज का तिरोधान हो जाने के कारण सूर्य्य का बिम्ब आँखों से अच्छी तरह, सुख-पूर्वक-देखने-योग्य होगया।

उन महा-विषधर सर्पों के नेत्रों से बहुत बड़ी उल्काओं के समान ज्वालायें निकल पड़ीं। उनकी लपटों से दिशायें लाल हो गईं, क्योंकि वे तपे हुए सोने की कान्ति के सदृश थी।

शत्रु के द्वारा घेरे जाने पर नगर की जो दशा होती है वही दशा उन सर्पों से आवृत होजाने पर नभोमण्डल की भी हुई। जिस समय शत्रु किसी नगर को घेर लेता है उस समय लोगों का आवागमन बन्द हो जाता है। नगर की सारी शोभा जाती रहती है। जगह जगह उसमे आग लगा दी जाती है। उस आग से निकले हुए धुवें से सभी दिशायें व्याप्त हो जाती हैं। अर्जुन के छोड़े हुए दिव्यास्त्र-सम्बन्धी सर्पों से घिर जाने पर, आकाश में भी पक्षियों तथा सिद्धो आदि का आवागमन बन्द हो गया। उसकी भी शोभा क्षीण हो गई। सर्पों की आँखो से निकली हुई विषाग्नि सर्वत्र जल उठी और उसके धूम-पुञ्ज से दिग्विभाग आकुल हो उठे। अर्जुन के इस सर्पास्त्र को भगवान् पशुपति ने, मन्त्रद्वारा उत्पन्न किये गये गरुडों के समूह से, इस तरह शीघ्र ही नष्ट कर दिया जिस तरह कि साम आदि उपायों के द्वारा वीर नेता अपने शत्रु के आक्रमण को निष्फल कर देता है। शिवजी ने गारुड़ास्त्र छोड़ कर अर्जुन के सर्पास्त्र का निवारण एक पल में ही कर दिया।

गारुड़ास्त्र चलाये जाने पर बड़े ही अद्भुत व्यापार हुए। देवताओं की पलकें कभी बन्द नहीं होतीं। परन्तु इस अस्त्र का

आविर्भाव होते ही उनकी आँखों पर प्रकाश-पुञ्ज का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने भी झट अपनी आँखें बन्द कर लीं । सुवर्ण-वर्ण गरुड़ों के समूह प्रकट होते ही व्योम बड़े ही दिव्य तेज से व्याप्त हो गया और ऐसा मालूम होने लगा जैसे बिजली चमक रही हो ।

ज्यों ही गरुडों के झुण्ड के झुण्ड आकाश मे उड़े त्यों ही उनके पङ्खो के आघात से वायु ने बड़ा ही विकराल रूप धारण किया । उसकी गति अनेक प्रकार की हो गई । प्रलय-काल के सदृश वह बड़े वेग से चलने लगी । फल यह हुआ कि बड़े बड़े वृक्षों के घने वन उखड उखड़ कर, पुराने तिनके की तरह, उड़ने लगे । वायु के इस प्रचण्ड वेग में पड़ कर वे सैकड़ों-सहस्रों वृक्ष मण्डलाकार घूमते हुए आकाश मे पहुँच गये । वायु ने उन्हे पहले तो उखाड़ डाला, फिर मण्डलाकार घुमाया, तदनन्तर वह उन्हे आकाश मे उड़ा ले गई ।

शिवजी के गारुड़ास्त्र के गरुड़ सोने के थे । उनके शरीर से, खण्ड खण्ड किये गये मैनसिल के समान, समुज्ज्वल द्युति निकल रही थी । उस द्युति से गरुड़ों के पीछे वाला आकाश-खण्ड परिपूर्ण हो गया—अर्थात् उड़ते समय प्रकाश-पुञ्ज पीछे की ओर फैला । अतएव आकाश का वह अंश प्रभा से छिपा गया । उधर उनके विशाल वक्षःस्थलों के आघात से आकाश का पुरोवर्ती अंश कटता सा गया । उस समय ऐसा मालूम हुआ जैसे गरुड़ों के भय से आकाश स्वयं ही उनका मार्ग छोड़ता चला जा रहा हो ।

गारुड़ास्त्र-सम्बन्धी सर्प-समूहों के वेग-पूर्वक उड़ने से जो आँधी

सी चली तो बेचारे हिमालय के शिखर हिल गये। वे डगमगाने और टूट टूट कर गिर जाने के लक्षण दिखाने लगे। उनकी यह दशा देख कर ऐसा मालूम होने लगा जैसे उन सोने के गरुड़ों के लाल लाल तेज को अपने गुहारूपी मुखों से मदिरा के समान पी कर हिमालय मतवाला हो गया हो। अतएव वह काँप रहा हो। पक्षियों के उस समुदाय ने दिन-रात की सन्धि, अर्थात् सन्ध्या, की दीप्ति धारण की। उस अरुण प्रकाश के पुञ्ज से पृथ्वी और आकाश दोनों ही व्याप्त हो गये। अतएव उधर आकाश मे तो सूर्य्य का बिम्ब उस प्रकाश मे डूब सा गया और इधर पृथ्वी में उपवनों के भीतर जो छाया थी उसका भी तिरोधान हो गया। सर्वत्र फैल जाने से प्रकाश-पुञ्ज ने छाया की जगह ले ली।

गरुड़ों के उस परम तेजस्वी सैन्य ने अर्जुन के अस्त्र-सम्बन्धी सर्पों का तत्काल ही नाश कर दिया। वे सब के सब न मालूम कहाँ चले गये। जिस तरह किसी बहुत बड़े यज्ञ मे, कोई कर्म-स्खलन-रूपी दोष हो जाने पर, किसी महासामर्थ्य-शाली प्रायश्चित्त के अनुष्ठान से उसकी शान्ति हो जाती है उसी तरह शिवजी के गारुड़ास्त्र ने अर्जुन के सर्पास्त्र की समूल शान्ति कर दी।

जिसका जितना भाग्य होता है फल भी उसे उतना ही मिलता है। अर्जुन के सर्पास्त्र ने, जहाँ तक उसकी शक्ति थी, पराक्रम दिखाया; परन्तु शिवजी का भाग्य अर्जुन के भाग्य से अधिक प्रबल होने के कारण वह और कुछ न कर सका। विफल-प्रयत्न होकर वह वहीं शान्त हो गया। उधर शिवजी का भाग्य विशेष प्रबल होने के कारण उनका पौरुष सफल हो गया। यह दशा देख कर कुपित

हुए अर्जुन ने बिना ईंधन ही के प्रज्वलित होने वाले अग्निरूपी अस्त्र को तुरन्त उठा लिया। ज्यों ही उन्होंने उस आग्नेयास्त्र को छोड़ा त्यों ही ऊपर, नीचे, दाहने, बायें, चारों तरफ़ आग की ऊँची ऊँची लपटें उठने लगीं। वे यहाँ तक बढ़ीं कि मेघ-मालाओं तक को जला कर उनके ऊपर निकल गईं। आग ने, उस समय, छलाँग मारने के लिए उद्यत सिंह की सी आकृति धारण की। प्राणियों का समूल संहार करने की इच्छा प्रकट सी करती हुई वह ऊपर को उड़ी। उसने अपनी प्रभा से सूर्य्य की किरणों की प्रभा को छेद सा डाला— उन्हें क्षीण-प्रभ कर दिया। अङ्गार उड़ उड़ कर चारों तरफ़ गिरने लगे। बड़ी बड़ी शिलाओं के विदीर्ण होने से जैसा घोर रव होता है वैसा ही घोर रव करती हुई वह प्रचण्ड आग सर्वत्र धक धक जलने लगी। वायुवेग से वह धीरे धीरे दूर दूर तक फैल गई। कहीं उसने सोने की खाइयों का आकार धारण किया; कहीं ऊँचे ऊँचे शिखर वाले सुवर्ण-पर्वतों का आकार धारण किया; कहीं सोने के नगरों का आकार धारण किया और कहीं खिले हुए पलाश के लाल लाल वनों का आकार धारण किया। मतलब यह कि जहाँ उसे वायु की जितनी अनुकूलता प्राप्त हुई वहाँ उसने उतना ही बड़ा और उतना ही भयङ्कर आकार धारण किया।

हिलते हुए नवीन पत्तों के समान लाल लाल लपटें बहुत दूर तक आकाश में ऊँची चली गईं। वे मेघ-मण्डलों तक जा पहुँचीं। घने अञ्जन के समान काले काले मेघों के नीचे के अंश को उन्होंने चाटना शुरू कर दिया। अतएव कुछ ही क्षणों में उनका जल

सूख गया। जल सूख जाने से उन मेघांशों की श्यामता भी जाती रही। वे मोती के समान शुभ्र हो गये।

शिवजी ने सोचा कि कल्पान्तकाल के समान महा-भयानक आग की चलायमान ज्वाला तो अब इतनी भीषण हो गई है कि मालूम होता है वह समस्त संसार को जला कर ख़ाक ही कर देगी; अतएव इसका शीघ्र ही निवारण करना चाहिए। यह सोच कर उन्होने महामेघों से अपने मनोनुकूल काम कराने वाले वारुणास्त्र को खींच कर चाप पर चढ़ाया। उस अस्त्र के छूटते ही विद्युल्लताओं से आलिङ्गित और पर्वतों के समान विशालाकार काले काले मेघों की घटाये चारो तरफ़ आकाश मे उमड़ आई, और उनसे इस प्रकार मूसलधार पानी बरसने लगा मानों आकाश से बड़ी बड़ी नदियाँ, नीचे मुख किये हुए, अपने पानी का प्रवाह छोड़ रही हो। आग की ऊँची उठी हुई लपटों पर वृष्टि की जो पहली धाराये गिरी तो वे और भी भड़क उठीं। पानी डालने पर अग्नि-शिखा अवश्य ही कुछ और ऊँची हो जाती है, यह बात हम लोग प्रायः रोज़ ही प्रत्यक्ष देखते हैं। यही दशा अर्जुन के छोड़े हुए अग्न्यस्त्र की आग की हुई। उसकी भी ज्वाला अधिक धधक उठी। इधर तो पानी पड़ने से आग की लपटे ऊँची हो गईं; उधर तपे हुए लोहे पर पानी पड़ने से जैसा शब्द होता है वैसा ही, पर अत्यन्त भयदायक, नाद उस आग से सुनाई दिया। तपे हुए तवे पर पानी का बूँद पड़ने से थोड़ा ही शब्द होता है। उस दिगन्त-व्यापिनी आग पर मूसलधार वृष्टि होने से जो भयङ्कर शब्द हुआ होगा उसका अन्दाज़ा सहज ही मे किया जा सकता है।

उस महा-प्रचण्ड अग्नि के समूह में इतने ज़ोर और इतने विस्तार से पानी पड़ने लगा मानों मेघों के सफ़ेद सफ़ेद टुकड़ो की चादरे सी आसमान से नीचे गिर रही हों। पानी की बूँदें देखने ही मे न आईं। आकाश से पृथ्वी तक जल की सफ़ेद सफ़ेद चादरे सी लटक गईं। पानी का वह प्रचण्ड पुञ्ज आग में गिर गिर कर खौलने लगा। इस कारण सर्वत्र फेना ही फेना हो गया। तदनन्तर जल के जल जाने पर धुवे की बहुत बड़ी बड़ी लोटें ऊपर को उठी। उनसे सारा आकाश आच्छादित होगया। आग पर गिरी हुई जल-धाराओं ने वही दृश्य दिखाया जो दृश्य भीगा हुआ ईंधन दिखाता है। भीगी लकड़ी जलाने से उसके भीतर का जलीय अंश बाहर निकल आता है और उबलने लगता है। उस समय वह फेने का रूप धारण करता है। फिर उसका काढ़ा सा बन जाता है। तदनन्तर वह जल कर नष्ट हो जाता है और कुछ देर तक उससे धुवाँ मात्र निकलता रहता है।

कुछ समय के अनन्तर उस आग से कहीं सफ़ेद, कहीं नीला और कही लाल धुवाँ निकलने लगा। अतएव उस रङ्ग-बिरङ्ग धुवें से युक्त होने के कारण आग ने इन्द्र-धनुष की शोभा क्षीण कर दी—शोभा में वह उससे भी बढ़ गई। उस समय उसकी लपटें चीन के चित्र-विचित्र हिलते हुए वस्त्र के सदृश सुन्दर मालूम होने लगीं।

मेघों से हहराती हुई जल-वृष्टि की धारा के आघात से आग के जलने का शब्द और भी गम्भीर हो गया। साथ ही बादलों में चमकती हुई बिजली की दीप्ति के मिश्रण से उसकी दीप्ति भी अधिक

होगई। इसके सिवा धुवे का मण्डल भी पहले की अपेक्षा अधिक ऊँचा और घना हो गया। बुझने के पहले दीपक का प्रकाश जैसे पहले की अपेक्षा अधिक हो जाता है वैसे ही समूल शान्त होने के पहले उस आग का तेज भी बढ़ गया। शब्द भी उसका पहले से अधिक हो गया और धुवाँ भी पूर्वापेक्षा अधिकता से निकलने लगा।

बढ़े हुए समुद्र की तरङ्गों के समूह के सदृश उस जल-समुदाय ने आग की लपटों को धीरे धीरे बिलकुल ही शान्त कर दिया। उसका जलना बन्द हो गया। उसके अङ्गार मात्र कहीं कहीं बेबुझे रह गये। उस समय वे अङ्गार सायङ्कालीन मेघों के छोटे छोटे अरुण-वर्ण टुकड़ों के समान जहाँ तहाँ पड़े दिखाई देने लगे।

पदार्थ चाहे जितना तेजस्वी क्यों न हो, यदि उसकी जड़ काट दी जाय तो वह यहाँ तक नष्ट हो जाता है कि फिर उसका कभी उत्थान नहीं हो सकता। देखिए न, आकाश मे मेघपटलों तक पहुँची हुई आग के दिगन्तव्यापी समूह की भी जड़ सलिल-समूहों ने काट दी। इसी से उसका नितान्त नाश हो गया।

अर्जुन के अग्न्यस्त्र की आग बुझा कर कज्जल-गिरि के कगारों के सदृश काले काले मेघों के पटल कृत-कृत्य होकर आकाश से तिरोहित हो गये। उनके हट जाने पर, स्वच्छ कान्तिधारी, फूले हुए नील कमलो के सदृश, आकाश की शोभा पहले से भी अधिक निर्म्मल होगई। उस समय ऐसा मालूम होने लगा जैसे आग से तपाये या जलाये जाने ही के कारण आकाश का वर्ण पहले की अपेक्षा अधिक सुन्दर हो गया हो।

अर्जुन यद्यपि बड़े ही रण-निपुण थे—रण-सम्बन्धिनी चालों और उपायों के यद्यपि वे बहुत ही अच्छे ज्ञाता थे—तथापि उनका एक भी उपाय सफल न हुआ। अपने शत्रु को हराने के इरादे से उन्होने जिन विविध अस्त्रो का उपयोग किया उन सभी को उनके शत्रु शशिशेखर ने इस तरह शीघ्र ही व्यर्थ कर दिया जिस तरह कि न्याय-निष्ठ पुरुष के पौरुष को प्रतिकूल हुआ दैव नष्ट कर देता है।

भविष्यत् मे हज़ार गुना अधिक कर के देने की इच्छा रखने वाले सूर्य्य के द्वारा, नदी-तड़ाग आदि का जल हरण किया जाने पर, मनुष्य जैसे अपने भुज-बल से कुवाँ आदि खोद कर अपने निर्वाह का उद्योग करता है उसी तरह भगवान् भूतपति के द्वारा अपने शस्त्रास्त्र विफल किये जाने पर, अर्जुन ने अपने भुजबल से ही शिवजी को जीतने का इरादा किया। शस्त्रास्त्र विफल हो जाने से यद्यपि उनकी महिमा बहुत कुछ क्षीण हो गई, तथापि स्वभाव से वे बड़े ही सामर्थ्य-शाली थे। इसीसे शस्त्रास्त्रों के व्यर्थ जाने पर भी उन्होंने उद्योग-रहित होना उचित न समझा। उन्होंने कहा—क्या हुआ जो इस किरात पर मेरे शस्त्रास्त्र नहीं चले। मेरी भुजायें तो अब तक अक्षत हैं। उन्हीं से मैं इसे युद्ध का मज़ा चखाऊँगा।

---

## सत्रहवाँ सर्ग।

शस्त्रास्त्र मनुष्य का उद्धार आपदाओं से उसी तरह करते हैं जिस तरह कि सच्चे मित्र करते हैं। इस विषय मे मित्र और शस्त्रास्त्र एक सा काम देते हैं। परन्तु ऐसे विकट प्रसङ्ग के आने—ऐसी भारी आपत्ति मे फँसने— के कारण त्रस्त हो जाने पर भी अर्जुन के शस्त्रास्त्रो ने काम न दिया। वे व्यर्थ हो गये। तथापि अर्जुन ने धैर्य्य न छोड़ा। उन्होने कहा—कुछ हर्ज नही जो मेरे शस्त्रास्त्र विफल हो गये। मेरा यह बहुत बड़ा शरासन तो विफल नहीं हुआ। यह तो अभी मेरे हाथ मे ही है। यह कोई साधारण शरासन नहीं। यह मेरे पौरुष ही के समाने अत्यन्त गौरवशाली है। इस प्रकार सोचने पर उनकी शरीर-शोभा कुछ बढ़ गई। उन में तेजस्विता का विशेष सञ्चार हो आया।

अर्जुन को इस बात से तो बड़ी प्रसन्नता थी कि आज मुझे बहुत बड़े शत्रु के साथ लड़ने का मौका मिला है; परन्तु जब वे यह सोचते थे कि शत्रु को मैं जीत न सका—अब तक जीत उसी की है—तब उनका चित्त खिन्न भी हो जाता था। अतएव प्रसन्नता और खिन्नता, इन दोनो के चिह्न, साथ ही, उनके चेहरे पर प्रकट होने से वे उस समय पहाड पर जलते हुए उस अग्नि-समूह के सदृश

मालूम हुए जिससे बहुत धुआँ निकल रहा हो, अतएव जिसका अस्तित्व साफ़ प्रकट होने पर भी प्रकाश साफ़ साफ़ न दिखाई देता हो ।

उन्होंने सब बातों का अच्छी तरह विचार करके अपने तेज को स्खलित न होने दिया । उनका तेज था भी बहुत विशेष । शत्रुओं से उसका हरण किया जाना सर्वथा असम्भव था । इतने तेजस्वी होने के कारण उन्होंने मित्र के सदृश ही धैर्य का अवलम्बन किया । उनके अस्खलित प्रभाव वाले धैर्य ने इस शत्रु-सङ्कट के समय उनको करावलम्ब सा दिया । डूबते हुए मनुष्य को किसी के हाथ का सहारा मिल जाने से उसे जैसे बच जाने की बहुत कुछ आशा हो जाती है वैसे ही धैर्य-रूपी करावलम्ब प्राप्त होने से अर्जुन को भी इस दुस्तर सङ्कट से पार हो जाने की आशा हुई ।

अर्जुन यद्यपि बड़े वीर और बड़े पराक्रमी थे और इसी कारण उन्होंने इस विपन्न दशा को पहुँचने पर भी धैर्य न छोड़ा, तथापि एक बात से उन्हें बहुत परिताप हुआ । उन्होंने सोचा—और तो जो कुछ हुआ सो हुआ, यह किरात तो, वधू की तरह, मेरी कीर्ति को भी मेरे सामने से, बल-पूर्वक, छीन ले जाना चाहता है । मैंने एक ऐसे वंश में जन्म लिया है कि कीर्ति मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी है । और वस्तुओं की अपेक्षा कीर्ति-रक्षा का सबसे अधिक ख़याल मुझे है । किसी कुलीन मनुष्य की स्त्री को उसका शत्रु यदि उसके सामने ही हर ले जाने की इच्छा करे तो उसे उस समय जितना दुःख और शोक होगा उतना ही दुःख और शोक मुझे अपनी कीर्ति के छिन जाने से होगा ।

गङ्गाजी ने आकाश से गिर कर बद्धमूल हिमालय को जड़ से उखाड़ डालने की इच्छा की थी। परन्तु शङ्कर ने उसके वेग को बिलकुल ही क्षीण कर दिया। अतएव गङ्गा के प्रवाह का कुछ भी वश न चला। अर्जुन भी चाहते थे कि हिमालय के सदृश ही बद्धमूल विपक्षी को मैं जड से उखाड फेकूं, परन्तु शिवजी ने गङ्गा के वेग ही के सदृश उनका भी सारा बल-वीर्य्य थोड़े ही प्रयास से व्यर्थ कर दिया। शिवजी के प्रभाव से उनके शस्त्रास्त्र शक्ति-हीन होकर व्यर्थ होगये। तथापि, अब तक, निष्फल प्रयत्न होने और शस्त्रास्त्रो के व्यर्थ जाने पर भी, अर्जुन ने फिर भी जय-प्राप्ति के लिए अपने शरों का आश्रय लेना चाहा। अर्जुन के शर-प्रयोग, अभ्यास और तत्सम्बन्धी अनेक गुणों के कारण चित्त को चमत्कृत करने वाले थे। वे सुप्रयोग, शिक्षाभ्यास और अलङ्कारादि गुणों के कारण हृदयानन्द देने वाले शब्दो के सदृश थे। ऐसे सुन्दर शब्दों से वैयाकरण जिस प्रकार शब्दार्थ-साधन करते हैं उसी प्रकार अर्जुन ने भी धनुर्वेद-शिक्षा और शर-प्रयोग-विधि के अभ्यास आदि के बल पर अपने अनेक-गुण-पूर्ण शरों से विजय साधन करना चाहा।

शिवजी के साथ फिर युद्ध करने के लिए तैयार होने पर, अर्जुन का तेज पहले की अपेक्षा अधिक यद्यपि होगया, तथापि इस बात से उन्हें फिर भी दुःख हुआ कि पहले के युद्धों में उनकी शक्ति का इतना ह्रास न हुआ था जितना इस युद्ध में हुआ। अपनी इस न्यूनता का विचार करके वे क्रोध से अभिभूत हो उठे; और, बहुत बड़ा सर्प जैसे अपनी आँखों से विष बरसाता है उसी तरह वे अपनी दोनों आँखो से क्रोधजनित आँसू बरसाने लगे।

युद्ध में परिश्रम पडने के कारण अर्जुन के केश उनके शीश पर बिखर रहे थे। आँखे उनकी क्रोध से लाल हो रही थीं। कोपाग्नि से तपे हुए उनके मुख पर सूर्य्य की धूप ने पसीना उत्पन्न करके उसे धो सा दिया। अतएव, उनके मुँह की अरुणता और भी झलक उठी। उस समय क्रोधान्धकार से आच्छादित हुए अर्जुन ने अपने मुख पर, रण मे फिर शीघ्र ही प्रवृत्त होने की सूचक, भ्रू-भेदरूपी तीन रेखाये इस प्रकार धारण की जिस प्रकार कि मेघ-माला से आच्छादित सूर्य्य, भावी वृष्टि की सूचक, किरण-माला की तीन ऊर्द्ध्वगामिनी रेखाये धारण करता है।

इसके अनन्तर, पर्वत के शिखर को दिग्गज जिस तरह अपनी सूँड से उठा लेता है उसी तरह अर्जुन ने अपने मेघ-गम्भीर-ध्वनि करनेवाले शरासन को हाथ से उठा कर व्योमव्यापी नाद किया। फिर, उन्होने शिवजी की सेना को अपनी शर-माला से इस तरह सन्तप्त किया जिस तरह मनोज युवकों के चित्त को प्रेम-पात्र-सम्बन्धिनी चिन्ता से सन्तप्त करता है। परन्तु भगवान् नीलकण्ठ पर अर्जुन की इस बाण-वृष्टि का कुछ भी असर न हुआ। शास्त्रो का मर्म जानने में निश्चित-बुद्धि मनुष्य के विषय मे वक्ता की प्रामाणिक अर्थ-समर्थकता जैसे व्यर्थ जाती है, पक्षपातहीन समदर्शी पुरुष के विषय मे गुण-सम्बन्धिनी असूया जैसे कुछ भी प्रभाव नहीं उत्पन्न कर सकती और किसी तरह न जानने योग्य अगोचर ब्रह्म के विषय मे वाणी की गति जैसे कुछ काम नहीं कर सकती उसी तरह अर्जुन के छोड़े हुए शरों की शक्ति भी शिवजी के शरीर पर कुछ भी काट न कर सकी। वह निष्फल गई, उससे शिवजी को कुछ भी व्यथा

न हुई। हेमन्त-ऋतु के सूर्य्य की किरणें अत्यन्त ऊँचे हिमालय के कगारों पर गिर कर जैसे उसे व्यथा पहुँचाने मे समर्थ नही होती उसी तरह अर्जुन के बाण भी शिवजी को व्यथित करने मे समर्थ न हुए। तथापि एक बात हुई। उन बाणो के स्पर्श से शिवजी को अर्जुन के तीव्र पराक्रम का अनुभव अवश्य हो गया। अपने अधः-स्थित कगारो पर किये गये, ऐरावत के दाँतो के असह्य आघात का अनुभव जैसे हिमालय करता है वैसे ही अर्जुन के पराक्रम का अनुभव शिवजी ने किया। इससे उन्हे क्लेश तो हुआ नही, उलटा आनन्द हुआ। अर्जुन का प्रबल पराक्रम देख कर वे मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। कारणो के भी कारण—ब्रह्मादि देवताओ के भी उत्पादक—शिवजी ने अर्जुन के द्वारा किये गये उन आघातों—उन जियादतियों—को सुख-पूर्वक सह लिया। बात यह है कि अर्जुन पर वे हृदय से प्रसन्न थे। इसीसे वे उन्हे पृथ्वी का भार दूर करने के योग्य बली बनाना चाहते थे—अपने प्रसादरूपी प्रताप को भुजावलम्ब के सदृश देकर वे उन्हे भू-भार के उद्धार में समर्थ करना चाहते थे। अतएव, उन्होने वात्सल्यभाव से प्रेरित होकर ही अर्जुन के बाण-प्रहार खुशी से सह लिये।

अपने से अधिक बलवान् शत्रु के हाथ से हतशक्ति होने पर भी जो मनुष्य उत्साह-पूर्वक पराक्रम प्रकट करता है उसके शौर्य्य से प्रकाशित हुआ उसका कीर्ति-कलाप, सूर्य्य के तेज के सदृश, अधिकाधिक वृद्धि पाता है। विपरीत इसके, अपने विपक्षी का प्रकट किया हुआ पौरुष देख कर जो मनुष्य व्यथित होता है उसका तेज नष्ट हुए बिना नहीं रहता। और, यदि तेज नष्ट हो गया तो उसका

उत्साह उसे इस तरह छोड़ देता है जिस तरह कि बुझे हुए दीपक को प्रकाश छोड़ देता है। उत्साह का नाश हो जाने पर आत्माभिमान और मद, ये दोनों भी, अपनी अपनी राह लेते हैं। तब वह मनुष्य अपने विजिगीषु शत्रु से उसी तरह जीता जाता है जिस तरह कि मतवाले हाथी के मद की सुगन्धि से खिँच कर सामने आया हुआ हाथियों का समूह उस मत्त गज के द्वारा जीता जाता है।

इस प्रकार सोच कर, शिवजी ने अर्जुन को उनके प्रतिद्वन्द्वियों में श्रेष्ठ बनाना चाहा। उन्होंने मन ही मन कहा—इसका उत्साह बढ़ाना चाहिए जिससे यह अपने से अधिक बली शत्रु का भी मुकाबला कर सके और इसका तेज कभी क्षीण न हो। अतएव अर्जुन की कीर्ति को, अपने शीश पर धारण की गई इन्दु-लेखा के सदृश, निर्म्मल कर देने के इरादे से ही कभी तो उन्होंने अर्जुन को हराने और कभी जिता देने का विचार किया। उन्होंने उनके साथ इस तरह युद्ध करना चाहा जिससे वे हतोत्साह न हों।

उत्पन्न होते ही जिसको जैसा स्वभाव प्राप्त होता है वह उसी स्वभाव के वशीभूत हो जाता है। जाति स्वभाव किसी का छोड़ा नहीं छूटता। जिस तरह जीवधारी अपने जाति-स्वभाव के वशीभूत होते हैं उसी तरह भूतनाथ भव का वह सैन्य मुनिवर अर्जुन के विचित्र बाणों के वशीभूत हो गया। उन बाणों का अतिक्रमण करने में शिवजी का एक भी गण समर्थ न हुआ। सारे गण उनके प्रहार से व्याकुल हो गये। गाय, बैल आदि पशुओं के कँपते हुए यूथ, रात के समय, घने घिरे हुए घनों की वृष्टि का शब्द-मात्र सुनते हैं। देख वे कुछ भी नहीं सकते। उसी तरह शिवजी के किरात-

सैन्य के सैनिक अर्जुन के धनुष से छूटे हुए शरों से उत्पन्न अन्धकार मे केवल शर-वृष्टि का घोर रव सुन सके। शरो के सर्वत्र छा जाने से इतना अन्धकार हो गया कि कहाँ अर्जुन हैं, कहाँ से उनके बाण आ रहे हैं, कौन कहाँ खड़ा है, कौन घायल हो रहा है—यह वे कुछ भी न देख सके।

अर्जुन ने इतने हस्तलाघव से शर बरसाना शुरू कर दिया कि किरात-सेना के सैनिक भय से विह्वल हो उठे। कामला आदि रोगों से पीड़ित मनुष्य जैसे, नेत्र-विकार के कारण, एक चन्द्रमा को अनेक देखते हैं, अर्थात् जैसे उन्हे एक होकर भी अनेक चन्द्रमा दिखाई देते हैं, वैसे ही शिवजी के गणों को एक होकर भी अनेक अर्जुन दिखाई देने लगे।

बहुत बडे सरोवर में जब सूर्य्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है तब, यदि तरंगे उठती हैं तो, उन तरंगों के चढाव-उतार के कारण सूर्य्य के छायामय प्रतिबिम्ब में विकार उत्पन्न हो जाता है—वह कँपने सा लगता है। यही दशा उस समय गणों के अधीश्वर महादेवजी की हुई। गणाधिपों को क्षुब्ध हुआ देख उनके भी वदन-बिम्ब पर विकार के चिह्न प्रकट हो गये। तथापि वे अर्जुन पर हृदय से अप्रसन्न न थे; इस कारण गणो को व्यथित देख कर भी वे कुपित न हुए। भला कहीं परम पुरुषो के हृत्पटल पर भी कोप-विकार का अंकुर उग सकता है? स्वतः निर्विकार होने के कारण यद्यपि उनके हृदय में कोप-विकार की उत्पत्ति न हुई तथापि बाहर, उनके शरीर पर, विकार के चिह्न अवश्य दिखाई दिये। क्यों ऐसा हुआ, इसका

कारण नहीं जाना जा सकता। क्योंकि महात्माओं की चेष्टाओं का कारण जान लेना बड़ी ही दुस्तर बात है।

शिवजी के शरीर पर विकृति के चिह्न प्रकट होने के अनन्तर उनके गणों ने एक भयानक घटना देखी। बात यह हुई कि शिवजी ने अपने अन्तक (अन्त करने वाले = यमराज) सदृश धनुष को अपनी भुजाओं से बड़े ही जोर से खींचा। ऐसा करने से उसकी चमकती हुई प्रत्यञ्चा, अत्यधिक खिँचाव के कारण, टूट कर दो टुकड़े सी हो गई। उस समय वह क्रुद्ध हुए तक्षक नाग की दो जीभो के सदृश मालूम हुई।

दुष्ट हाथी के साथ अनुचित व्यवहार करने से जब वह मन ही मन क्रुद्ध होता है तब पहले वह अपने एक कान को अपनी कनपटी पर फटकारता है फिर दूसरे को। उसे ऐसा करते देख महावत को तत्काल ज्ञात हो जाता है कि हाथी को मेरा दुर्व्यवहार सह्य नहीं हुआ। इसी तरह जब शिवजी ने दाहनी तथा बाईं गतियों का आश्रय लेकर और अपने उग्र चाप को कान तक खींच कर, पहले दाहनी फिर बाईं तरफ़ उसकी टङ्कार की, तब अर्जुन को मालूम हो गया कि शिवजी अब अधिक कुपित हुए हैं। उनके चाप-सम्बन्धी चातुर्य्य को देख कर पार्थ को इस बात की भी प्रतीति हो गई कि यह पुरुष निश्चय ही दुर्जेय है। अतएव यह कोई अनर्थ किये बिना अब न रहेगा।

अर्जुन के आक्रमणों को बड़ी देर तक झेल कर शिवजी ने अपने धनुष पर फिर अव्यर्थ बाण रक्खे। फल यह हुआ कि उड़ उड़ कर आनेवाले अर्जुन के बाणों के समूह को शिवजी के शर-

जालों ने उसी तरह हताहत कर डाला जिस तरह कि नदी के मुहाने से समुद्र मे गिरने वाले जल-जन्तुओ को समुद्रचारी विकटाकार जल-जीव हताहत कर डालते या खा जाते हैं ।

अपने शत्रु पर जब कोई चढ़ाई करता है तब वह उसकी सेना के व्यूह को तोड देता है, उसका गमनागमन-मार्ग रोक देता है, उसके क़िलो और नगरो आदि का विध्वस कर डालता है । यह सब वह करता तो है, परन्तु इस तरह छिपे छिपे करता है कि उसके काम की खबर शत्रु को पहले से नहीं होने पाती । कौन काम कब हो गया, इसका ज्ञान उसे पीछे से होता है । अर्जुन के शरों के सम्बन्ध मे ठीक इसी तरह का काम शिवजी ने भी किया । उन्होंने अर्जुन के शरो को पहले तो अपने शरों से तोड़ दिया; फिर उनके आने की राह रोक दी, तदनन्तर खण्ड खण्ड करके उनका समूल नाश कर दिया । उधर अर्जुन को इसकी खबर ही न हुई कि शिवजी ने कब अपने बाण तूणीर से निकाले, कब उन्हे धनुष पर रक्खा और कब उन्हें छोड़ा । अपने बाणो के टुकडे टुकड़े हो जाने पर कही अर्जुन को इस बात का ज्ञान हुआ कि शिवजी के शरों ने मेरे शरों का नाश कर दिया ।

इस प्रकार शिवजी के द्वारा अपने शरों के व्यर्थ किये जाने का अपमान अर्जुन को विवश होकर सहना पड़ा । परन्तु इस अपमान के कारण उनके क्रोध की मात्रा बढ़ गई और वे अपने बाण पहले से भी अधिक वेग से छोड़ने लगे । वे भी यद्यपि शिवजी के शरों से छिन्न हो गये तथापि उनसे शिवजी की सेना अवश्य ही बहुत त्रस्त हुई । इस इतने ही कार्य्य को अर्जुन के बाणों

ने ग़नीमत समझा । वे इतने ही से कृतार्थ से होकर जहाँ तहाँ जा गिरे ।

सरलता से अलङ्कृत और धर्म्म-शास्त्रज्ञों के द्वारा निश्चित सदाचार का अनुसरण करने वाले सज्जनों का शील यदि अकस्मात् खण्डित हो जाय तो उनका धैर्य्य छूट जाता है । इसी तरह सरलता के गुण से अलङ्कृत, अर्थात् सीधे, और धनुर्विद्या-विशारदों की बताई हुई प्रणाली के अनुसार छोड़े गये बाणों का, गाठों की जगह ही नहीं, अन्यत्र भी, खण्डित हो जाना—टूट जाना—अर्जुन के लिए बहुत ही विस्मय-कारक बात हुई । इस घटना को देख कर उनका भी धैर्य छूट गया । सन्मार्गगामी होने पर भी, विपत्ति आने से साधुओं का धैर्य जैसे भङ्ग हो जाता है वैसे ही धनुर्वेद में कहे गये नियमों के अनुसार छोड़े जाने पर भी, अपने शरों का अनायास ही नाश देख कर अर्जुन का भी धैर्य्य भङ्ग हो गया।

शिवजी के शरों ने अर्जुन के असंख्य शरों को काट-कूट कर फेंक दिया । परन्तु सदा सबके दिन एक से नहीं रहते । सौभाग्य के अनन्तर शिवजी के शरों को भी दुर्भाग्य के चक्कर में पड़ना पड़ा। अर्जुन की बाण-वर्षा के प्रभाव से वे विफल हो होकर, अपना मुँह नीचा किये हुए, गिरने लगे। उन्होंने अर्जुन के शरों का खण्डन करके जो अपकार किया था उसका बदला मानों शीघ्र ही उन्हे मिल गया । जिस तरह शिवजी ने अर्जुन के शरों को विफल किया था उसी तरह अर्जुन ने भी शिवजी के शरों को विफल कर दिया ।

अर्जुन बड़ी ही फुरती से अपने बाणों का सन्धान और मोचन करने लगे । उनकी आश्चर्य्य-जनक बाण-वर्षा ने शिवजी के

बाणों का विनाश कर डाला । अर्जुन के बाण अत्यन्त आकुल हुई शिवजी की सेना के सैनिको के हृदयों मे दूर तक घुसते चले गये। अर्जुन इतने प्रयत्न और इतने परिश्रम से शर-वृष्टि करने लगे कि उनके पराक्रम के सामने शिवजी का पराक्रम फीका पड़ गया। उन्होंने शिवजी से भी बढ़ कर बल, वीर्य और विक्रम प्रकट किया। यह देख कर त्रिपुर-विजयी त्रिलोचन ने फिर अपने को सँभाला। वे इस तरह तीव्र बाण-वर्षा करने लगे जिस तरह कि ग्रीष्म-काल मे महामेघ जल की तीव्र वृष्टि करते हैं। उन्होंने बाण तो बहुत भीषण बरसाये, पर वत्सलता के वशीभूत होकर अर्जुन के मर्म-स्थानो को बचा दिया। बात यह थी कि अर्जुन पर उनका सच्चा प्रेम था। हृदय से वे अर्जुन के शुभचिन्तक थे। युद्ध का खेल तो वे केवल अर्जुन की परीक्षा के लिए कर रहे थे। इसीसे उन्होने अपना एक भी बाण अर्जुन के मर्मस्थलो पर न लगने दिया। इसी से शिवजी के बाणों से अर्जुन को कुछ भी क्लेश न हुआ। अपने हार्दिक मित्र के विनोद-वाक्य जैसे किसी को कष्टकर नहीं होते, प्रीतिकर ही होते हैं, उसी तरह शिवजी के बाण मुनिरूपधारी अर्जुन को कष्टकर न हुए।

परन्तु युद्ध की यह अवस्था बडी देर तक न रही। शिवजी की सेना ने देखा कि मुनिवर अर्जुन की शक्ति कभी तो उसके स्वामी की शक्ति की बराबरी ही करके रह जाती है; परन्तु कभी कभी वह उससे बढ़ भी जाती है। इस पर उसे बहुत विषाद हुआ। यहाँ तक कि उसका उत्साह भङ्ग होने लगा। यह दशा देख कर शत्रु-मर्दन शिवजी ने फिर अपने यथार्थ सामर्थ्य का अव-

लम्बन किया। वे अपने प्रकृत बल का प्रयोग करके अर्जुन को नीचा दिखाने के लिए फिर तैयार हो गये।

तपस्या और शौर्य के प्रभाव से यद्यपि अर्जुन दुर्धर्ष हो रहे थे और उस समर-सागर से पार हो जाने के लिए यथा-शक्ति ख़ूब चेष्टा कर रहे थे तथापि जब शिवजी ने अपनी प्रकृत शक्ति का आश्रय लेकर युद्धारम्भ किया तब अर्जुन उनसे पार न पा सके। सूर्य जैसे सलिल-राशि को पी लेता है उसी तरह अर्जुन के दुर्धर्ष बाणो को शिवजी के बाणों ने पी सा लिया। उन्हे वे निगल सा गये। शिवजी की शर-वृष्टि मे पड़ कर अर्जुन के शरों का न मालूम कहाँ लोप हो गया।

पहाड़ पर भरे हुए जल-कुण्डों मे हाथी रोज़ ही पानी पीने आया करते हैं। कोई किसी मे पीता है, कोई किसी में। जो जिस कुण्ड में पीता है उससे वह परिचित हो जाता है। प्यास लगने पर वह उसी से पानी पीने के लिए झट दौड़ पड़ता है। कल्पना कीजिए कि किसी ऐसे कुण्ड का पानी और हाथी पी गये और उसमे एक बूँद भी न रह गया। इस दशा में यदि रोज़ पानी पीने वाला कोई मत्त गजराज उस कुण्ड मे अपनी सूँड़ डाले और उसे सूखा पावे तो उसकी जो दशा हो वही दशा इस समय अपने शरहीन निषङ्ग के मुँह पर हाथ रखने वाले अर्जुन की हुई। जैसे जैसे उन्हें शरों की आवश्यकता होती थी वे निषङ्ग के मुँह पर हाथ रख कर निकाल लेते थे। इसी से उन्हे विश्वास था कि इस दफ़े भी उससे बाण निकल आवेंगे। परन्तु अब तो वह ख़ाली हो गया था। बाण

उन्हे प्राप्त होते कैसे ? अतएव, इस समय उन्हे पूर्वोक्त हाथी ही की तरह निराश होना पडा ।

*- अपने जिस बन्धु से सदा अर्थ-प्राप्ति होती रही हो वह यदि सहसा अर्थभ्रष्ट हो जाय—उसका धन नष्ट हो जाय—अतएव याचना करने पर वह कुछ न दे सके, तो पहले के उपकारों का स्मरण करके मनुष्य उसका परित्याग नही करता; उससे बन्धु-भाव बना रखता है। अर्जुन ने अपने निषङ्ग से उस समय तक न मालूम कितना शर-रूपी अर्थ प्राप्त किया था। अतएव अर्जुन पर उसका बहुत कुछ उपकार था। इस कृतोपकार का स्मरण करके, यद्यपि अर्जुन के हाथ को, उस समय, निषङ्ग से और बाण-प्राप्ति न हुई तथापि, उसने उसकी अभिमुखता न छोडी। वह वहीं उसके मुँह के सामने ही बना रहा। जैसे अर्थभ्रष्ट बन्धु से उपकृत मनुष्य पराङ्मुख नहीं होता वैसे ही वह भी उससे पराङ्मुख न हुआ। उससे सौहार्द छोड़ देना उसने उचित न समझा। पृथ्वी के विजय की इच्छा से कर्त्तव्य कार्य्य का निश्चय करने के लिए उत्सुक मनुष्य की बुद्धि जिस प्रकार नय (नीति) और उपाय इन दोनो का बार बार चिन्तन करती है—बार बार उन पर विचार करती है—उसी तरह अर्जुन की अँगुलियो के अग्र भाग ने भी बार बार उनके दोनों निषङ्गो के मुखों पर आवागमन किया। अर्थात् बाण निकालने के लिए उन्होंने अपने दोनों निषङ्गों के मुँह मे बार बार हाथ डाला। परन्तु उन्हे उनसे एक भी बाण की प्राप्ति न हुई। होती कैसे ? वे तो खाली हो गये थे। जितने बाण उनमे थे सब छूट चुके थे। युगान्त उपस्थित होने पर, शून्य हुआ लोक-समूह जैसे सूखे पड़े

हुए पूर्वी और पश्चिमी समुद्र को धारण करता है वैसे ही शून्य-हृदय अर्जुन भी उस समय अपने उन दोनों रिक्त तरकसों को धारण किये हुए थे ।

निषङ्गों की यह दशा देख कर अर्जुन को बहुत परिताप हुआ । यहां तक कि वे अत्यन्त तेजोहीन हो गये। मेरे सारे शर ख़र्च हो गये, उनका क्षय हो जाना मेरे लिए अशुभ-सूचक है—यह सोच कर अर्जुन को अनुताप तो हुआ, परन्तु अधिक नहीं । अधिक अनुताप तो उन्हें यह सोचकर हुआ कि उनके दोनो तरकस ख़ाली हो गये । उनका ख़ाली हो जाना उन्हे अपने बाणों के नाश से भी अधिक सन्ताप-जनक हुआ । बात यह है कि भले आदमी अपने ऊपर आई हुई आपत्ति का उतना सोच नहीं करते जितना सोच वे अपने विपत्ति-ग्रस्त उपकार-कर्ता का करते हैं ।

उन तरकसों ने अब तक अर्जुन का बहुत कुछ उपकार किया था । उन्हे ख़ाली होगया देख, अर्जुन का कर्तव्य था कि वे उनकी सहायता करके—उन पर प्रत्युपकार करके—उन्हें फिर भर देते। परन्तु ऐसा करने में उन्होंने अपने को असमर्थ पाया। इससे उन्हें बड़ा कष्ट हुआ । यद्यपि उन तरकसो से अर्जुन की मनोरथ-सिद्धि पूर्ववत् न हुई, तथापि उनके पहले के कृतोपकार का स्मरण उन्हें बार बार हो आया । अतएव, बहुत कुछ उपकार कर चुकने पर किसी कारण से फिर उपकार करने की शक्ति न रखने वाले अपने मित्र के कुल से जिस तरह कृतज्ञ सज्जन बड़े कष्ट से अलग होते हैं, उसी तरह अर्जुन का हाथ भी उन तरकसों के मुँह से बड़े ही कष्ट से अलग हुआ ।

तरकसों को ख़ाली देख अर्जुन ने उनके मुँह से अपना हाथ खींच लिया। वे बेचारे अर्जुन की पीठ पर, दोनो तरफ़, लटके रह गये। उस समय उनका अपने स्वामी अर्जुन के पीछे पीठ पर लटका रहना बुरा नही कहा जा सकता। क्योकि इसके सिवा और वे करते ही क्या? सेवक का धर्म्म है कि वह स्वामी की सेवा करे। पर वे तरकस उस समय अर्जुन की सेवा करने मे असमर्थ थे। इससे उन्हे, अपना मुँह न दिखा कर, पीछे छिप जाना ही चाहिए था। वही उन्होने किया भी। क्योंकि, स्वामी के सम्मुख, अवसर पर काम न आने वाले सेवक का उपस्थित रहना अनुचित साहस के सिवा और कुछ नहीं।

अर्जुन के शर-समूह नष्ट हो जाने पर शिवजी ने उन्हे लोहे के शरों से पीड़ित करना आरम्भ कर दिया। इस बार उन्होने अर्जुन के मर्म स्थलो पर भी बाण मारे। तत्वविचार-सम्बन्धी वाद में प्रतिवादी के निरुत्तर हो जाने पर, वादी जिस प्रकार उसके बड़े बड़े दोष दिखाकर—उसे बार बार निग्रह-स्थान पर लाकर—व्यथित करता है उसी प्रकार शिवजी ने भी बड़े बड़े लोहमय शरों से बार बार अर्जुन को व्यथित किया।

अर्जुन जो कवच अपने शरीर पर धारण किये हुए थे उस पर सोने का काम था। मणियाँ भी उस पर खचित थीं। उन मणियों की आभा से वह बहुत ही चमक रहा था। इस कवच को भी शिवजी ने अपनी माया से खींच कर ज़मीन पर गिरा दिया। वायु का प्रबल प्रवाह जैसे विद्युद्-युक्त बादल के काले काले टुकड़े को

हटा कर सूर्य से अलग कर देता है वैसे ही शिवजी ने अर्जुन के चमचमाते हुए कवच को भी उनके शरीर से सहसा अलग कर दिया। मियान से निकाला हुआ शानचढ़ा खड्ग जैसा मालूम होता है; अथवा केचुल छोड़ा हुआ महासर्प जैसा मालूम होता है; अथवा लड़ने के लिए सामने आये हुए हाथी पर क्रुद्ध गजराज, मुँह पर पड़े हुए परदे को दूर फेंक देने पर, जैसा मालूम होता है; अथवा मेघों की गर्ज्जना से जगा हुआ सिंह, पर्वत की गुहा से निकल पड़ने पर, जैसा मालूम होता है; अथवा रात को जलता हुआ निर्धूम अग्नि-समूह जैसा मालूम होना है—कवच गिर जाने पर अर्जुन भी ठीक वैसे ही मालूम हुए।

कवच गिर जाने पर अर्जुन के दोनो तरकस भी ज़मीन पर गिर गये। क्योंकि, वे कवच ही से संलग्न थे। यद्यपि वे चेतनाहीन थे तथापि उनका इस प्रकार नीचे गिर जाना सचेतनों का सा काम हुआ। अपने स्वामी पर विपत्ति आई देख केवल सचेतन ही प्राणी दुखी होकर अपना सिर झुका लेते हैं, अथवा दुःख का वेग अधिक होने से पछाड़ खाकर ज़मीन पर गिर जाते हैं। अर्जुन के तरकसों ने अपने स्वामी अर्जुन को विपत्ति-ग्रस्त देख नीचे गिर कर, मानो अपनी सचेतनता प्रकट कर दी।

कवचहीन हो जाने पर भी, विमल व्योम के सदृश विशुद्ध सत्वगुणधारी अर्जुन, उस समय, अपनी तपस्या और पराक्रम के तेज से प्रदीप्त-शरीर दिखाई दिये। शिवजी ने उनके उस तेजस्क शरीर पर अपने शस्त्रों से उसी तरह बार बार चोट की जिस तरह कि पूर्वकाल

मे त्वष्टा ( विश्वकर्मा ) ने सूर्य्य के प्रकाशमान पिण्ड पर की थी। शिवजी के निरवच्छिन्न बाणो से बार बार घायल होने पर अर्जुन के सारे अवयव चेतना शून्य हो गए। उनमे बधिरता आ गई। अतएव उन्हे शराघात-सम्बन्धिनी वेदना ही न हुई—रण-संरम्भ के कारण उन्हे इसका ज्ञान ही न हुआ कि कब और कहाँ पर उन्हे घाव लगा। उस समय उन्हे इतना क्रोध हो आया कि वह क्रोध ही लोहे के कवच से भी बढ कर अभेद्य कवच हो गया। अतएव उन्होने शिवजी के शरों के किये हुए घावो की कुछ भी परवा न की। वे निश्चल खड़े हुए बाण-प्रहार सहते रहे। उनके सारे शरोर से रुधिर की धारा बह निकली। कुछ देर तक इस प्रकार चुप-चाप शराघात सहने पर, गोपुच्छ के सदृश लम्बे लम्बे मांसल बाहुधारी अर्जुन ने पहले तो किटकिटा कर पृथ्वी पर इस ज़ोर से लात मारी कि वह हिल उठी। फिर, उन्होंने एक बड़ा ही भयङ्कर चीत्कार किया। तदनन्तर, बडे वेग से उछल कर वे कुछ दूर आगे बढ़ गये। वहाँ से उन्होने, शिवजी का शरीर फोड़ देने के इरादे से, शशिखण्ड के समान सफ़ेद रङ्ग वाले अपने वज्र-सदृश चाप को उन पर फेका। अर्जुन का वह चाप-प्रहार किसी विशाल खम्भे को तोड़ने के लिए किये गये गजराज के दन्त-प्रहार के तुल्य हुआ। बड़े वेग से गिरने वाले उस शरासन को शिवजी ने—महा तेजस्वी महर्षि जह्नु ने त्रिपथगा गङ्गा के हहराते हुए प्रवाह को जिस तरह अपनी आत्मा में लीन कर लिया था उसी तरह—लीन कर लिया। शिवजी के तेजः-समूह मे उस चाप का पता ही न लगा कि कहाँ गया। वह उसी मे लोप हो गया।

इस प्रकार अर्जुन ने अपना धनुष भी खो दिया। वह भी उनके हाथ से जाता रहा। वे बिना धनुष के हो गये। बिना दान के सत्कार-क्रिया जैसे शोचनीय हो जाती है वैसे ही अर्जुन की रण-क्रिया भी शोचनीय, अर्थात् निकम्मी, हो गई। क्योंकि, युद्ध मे बिना धनुर्बाण का वीर किस काम का! अर्जुन की यह दशा देख, शिवजी ने उन्हे अपने कम दूर जाकर गिरने वाले शरो के प्रहार से दूर फेंक दिया।

ब्रह्मचर्य आदि किसी पवित्र आश्रम का आश्रय लेकर जब कोई जितेन्द्रिय तपस्वी अपने व्रत का पालन करता है तब बहुत समय तक तपस्या करने के अनन्तर, तपस्या की फल-प्राप्ति सन्निकट आने पर, जप और उपवास आदि से वह अत्यन्त सन्तप्त होता है—अत्यन्त कष्ट पाता है। अर्जुन ने भी, उस समय ठीक ऐसा ही कष्ट पाया। वे भी पवित्र रण-श्रम का आश्रय लेकर वीर-व्रत-पालन कर रहे थे। अस्त्र-लाभ रूपी कल्याण-कारक फल भी उन्हे शीघ्र ही मिलने वाला था। संयतात्मा, अर्थात् जितेन्द्रिय, वे थे ही। अतएव, शिवजी के उन शरों से वे उसी तरह सन्तप्त—तङ्ग—हुए जिस तरह कि जप और उपवास आदि से पूर्व-निर्दिष्ट तपस्वी सन्तप्त होता है।

विपत्ति आने पर मनुष्य को जिससे अपने बचाव की आशा होती है उसी का आश्रय वह लेता है—उसी की शरण जाता है। अर्जुन ने देखा कि अब इस विपत्ति के समय एक मात्र खड्गही मेरा सहारा है। अतएव उन्होंने उसी का आश्रय लिया। युद्ध-सम्बन्धी उद्योग मे उन्होंने उसी को अपना अन्तिम साधन समझा, क्योंकि और कोई शस्त्र उनके पास रही न गया था। उनका खड्ग

था भी बडा विकट। उसका पराक्रम सहन करने की शक्ति ही और किसी मे न थी। वह प्रबल प्रताप और अनन्त सम्पत्ति की प्राप्ति कराने वाला था। वह खड्ग क्या था, मूर्त्तिमान् अहङ्कार था। और कोई उपाय न देख कर अर्जुन ने उसी को मीयान से खीच लिया। उसे हाथ मे लेकर, शिवजी के शरो के खण्ड खण्ड करते हुए, अनिन्द्य-कर्मा अर्जुन समर-भूमि मे खड्गधारियों की चालें चलने लगे। युद्धविद्या-विशारदो ने खड्गधारियों के लिए जिन चालो—जिन पैतडो—का निर्देश किया है उन्ही का अवलम्बन करके वे घूमने लगे। उस समय चमचमाती हुई तलवार की दीप्ति से दीप्त अर्जुन ऐसे मालूम हुए जैसे सूर्य्य की किरणो के योग से चमकती हुई लहरो से युक्त समुद्र मालूम होता है। उस समय अर्जुन ने बड़ी ही रण-निपुणता दिखाई। अपनी प्रभा से प्रदीप्त व्योमवर्ती सूर्य्य की छाया जब जलाशय में पड़ती है तब उसके दो बिम्ब दिखाई पड़ते हैं—एक तो आकाश में, दूसरा नीचे जल मे। अर्जुन जब शीघ्र शीघ्र पैतड़े बदलते हुए तलवार के हाथ दिखाने लगे तब शिवजी के गणों को वे भी, सूर्य्य-बिम्ब ही की तरह, दो दिखाई दिये। जिस जगह पर उन्होंने अर्जुन को जिस क्षण खड़े देखा उसी क्षण उन्होने उन्हें दूसरी जगह पर भी देखा। अर्जुन की इस फुरती को देख कर उन्हें अतिशय आश्चर्य्य हुआ।

शिवजी ने अर्जुन को तलवार के हाथ फेरते देख एक ऐसा बाण मारा कि अर्जुन की तलवार दस्ते के पास से कट कर ज़मीन पर गिर गई। वहाँ चमकती हुई पड़ी वह तलवार ऐसी मालूम हुई

बड़े—इतने बड़े कि फेंके जाने पर उनसे आकाश और दिगन्तराल आच्छादित हो गया । ऊपर आकाश में सर्वत्र पेड़ ही पेड़ दिखाई देने लगे । परन्तु शिवजी ने अपने शरों से इन सैकड़ों पेड़ों के भी धुर्रे उड़ा दिये । उनकी छाल, उनकी डालें, उनका गूदा, उनके फूल, उनके पत्ते, सभी कुछ छिन्न भिन्न होकर जमीन पर बिछ गया । इन चीज़ो के सर्वत्र गिरने से पृथ्वी ने बड़ा ही रङ्ग-बिरङ्गा रूप धारण किया । मालूम होने लगा जैसे शिवजी ने पत्र-पुष्पधारी पेड़ पृथ्वी पर बिछा कर रण-देवी की पूजा की हो ।

तब अर्जुन को और कुछ न सूझा । गङ्गाजी के प्रवाह से जैसे कोई मगर सहसा ऊपर निकल पड़ता है वैसे ही वे शिवजी के बरसाये हुए बाणो की नदी के प्रवाह को फाड़ कर ऊपर निकल आये और बड़े वेग से शिवजी के अभिमुख दौड़ कर उनकी कनक-शिला-सदृश कठोर छाती पर उन्होने अपनी दोनों भुजाओं से घूँसे जमाये । जिसके एक ही पुत्र होता है वह बचपन मे अपने पुत्र का बहुत प्यार करता है । ऐसे पुत्र का पिता, माँगने पर, यदि पुत्र की अभिलषित वस्तु नहीं देता, तो गोद मे बैठा हुआ पुत्र कभी कभी उसे अपने कोमल करों से मार भी देता है । परन्तु पुत्र के ऐसे आचरण से पिता अप्रसन्न नही होता ! उसके इस अविनय को वह प्रसन्नता-पूर्वक सह लेता है । अर्जुन के घूँसे खा कर शिवजी ने भी ऐसे ही पिता का अनुकरण किया । अर्जुन माँगते थे—कीर्त्ति और लक्ष्मी की प्राप्ति का एक मात्र साधन विक्रम । और विक्रम भी ऐसा जिसका अतिक्रमण उनके शत्रु और शत्रुओं के सैन्य कदापि न कर सकें । ऐसे दुर्लभ पदार्थ की प्राप्ति न होने पर, उन्होंने शिवजी के

समीप आकर जब उनकी छाती पर घूँसे मार दिये तब, भक्त-वत्सलता के कारण, शिवजी ने अर्जुन के इस अविनय को उसी तरह सह लिया जिस तरह कि पूर्वोक्त पिता अपने पुत्र का अविनय सह लेता है ।

---

# अठारहवाँ सर्ग।

अर्जुन के पास कोई आयुध तो रही न गया था। उनकी एक-मात्र भीम भुजायें ही आयुध की जगह थी। उन्ही से वे मल्ल-युद्ध करने लगे। शिवजी ने जब देखा कि हाथी के समान उद्धत अर्जुन ने उनकी छाती पर घूँसे जमाये तब उन्होंने भी वैसा ही किया। पहले तो उन्होंने अपना धनुष और तरकस फेंक दिया; फिर लोहे के घनो सदृश घूँसो से अर्जुन की ख़बर ली। दोनों में युद्ध होने लगा। धीरे धीरे उन्होने एक दूसरे पर इस ज़ोर से मूँठें बाँध बाँध कर तडा तड़ घूँसे बरसाना आरम्भ किया कि घूँसों के आघात से बड़ा ही घोर रव होने लगा। उस समय ऐसा मालूम हुआ जैसे बड़ी बडी शिलाये तड़ातड़ टूट रही हो। उस घोर नाद से इन्द्रकील पर्वत की गुहाये घहरा उठी। वह उनके भीतर भर गया। अतएव प्रति-ध्वनि होने के कारण उसकी भयङ्करता बढ गई।

शिवजी के मुष्टि-प्रहारों ने अर्जुन की छाती फोड़ दी। उस पर बड़े बड़े घाव हो गये। तथापि अर्जुन ने इसकी कुछ भी परवा न की। उन्होंने उन मुष्टि-प्रहारो के क्लेश को कुछ समझा ही नहीं। बड़े आदमियो की बड़ी बातें होती हैं। उच्च हृदय वाले सत्व-शील

तेजस्वियों की बातों का अनुकरण करने मे भी कोई समर्थ नहीं हो सकता। ऐसों के चरित का अनुकरण करना ही जब सम्भव नही तब उनके सदृश आचरण करना कैसे सम्भव हो सकता है। अर्जुन की जगह यदि और कोई होता तो शिवजी के एक ही घूँसे से उसका काम तमाम हो जाता। पर अर्जुन थे सत्व-शील और परम पराक्रमी। इसीसे उन्होंने शिवजी के मुष्टि-प्रहार सह लिये। बात यह है कि रौद्र-रस मे डूबे हुए वीर-वर, मार-काट के समय, सुख-दुःख को कुछ समझते ही नही।

यह न समझिए कि भगवान् उमापति कोरे ही रह गये। अर्जुन ने उनकी भी छाती को क्षत-विक्षत कर डाला। उन्होंने अपने घूँसों से उसे कई जगह फोड़ दिया। फल यह हुआ कि शिवजी की शिला-सदृश छाती खून से लदफद हो गई। अतएव वे सायङ्कालीन लालिमा से युक्त, अरुण वर्ण के वारिद की उपमा को पहुँच गये।

समुद्र की बड़ी बड़ी लहरें जैसे भीम वेग से आ कर सह्याद्रि पर्वत के विपुल कगारों पर टक्कर खाती हैं वैसे ही अर्जुन की मुष्टियाँ, बड़े ज़ोर से बार बार गिर गिर कर, शूलपाणि शिवजी के विशाल वक्षःस्थल पर टकराने लगीं। पराक्रम मे अर्जुन को इस प्रकार बढ़ जाते देख शिवजी भी सँभले। उन्होंने अपने दोनों हाथों से दो घूँसे तान कर अर्जुन के कंधों पर जमाये—एक दाहने कंधे पर, दूसरा बायें पर। इन घूँसों से अर्जुन को करारी चोट पहुँची। उनकी आँखें तिलमिला गईं और वे मतवाले की तरह लड़खड़ा कर तीन चार क़दम पीछे हट गये। यहाँ तक कि वे गिरते गिरते

बचे। इस पर उन्हें बडा क्रोध हुआ। उनका चेहरा लाल हो गया। वे बड़े वेग से झपटे और अपने दोनों हाथों से उन्होंने शशिशेखर शिवजी के दोनों हाथ बड़ी मज़बूती से पकड़ लिये।

अब बहुत ही घोर मल्ल-युद्ध होने लगा। शिवजी भी इस युद्ध मे निपुण थे और अर्जुन भी। दोनों को अपनी बड़ी बड़ी भुजाओं के बल का गर्व था। अतएव जोड़ बहुत ही अच्छा था। फिर क्या पूछना। खूब उछल-कूद होने लगी। तरह तरह के पेच खेले जाने लगे। अपने अपने हाथ-पैरों की शृङ्खला से वे एक दूसरे को कस कस कर बाँधने और गिराने की चेष्टा करने लगे। युद्ध ने इतना भीषण रूप धारण किया कि हिमालय हिल उठा। शिव और अर्जुन दोनों गुत्थमगुत्था हो गये। कभी गुत्थी छूट जाती, कभी फिर गुथ जाती। कभी खड़े खड़े लड़न्त होती, कभी पड़े पड़े। कभी एक ऊपर हो जाता, कभी दूसरा। कुश्ती मे शिव और अर्जुन दोनो ही ने इतनी फुरती दिखाई कि शिवजी के गणों को यह पहचानना मुश्किल हो गया कि किसने कौन पेच खेला और कब कौन किस स्थिति मे रहा। मल्ल युद्ध के स्वरूप मे इतनी शीघ्रता से परिवर्तन होने लगा कि गण लोग, जो तमाशा देख रहे थे, यही न जान सके कि ये शिवजी खड़े हैं या अर्जुन; ये शिवजी नीचे आ गये हैं या अर्जुन, य शिवजी ऊपर सवार हो गये हैं या अर्जुन।

लड़ तो शिवजी और अर्जुन रहे थे; हिमालय बेचारे की व्यर्थ ही शामत आई। वेग से बहती हुई जल-धारा में बोझ से दबी हुई नाव की जो दशा होती है वही दशा हिमालय की हुई। शिवार्जुन स्थिर खड़े हो गये तो वह भी स्थिर हो गया, वे चलने लगे तो वह

भी डगमगाने लगा; वे झुक गये तो वह भी झुक गया, वे ऊँचे उठ गये तो वह भी ऊँचा उठ गया। बात यह कि उन दोनों महाबलशालियों का बोझ उसे असह्य हो गया। अतएव ऐसा मालूम होने लगा कि कहीं इस रण-सरम्भ मे उसका नाश ही तो न हो जायगा! कहीं इसी डर से तो उसकी यह दुर्गति नही हो रही!

लड़ना छोड़ कर जिस समय शिवजी और अर्जुन बड़ी सफ़ाई से उछल कर अलग हो जाते और ताल ठोकते उस समय उनके पाद-प्रहारों के आघात से नदियो के कगार ढह पड़ते। फल यह होता कि उनका जल तट तोड़ कर चारो तरफ़ बह निकलता और दूर दूर तक की भूमि जलमग्न हो जाती।

बड़ी देर तक लड़ने के अनन्तर, शिवजी, बड़े वेग से कूद कर, कुछ दूर ऊपर को उछल गये। यह देख, पृथ्वी को अपने पैरों की ठोकर से धँसा कर, अर्जुन ने भी छलाँग मारी और शिवजी की टाँगें वहीं ऊपर अधर में ही पकड़ लीं। उन्होने मन ही मन कहा—अच्छा मौक़ा दिया। देख, अब मैं तेरी टाँग पकड़ कर तुझे पृथ्वी पर पटके देता हूँ!

कर्म्मों का क्षय करने वाले, अर्थात् मोक्ष के दाता, भगवान् भवानीपति ने जब देखा कि अर्जुन मुझे अब जमीन पर पटकना ही चाहता है तब उन्हे बड़ा विस्मय हुआ। इतनी देर तक युद्ध करने पर भी अर्जुन थके न थे। अतएव वे अभी और लड़ सकते थे। पर शिवजी ने मल्ल-युद्ध जारी रखने की अब आवश्यकता न समझी। अर्जुन की छाती से अपनी छाती लगा कर उन्होंने अर्जुन का गाढ़ालिङ्गन किया। अर्जुन की तपस्या से उन्हें

जितना सन्तोष न हुआ था उतना सन्तोष उन्हें अर्जुन का अत्यधिक बल और पराक्रम देख कर हुआ। सच तो यह है कि तपस्या और सेवा-शुश्रूषा आदि गुणों की अपेक्षा आत्मीय बल-पौरुष से ही सत्पुरुषों का विशेष उपकार होता है—वही उनके अधिक काम आता है।

अर्जुन पर प्रसन्न होने के अनन्तर शिवजी ने किरात का वेश बदल दिया। उनका शीश चन्द्रमा की कला से और ललाट बर्फ़ के सदृश शुभ्र भस्म के खौर से विभूषित हो गया। इस प्रकार उन्होंने अपना अति मनोहारी प्रकृत रूप धारण कर लिया।

अर्जुन ने जो देखा कि ये तो किरातपति नहीं, किन्तु शिवजी हैं तो उन्होंने भक्ति-पूर्वक उनको प्रणाम किया। अर्जुन ने उस समय एक और भी अद्भुत घटना देखी। उन्होंने देखा कि उनके विशाल शरीर पर पूर्ववत् कवच चढ़ा हुआ है, दोनो कन्धों से पूर्ववत् एक एक तरकस लटक रहा है; कमर मे पूर्ववत् तलवार खुसी हुई है; और हाथ मे पूर्ववत् उनका गाण्डीव धनुष वर्तमान है। इस अलौकिक घटना को देख कर उनके आश्चर्य्य का ठिकाना न रहा।

इतने में मेघ पृथ्वी को जल-वृष्टि से धीरे धीरे सींचने लगे। चित्र विचित्र मन्दार-सुमन आकाश से बरसने लगे। बिना हाथ लगाये ही बजी हुई दुन्दुभियों की ध्वनि से निर्म्मल नभोमण्डल सर्वत्र गूँजने लगा। अमरपुरी से इन्द्र वहाँ दौड़ आया। उसके पीछे पीछे त्रिलोकी के रक्षक लोकपाल आदि देवता भी आ पहुँचे। जिन विमानों पर बैठ कर ये लोग आये थे उन पर प्रकाश-

मान रत्नो की झालरे टँकी थी। उनसे वे खूब ही चमचमा रहे थे। अतएव विमानों के छा जाने पर ऐसा मालूम होने लगा जैसे आकाश में अनन्त तारे छिटक रहे हो। अर्थात् दिन में ही रात का दृश्य दिखाई देने लगा।

देवताओं के विमानों मे बड़े बड़े हंस जुते थे। उनकी गरदनें बहुत ही मधुर शब्द करने वाली किङ्किणियों से सुशोभित थी। इन हंसो के फैले हुए पङ्खो से रत्ती रत्ती आकाश भर गया। भीड़ अधिक हो जाने के कारण इन बेचारो को पूरे तौर पर अपने पङ्ख फैलाने के लिए भी जगह न मिली। बड़े प्रयत्न से वे अपने पङ्ख फैलाकर किसी तरह आकाश में, एक दूसरे से जुट कर, स्थिर रह सके। उनके पङ्ख आकाश से इस तरह सट गये कि मालूम होने लगा मानों वे अपने पङ्खों के अग्र-भाग से आकाश का आलिङ्गन कर रहे हैं।

मेघ के सदृश बैल पर सवार शिवजी को वायु ने बहुत सुखी किया। उसने उन्हें मन्दार-कुसुमों की मालाओं से आच्छादित सा कर दिया—उनके ऊपर इन मालाओं का चँदोवा सा तान दिया। ये फूल इतने सुगन्धित थे कि मुदित हुए मधुकरों के झुण्ड के झुण्ड इन पर मँडरा चुके थे और उस समय भी मँडरा रहे थे।

अर्जुन को कृतकृत्य हुआ जान शिवजी के गणों के शरीर पर, आनन्दातिरेक के कारण, घना रोमाञ्च हो आया। उनके शरीर पुलकित—कंटकित—हो गये। उन्होंने अर्जुन के सौभाग्य की बड़ी प्रशंसा की। वे अर्जुन को धन्य धन्य कहने लगे।

शिवजी के दर्शन पाने पर अर्जुन ने अपनी तपस्या को सफल

समझा। अतएव सन्तुष्ट होकर वे शिवजी की विशेष-फल-दायिनी स्तुति करने लगे। वे बोले—

हे अजित! हे भव! आप बड़े ही कारुणिक हैं। आपके सदृश दयालु त्रिलोकी में दूसरा नहीं। भक्ति-द्वारा ही आप प्रसन्न किये जा सकते हैं—एक मात्र भक्त ही को आपके दर्शन हो सकते हैं। जो लोग आपकी शरण जाते हैं उन्हे मृत्यु का फिर भय नहीं रहता, वे अमर हो जाते हैं। यही नहीं, किन्तु इस ससुरासुर ससार पर जब कोई विपत्ति आती है तब वे उलटा उसे शरण देते है। यह केवल आपकी कृपा का फल है। जिसको आप शरण देते हैं वह समस्त जगत् को शरण देने योग्य हो जाता है—जिसकी आप रक्षा करते हैं वह सारे ससार की रक्षा करने मे समर्थ हो जाता है। जब तक किसी ने आपके सामने सिर नही झुकाया तभी तक विनाशकरी विपत्ति आती है, तभी तक मनोरथ-सिद्धि नहीं होती और तभी तक लोग उसके सामने सिर नही झुकाते। जहा आपके सामने सिर झुका वहा सारी विपदायें भाग जाती है, सारे मनोरथ सिद्ध होजाते हैं, और सारा जन-समुदाय वशीभूत हो जाता है। आपको प्रणाम करते ही इष्ट-प्राप्ति और अनिष्ट-निवृत्ति मे देर नहीं लगती।

जन्म-मरण के दुःख से दुखी हुए लोग, उससे छुटकारा पाने के लिए, आपका नाम लेकर, नाना प्रकार के दान-पुण्य करते हैं। उनका यह काम आश्चर्य-जनक नहीं। अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए मनुष्य क्या नहीं करता? आश्चर्य की बात तो यह है जो आप, सर्वथा निःस्पृह होने पर भी, अपने भक्तों की अभिलाष-पूर्त्ति करते

हैं। प्रणत जनो का अभीष्ट सिद्ध करने से क्या आपको कुछ मिलता है? क्या आपकी कुछ भी स्वार्थ-सिद्धि होती है? नहीं, कुछ भी नहीं। निःस्पृहों की स्वार्थ-सिद्धि कैसी? यह तो आपका केवल कारुण्य है, जिसकी प्रेरणा से आप शरणागतों को शरण देते और उनके मनोरथ सफल करते हैं।

गङ्गा और प्रयाग इत्यादि तीर्थों की प्राप्ति के लिए उनके पास चल कर जाना पड़ता है। परन्तु आपकी प्राप्ति के लिए दूर जाने की ज़रूरत नहीं। आपतो स्मरण मात्र से ही प्राप्त हो सकते हैं। और तीर्थों की सेवा-अर्चा का फल परलोक में मिलता है, यहाँ नहीं मिलता। उसकी प्राप्ति के लिए परलोक-गमन की राह देखनी पड़ती है। परन्तु आप अपने भक्तों को यही, इसी लोक मे, अभीष्ट फल दे देते हैं। सच तो यह है कि संसार-सागर के पार उतार कर, मोक्ष-पद देने और सारी कामनाओ को सफल करने वाला तीर्थ आप से बढ़ कर कोई नहीं। आप तो ऐसे तीर्थ—ऐसे तारक (तारने वाले)—हैं कि आपके स्मरण मात्र से ही स्मरण करने वाले के सारे काम सिद्ध हो जाते हैं और उसे मोक्ष की भी प्राप्ति हो जाती है।

हे वरद! जो मनुष्य आप से प्रीति करता है वह निर्म्मल पद, अर्थात् कैवल्य, की प्राप्ति का अधिकारी हो जाता है। और, जो आप से द्वेष करता है उसकी बड़ी ही घोर गति होती है; वह नरक की तीव्र यातनायें सहने से नहीं बच सकता। परन्तु इससे आप पर राग-द्वेष-विषयक आरोप नहीं किया जा सकता। क्योंकि आप तो सर्वथा अनघ, अर्थात् निष्पाप और निष्कलङ्क, हैं। न आप

भक्त का अनुचित पक्षपात ही करते हैं और न विद्वेषी के साथ अनुचित कठोरता ही का व्यवहार करते हैं। जैसा ये लोग करते हैं वैसा ही फल आप इन्हें देते हैं। क्योंकि निमित्त-शक्ति बड़ी दुस्तर है। कृत-कर्म्म की शक्ति का कार्य्य-निवारण ही नहीं किया जा सकता। आप इन्हें वैसा फल न दें तो करें क्या? रहे स्वयं आप, सो आप में तो वैषम्य-बुद्धि का लेश भी नहीं। आप तो सभी के साथ सम-भाव रखते हैं। ये जीव अपने ही पाप-पुण्य से पतित या मुक्त होते हैं। आप तो इनके कर्म्मों के साक्षी मात्र हैं।

जो लोग आपके सामने सिर झुकाते हैं—जो लोग आपके सामने सदा नत-मस्तक रहते हैं—उनके साथ आप बड़ी ही उदारता का व्यवहार करते हैं। ऐसे लोगों को यदि आपकी कल्याणकारिणी दक्षिणामूर्त्ति का यथार्थ ज्ञान न हो, और यदि ऐसों के हृदय रागद्वेष से परिपूर्ण रहें तो भी, भक्तिपूर्वक आपका स्मरण करने ही से, आप इन्हें जनन-मरण के दुःखों से मुक्त कर देते हैं। विद्वानों का कथन है कि बिना तत्त्वज्ञान के मुक्ति नहीं होती। पर आपके भक्त आपकी कृपा से ज्ञान-प्राप्ति के बिना भी मुक्त हो जाते हैं।

जो पुरुष मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा रखते हैं वे ज्ञान और कर्म्म, इन दोनों का आश्रय लेते हैं। वे ज्ञानार्जन भी करते हैं और कर्म्मानुष्ठान भी करते हैं। ऐसे विवेकशील पुरुष हर बात खूब सोच समझ कर करते हैं। जो चीज़ देखने योग्य होती है उसीको वे देखते और जो काम करने योग्य होता है उसी को करते हैं। तभी उन्हें अविनाशिनी मुक्ति की प्राप्ति होती है। परन्तु मुक्ति के इन साधनों का भी सम्बन्ध आप ही से है। जो जन आपको पुरुषो-

त्तम, अर्थात् सर्वोत्कृष्ट, समझ कर आपको देखता है वही यथार्थ ज्ञानी हो सकता है। इसी तरह जो आपकी उपासना करता है वही सत्कर्म करने का अधिकारी माना जा सकता है। और कोई नहीं। मतलब यह कि आपही के विषय में ज्ञान-प्राप्ति और कर्म्म का अनुष्ठान करने से मुक्ति मिल सकती है।

त्रिलोकी मे कुछ महात्मा ऐसे अवश्य हैं जिनसे प्रजा का बहुत कुछ उपकार होता है। उदाहरण के तौर पर व्यास आदि महर्षियो को लीजिए। उनमे अनुपम योग-शक्ति है अवश्य। तथापि वे केवल हितोपदेश कर सकते हैं। स्मृति, पुराण, इतिहास आदि के द्वारा वे मनुष्य को सन्मार्ग की शिक्षा मात्र दे सकते हैं। अधिक उपकार करने की शक्ति उनमे नहीं। पर आपकी बात कुछ और ही है। आपकी महिमा ही अचिन्त्य है। आप तो शरणागतों के कर्म्मरूप दुस्तर बन्धनो का समूल ही उच्छेद कर डालते हैं। यह सामर्थ्य पूर्वोक्त महर्षियो मे कहाँ!

नरक की यन्त्रणाओं का भय बड़ा दारुण है। कृत-कर्म्मों से वह इतनी दृढ़ता से बँधा रहता है कि उसकी गाँठ किसी से खुल ही नहीं सकती। और, बिना कर्म्मों की गाँठ खोले उस भय से किसी तरह निस्तार नहीं। ऐसी गाँठ खोलने की शक्ति एकमात्र आप मे है। सांसारिक जनों को पूर्वोक्त भय से मुक्त करने ही के लिए आपने यह लीलामय विचित्र मूर्त्ति धारण की है। हे करुणा-मय! आपका यह रूप परोपकार ही के लिए है, औरों की तरह कर्म्म-जनित नहीं।

आप तो महा-योगी हैं। फिर भला आपके अन्तःकरण मे

राग आदि विकारों के लिए स्थान कहाँ? तिस पर भी आप बहुत बड़े रागानुरक्त अर्थात् विलासी हैं; क्योंकि आप भिक्षाटन करते हैं और गाने, बजाने तथा ताण्डव-नृत्य से प्रेम रखते हैं। यह विलासिता नहीं तो क्या है? यह आपकी पहली विलक्षणता है। और देखिए। इधर तो आपने प्रियतमा पार्वती को अपनी अर्द्धाङ्गिनी बना रक्खा है, उधर काम को भस्म कर दिया है। स्त्री को आधे शरीर पर रख कर भी काम से काम न रखना, आपकी दूसरी विलक्षणता है। बात यह है कि आपकी महिमा जानी जाने योग्य ही नहीं। वह बहुत ही दुर्ज्ञेय है। इसी से, अर्थात् आपके माहात्म्य की अगाधता के ख़याल से ही, ब्रह्मा भी प्रति दिन प्रातःकाल आपको नमस्कार करता है।

बड़े बड़े बाल लगा हुआ गीला गजचर्म्म आप दुपट्टे की तरह ओढ़ते हैं; प्रकाशमान मणि धारी महान् सर्पों की मेखला बना कर आप कमर पर धारण करते हैं, कपालों की माला आप गले में पहनते हैं; और जले हुए मुर्दे की राख, चन्दन के सदृश, आप मस्तक पर लगाते हैं। इधर तो आप इस प्रकार की अस्पृश्य, अमङ्गल और भयदायिनी सामग्री का स्वीकार करते हैं, उधर जगन्मोहिनी शशिकला को भी शीश पर धारण किये रहते हैं। परन्तु आपके शरीर-संयोग से, चन्द्र-कला के सदृश ही, वे अमङ्गल और अस्पृश्य वस्तुयें भी शोभायमान ही होती हैं। आपका प्रभाव ही कुछ ऐसा है कि आपके आश्रय से अरम्य वस्तुयें भी रम्य हो जाती हैं।

सच पूछिए तो आप निराकार हैं—आप शरीरवान् नहीं। तथापि, न मालूम, किस अज्ञेय कारण की प्रेरणा से आप साकार भी हैं।

निराकार का आकार न होना चाहिए, पर आप निराकार हो कर भी साकार हैं। इस विरोध-भाव का कहीं ठिकाना है! यह तो एक विलक्षण बात है। और, फिर, साकार होकर भी आप नारी नरात्मक (अर्धनारीश्वर) आकार वाले हैं। यह तो और भी बहुत बड़ी विलक्षणता है। मुझे तो ऐसा विरुद्ध वेश और ऐसे विरुद्ध आभरण धारण करके भी रमणीय मालूम होने वाला और कोई संसार मे नहीं दिखाई देता। आपकी महिमा सर्वथा अचिन्त्य है। यह उसी का प्रभाव है जो आपकी प्रकृति-विरुद्ध बाते भी अच्छी ही मालूम होती हैं।

जैसे और पञ्चभूतात्मक शरीरधारियो को जन्म, जरा और मृत्यु प्राप्त होती है वैसे आपको नहीं प्राप्त होती। आप इन आपत्तियों—इन निरोधों—से बिलकुल ही मुक्त हैं। आप कोई साधारण शरीर वाले थोड़े ही हैं। ये जितने भुवन–जितने लोक–हैं उनसे सम्बन्ध रखने वाले प्राकृतिक नियमो के आप अधीन नहीं। आप सर्वलोकोत्तर हैं। आपकी लीला ही कुछ न्यारी है। न तो आप किसी के सदृश हैं और न कोई और ही आपके सदृश है। अतएव यही कहना पड़ता है कि आप सर्वथा निरुपमेय और निरुपमान हैं।

हे देव! आप इस स्थावर-जङ्गम सृष्टि के संहारकर्त्ता हैं। परन्तु यह नहीं कि आप केवल संहार कर के ही चुप रह जाते हों। नहीं, यह सारा संसार आपही के जिलाने से जीता भी है। योगियों के कर्म्म और फल के निवारण करने वाले भी आप ही हैं —आप ही उनको बन्धन-मुक्त करते हैं। यही क्यों, आप तो पञ्चमहाभूतों के उत्पत्ति-स्थान सूक्ष्म-भूतों, अर्थात् परमाणुओं, के भी कारण हैं।

प्रकृति आदि के द्वारा आपही उन्हें उत्पन्न करते हैं । असल बात यह कि जिस पुरुष या आदि-कारण की सत्ता से सांसारिक प्राणी उत्पन्न होते, जीते और मर जाते हैं वह आपही हैं ।

हे भव ! आज तक इस त्रिलोकी मे देवों, दैत्यों, राक्षसो और मनुष्यों को जो अविकल अधिकार या आधिपत्य प्राप्त हुआ है वह, सब का सब, शरणागतो की आर्त्ति-हरण करने वाले आप ही की कृपा से प्राप्त हुआ है । आपको नमस्कार करने की परम पवित्र क्रिया के कारण ही वे उस प्रभुता के अधिकारी हुए हैं । यदि वे आपकी शरण न आते और आपके सामने सिर न झुकाते तो उन्हें वह वैभव कभी प्राप्त ही न होता ।

हे शिव ! आपकी पवनात्मिका मूर्त्ति को मेरा नमस्कार है । आप की इसी मूर्त्ति की कृपा से ये सारे भुवन अपने अपने प्राण धारण कर रहे हैं । यदि आपकी यह पवनात्मिका मूर्त्ति न होती तो कोई भी प्राणी जीता न बचता, क्योंकि प्राणियो के प्राण केवल वायुरूप हैं । और, वह वायु आप ही की आठ मूर्त्तियों मे से एक मूर्त्ति है । आपकी इस मूर्त्ति की बदौलत और भी कितने ही काम होते हैं । अक्षर-मय ब्रह्म की ध्वनि इसी की कृपा से सुनाई देती है । यह न होती तो अक्षरों का उच्चारण ही न सुनाई देता । आपकी यह पवनात्मिका मूर्त्ति पातकों का भी सर्वत्र नाश करती है । जितने दुरित और जितने कल्मष हैं, एक भी इसके सामने नहीं ठहर सकते ।

अनेक शिखाओ वाली आपकी अनलात्मिका मूर्त्ति को भी मेरा नमस्कार । जो लोग योगासन लगा कर सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म का

चिन्तन करते हैं उनके संसार-सम्बन्धी कर्म्मरूप बीजों को जला कर आपकी यह मूर्त्ति ख़ाक कर देती है। आपका ध्यान करने वाले योगियों के कर्म्म-बीज जलाने के लिए आप प्रज्वलित अग्निरूप हैं।

हे भव! जीवन-दायिनी आप की सलिलात्मिका मूर्त्ति को भी मेरा बार बार नमस्कार।

हे संसारी जीवों के जनक! भवाग्नि बडी ही भयङ्कर है। उससे आध्यात्मिकादि त्रिविध-ताप-रूपिणी लपटे निकला करती हैं। इन्हीं सन्तापजनक लपटों के कारण, अनन्त काल से प्राणी नाना प्रकार के दुःख सहते और मृत्यु पाते आ रहे हैं। इन लपटों से जले हुओं की रक्षा करने में एक मात्र आपकी जलात्मिका मूर्त्ति ही समर्थ है। जो सन्ताप-दग्ध जन आपकी शरण आकर आपकी उपासना करते हैं उनके दुःख-दाह को आपकी यह मूर्त्ति तत्काल शान्त कर देती है।

यह व्योम आप ही की मूर्त्ति है, और कुछ नहीं। अतएव आपकी व्योममूर्ति को भी मेरा नमस्कार। आप विभु हैं—कोई चीज़ ऐसी नहीं जिसमें आप व्यापक न हों। पदार्थ-मात्र आपसे आच्छादित हैं, पर आप पर किसी का आच्छादन नहीं। क्योंकि व्यापक कभी व्याप्य होही नहीं सकता। न आपका आदि है, न आपका अन्त। आप इन्द्रियगोचर भी नहीं। इन्द्रियों से आप जाने ही नहीं जा सकते। आप सर्वथा अविज्ञेय हैं। व्योमरूप हैं न।

आप सूक्ष्म से सूक्ष्म तो हैं; पर इस संसार के धारक आप ही हैं। अत्यन्त सूक्ष्म होने पर भी आप ही के आश्रय से यह

जगत् ठहरा हुआ है। अन्तर्यामी होने के कारण आप सदा सबके पास हैं। परन्तु कठिनता से भी आपके स्वरूप आदि का ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता। अतएव पास होकर भी आप बहुत दूर से हैं। न वाणी से ही आप जाने जा सकते हैं, न मन से ही— इन दोनों की पहुँच ही आप तक नहीं। आश्चर्य्य तो यह है कि वाणी और मन, इन दोनों के स्वामी आप ही हैं। तिस पर भी इनकी दाल नही गलती— इनमे से एक भी आपका हाल जानने मे समर्थ नहीं। ऐसे अवाङ्मनसगोचर आपको मेरा नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार।

आप ज्ञानाधीश और मैं महा अज्ञानी हूँ। इस दशा मे दया करके आप मेरा अपराध क्षमा कर दीजिए। मैंने आप पर शस्त्र उठाया, यह भूल मुझसे अवश्य हुई। परन्तु जानबूझ कर नहीं हुई; अज्ञानवश हुई है। अतएव, विश्वास है, आप इस दुश्चरित के लिए मुझे क्षमा का दान देंगे। क्योंकि, मोहवश आपका विरोध करने वाले बड़े बड़े दुरात्मा भी यदि आपकी शरण आते हैं तो आप उन पर भी कृपा ही करते हैं। आप तो शरणागतों के अपराध चित्त में लाते ही नही। बात यह है कि अपराधियों और दुराचारियों की भी गति आप ही हैं। आप को छोड़ कर उन्हें शरण में रखही और कौन सकता है?

भूतनाथ! अब आप मुझ पर एक कृपा कीजिए। आपको धर्म्म बहुत प्यारा है। धर्म्म पर मेरे बड़े भाई धर्म्मतनय युधिष्ठिर की भी बड़ी आस्था है। जिस धर्म्म में लोक-परलोक मानने की विधि है उस आस्तिक्य-पूर्ण, शुद्ध और पारलौकिक धर्म्म की रक्षा करना भी वे

अपना कर्तव्य समझते हैं । मेरे ऐसे धर्म्मिष्ठ भाई को हमारे शत्रुओं ने बहुत कष्ट दिया है—उनका अत्यधिक अपकार किया है । इस कारण, भगवन् ! आप मुझे ऐसी अस्त्र-समृद्धि दीजिए जिसकी सहायता से, युद्ध मे, मैं उन आततायी शत्रुओं पर विजय-प्राप्ति कर सकूँ ।

इतना कह कर अर्जुन ने शिवजी के सामने अपना सिर झुका दिया । शिवजी ने उनकी बड़ी बड़ाई की और उन्हें बहुत कुछ आश्वासन दिया । तदनन्तर, उन्होंने, जलती हुई आग के समान, अपने तेजः-पुञ्ज पाशुपतास्त्र से सम्बन्ध रखने वाली विद्या अर्जुन को सिखा दी—पाशुपतास्त्र-विषयक धनुर्वेद का मर्म्म उन्हें समझा दिया ।

पीला पीला, परम शोभाशाली, अत्युग्र तेज के कारण बड़ी ही भयङ्कर मूर्त्ति वाला, तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश के गुणानुरूप त्रिमूर्त्तिधारी सूर्य्य जिस तरह मेघ-मण्डल में प्रवेश कर जाता है उसी तरह वह पीतवर्ण, शोभासम्पन्न, तेजस्विता के कारण भयानक, तीन फाँक के आयुध—अर्थात् त्रिशूल—से सम्बन्ध रखने वाला वह धनुर्वेद, शिवजी की तीन बार प्रदक्षिणा करके, अर्जुन के मुख में प्रवेश कर गया । यह देख कर देवताओं ने उसकी बहुत स्तुति की । उन्होंने कहा—तुम्हारे लिए यह बहुत ही अच्छी योजना हुई । तुम अपने ही सदृश योग्य वीर को प्राप्त हो गये—
"रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन ।"

इसके अनन्तर, वहाँ पर उपस्थित हुए इन्द्र आदि लोकपालों ने शिवजी से प्रर्थना की कि यदि आपकी आज्ञा हो तो हम लोग भी

अपनी प्रसन्नता के सूचक कुछ उपहार अर्जुन को दे । शिवजी ने उन्हे उनकी अपेक्षित आज्ञा खुशी से देदी । तब उन्होने पहले तो पूर्ण-काम अर्जुन को कभी विफल न होने वाले आशीर्वाद दिये । फिर उन्होंने अनेक प्रकार के विजयी शस्त्रास्त्र देकर उनका अभिनन्दन किया ।

संसार को अन्धकार से बचाने के लिए बीड़ा उठाने वाला सूर्य्य जब बडे वेग से उदय को प्राप्त होता है तब उसका उत्साह—उसका उद्गमन—किसी से भी रोका नही जा सकता । उस समय वह समस्त लोकों के ऊपर आकाश मे चमकने लगता है । उसकी प्रकाश-लक्ष्मी उस समय बहुत ही बढ़ जाती है और इन्द्रादि देवता उसकी स्तुति करने लगते हैं । ठीक ऐसे ही सूर्य्य की सी दशा उस समय अर्जुन की भी हुई । संसार के कल्याण के निमित्त दुष्टों को दमन करने के लिए उन्होने बीडा उठाया था । अतएव अपने बल-विक्रम के प्रभाव से विजयी पाशुपतास्त्र पाने पर जब उनका सौभाग्योदय हुआ तब उनका उत्साह बहुत बढ गया—इतना बढ़ गया कि किसी से भी किसी तरह न दबाया जा सके । अपनी तपोरूपिणी लक्ष्मी की दीप्ति से उनका शरीर झलक उठा । उनमे लोकोत्तर तेजस्विता आगई । तेज मे उन्होंने त्रिलोकी को परास्त कर दिया । अर्जुन को इस प्रकार सफल-मनोरथ और तेजोयुक्त देख कर इन्द्र आदि देवताओं को बहुत सन्तोष हुआ । उन्होंने उनकी बड़ी प्रशंसा की । वे बोले—तू धन्य है ! तू बड़ा भाग्यशाली है ! तेरी तपश्चर्य्या आज सफल हो गई !

देवता जब अर्जुन का अभिनन्दन कर चुके तब शिवजी ने

अर्जुन से कहा--बेटा! अब घर जा कर अपने शत्रुओं पर विजय-प्राप्ति कर। यह सुन कर अर्जुन ने उनके चरणों पर अपना सिर रख दिया। फिर वे शिवजी की दी हुई वर-प्रदान-रूपिणी विजय-लक्ष्मी को लेकर वहाँ से लौट पड़े और घर आकर अपने बड़े भाई युधिष्ठिर को आदर-पूर्वक प्रणाम किया।

इति।